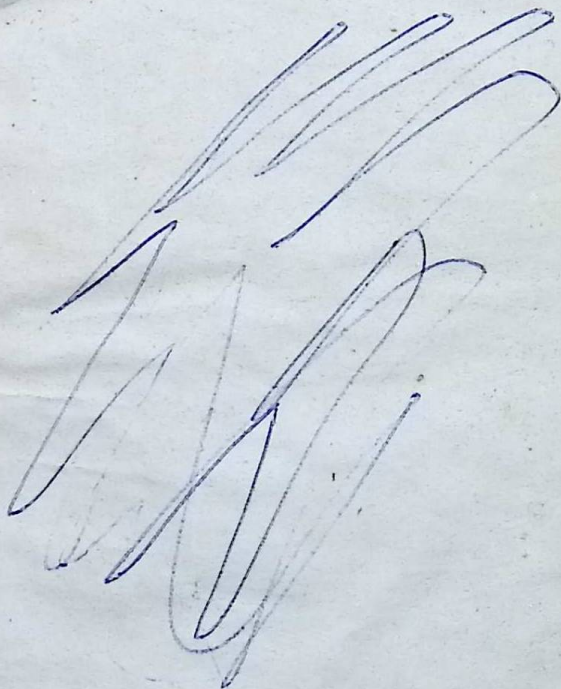




आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के अनुसार

आयुर्वेदीय द्रव्यगुण विज्ञान

लेखक

श्री शिवकुमार 'व्यास'

आयुर्वेदाचार्य, धन्वन्तरि

बी० आई० एम० एस० (आनर्स), स्वर्ण पदक प्राप्त
प्राचार्य—आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कॉलेज,
नई दिल्ली-५



प्रकाशक

मधुर प्रकाशन

२८०४, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

प्रकाशक :—

मधुर-प्रकाशन,

२८०४, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

फोन : २६८२३१

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं

प्रथम संस्करण : जनवरी १९६४

द्वितीय संस्करण : जनवरी १९७६

तृतीय संस्करण : दिसम्बर १९८४

अजिल्द मूल्य : २५-०० रुपये

सजिल्द मूल्य : २७-०० रुपये

पृष्ठ १ से ३८४ तक

एस० नारायण एण्ड सन्स (आफसेट)

४६-A श्यामा प्रसाद मुखर्जी मार्केट दिल्ली

मुद्रक:—

विराट् प्रिंटिंग एजेन्सी,

अपनी बात

इतिहास इस बात का साक्षी है कि ज्ञान-विज्ञान, रीतिरीवाज सभी समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। वैदिक काल से बौद्ध काल, हिन्दुकाल, यवनकाल, ब्रिटिश एवं आधुनिक काल तक यदि किसी भी विषय की रूप-रेखा, देखें तो उसमें समयानुकूल नवीनता दृष्टिगोचर हो जाती है। द्रव्य गुण विज्ञान भी इसका अपवाद नहीं। आइए, आरम्भ से इतिहास के पृष्ठों का अवलोकन करें।

ऐसा माना जाता है कि संसार का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद है। इसकी रचना के विषय में वेत्ताओं का अनुमान है कि यह ईसा के ३५०० वर्ष पूर्व से १८०० वर्ष पूर्व तक के समय की देन है। इसमें सोमवृक्ष नामक औषध का आश्वचर्यजनक वर्णन उपलब्ध होता है।

तत्पश्चात् अथर्ववेद में औषधियों का और भी विस्तार से वर्णन पाते हैं। और उसका उपाँग आयुर्वेद तो है ही औषध विषयक ज्ञान का भण्डार। आयुर्वेद के बृहत्संहिता में द्रव्य गुण विषयक सूत्रों की कमी नहीं है और परवर्ती कैंयदेव निघंटु, धन्वन्तरि निघंटु, राज निघंटु, भावप्रकाश, शालिग्राम निघंटु आदि तो केवल इस विषय पर ही आधारित हैं। इन सब का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि रचना काल के अनुसार सब में स्वरूप भिन्नता है।

इतिहास बताता है कि वनस्पति विज्ञान समय के साथ-साथ उन्नत होता गया। सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय हिन्दु समाज में वनस्पतियों का ज्ञान बहुत उन्नत था। ईसा की पाँचवी-छठी शताब्दी का एक ग्रन्थ कल्प-स्तनुर वनस्पति शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यवन काल में भारतीय जड़ी-बूटियों पर बहुत कार्य हुआ। उस समय राज दरबार में यूनानी हकीम रहा करते थे। राज्य प्रत्येक प्रकार की सहायता करता था। उस समय भारत में पाई जाने वाली वनस्पतियों के अतिरिक्त अरब, अफगानिस्तान आदि में उत्पन्न होने वाली औषधियों को भी ग्रन्थों में वर्णित किया जाने लगा। 'तालीफ शरीफ' और 'मखजनुल मदबिया' उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ माने जाते हैं।

(iv)

जिससे कि इस दशा में और भी कार्य हो सके और इसी से प्रभावित होकर प्रस्तुत पुस्तक का लेखन आरम्भ किया गया ।

शैली

प्राचीन निघंटु ग्रन्थों का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि द्रव्यों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया गया है । हरीतक्यादि, चन्नादि वर्गों में द्रव्यों को विभक्त किया गया है । यह विभाजन उनके समान कर्मों के अनुसार अथवा उनकी रचनानुसार हुआ । जिसकी व्याख्या हमने पुस्तक के द्रव्य प्रकरण में की है । वह आधार इतने पुष्ट नहीं रहे कि परवर्ती निघंटु-कार उनका पालन कर सकते । अतः उनकी स्पष्ट व्याख्या भी आज सम्भव नहीं । तो भी इतनी बात स्वीकार्य है कि मुख्यरूप से द्रव्यों को विभक्त करने के दो ही आधार हैं—प्रथम है उनकी रचना के अनुसार विभाजन, जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है—

“या फलिनिर्या अफला अपुष्यायाश्चा पुष्पिणी ।” (ऋग्वेद १०।६७।१५)
और परवर्ती आयुर्वेदज्ञों ने भी फलवर्ग, पुष्पवर्ग आदि वर्ग बनाकर उनका रचनानुसार वर्गीकरण किया है । दूसरा दृष्टिकोण उनको कर्मानुसार विभक्त करने का है जैसा कि चरक संहिता के दशेमानी में जीवनीय आदि द्वारा तथा सुश्रुत संहिता वरुणादि गण आदि द्वारा किया गया है । आज नवीन रचनाओं में द्वितीय दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर लिखी गई श्री प्रियव्रत शर्मा की द्रव्यगुण विज्ञान एक प्रचलित रचना है ।

रचनानुसार वर्गीकरण प्राचीन निघंटुओं में पुष्पवर्ग, फलवर्ग तक ही निहित था किन्तु बाद में वनस्पति शास्त्र बहुत उन्नत हुआ और वनस्पतियों को रचनानुसार अनेक वर्गों में विभक्त गया तथा उन वर्गों की विशेषताएँ स्पष्ट की गई । अंग्रेजी भाषा में भारतीय वनस्पतियों पर जितना भी साहित्य लिखा गया वह सब वनस्पति शास्त्र के वानस्पतिक वर्गों के अनुसार विभक्त कर लिखा गया और यह वास्तव में समय की माँग भी है ।

कार्य आरम्भ

पुस्तक का लेखन कार्य आरम्भ करते हुए सर्व प्रथम सभी प्रसिद्ध द्रव्यों की एक सूची बनाई गई । उनमें से वानस्पतिक द्रव्यों को अलग कर उन्हें

आठवीं और नवीं शताब्दी में यवनों का जड़ी-बूटी विषयक ज्ञान बहुत बढ़ चढ़ गया था । इस विषय पर फारसी भाषा में सैकड़ों पुस्तकें लिखी गईं । एडाल्ड फाह्यान ने ऐसी चार सौ से अधिक पुस्तकों का वर्णन लिखा है जिनका प्रधान विषय जड़ी बूटियाँ ही थीं । दसवीं शताब्दी की 'अवमन्सूर मुआफक्स' और बाहरवीं शताब्दी की 'दाखिरा-ए-ख्वर्जशाही' प्रसिद्ध पुस्तकें हैं ।

फिर आया ब्रिटिश साम्राज्य—यूरोप के विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा प्रणाली की महत्ता को सच्चे दिल से स्वीकार किया और उपलब्ध आयुर्वेदिक एवं यूनानी ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया गया । उन विद्वानों ने प्राचीन साहित्य के अध्ययन द्वारा पर्वतों तथा वनों में भ्रमण कर जड़ी बूटियों की खोज की ।

आज के वैद्य एवं हकीम भी इस कार्य में पीछे न रहे और उन्होंने प्राचीन समय के शतशः निघंटु एवं मखजून होते हुए भी नए ग्रन्थों की रचना की । परम पूज्य आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी ने द्रव्यगुण-विज्ञान लिखा । श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुण-विज्ञान की रचना की । हकीम श्री कबीर उद्दीन सहाब ने पुराने यूनानी ग्रन्थों एवं इतर वैज्ञानिक ग्रन्थों के आधार पर 'मख-जन मुफरदात' लिखकर इस दशा में एक सराहनीय कार्य किया । इस प्रकार का प्रचलन विज्ञान को उन्नत करने के लिए एक उपयोगी आयोजन रहा । वानस्पतिक कुलों के अनुसार विभक्त किया गया । इस कार्य में एक बड़ी कठिनाई यह रही कि कुछ द्रव्य-मतभेद के विषय हैं, अतः उनके लैटिन नाम लिख पाना भी कठिन कार्य था, क्योंकि ऐसे द्रव्यों के निश्चित सर्वमान्य लैटिन नाम नहीं मिले, तो भी प्रयास यह किया गया कि जिन नामों को अधिक वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है उनके अनुसार ही उन द्रव्यों को वर्गों में स्थान दिया जाए । कोई सन्तोषजनक हल न हो सकने से कुछ द्रव्यों को इस पुस्तक में वर्णित नहीं किया । यथा—रासना, अष्टवर्ग के द्रव्य आदि । अस्तु कहने का तात्पर्य यह है कि यथासम्भव प्रसिद्ध वानस्पतिक द्रव्यों के सर्वमान्य वानस्पतिक नाम दिए हैं और उन्हें वानस्पतिक वर्गों में विभक्त किया है । हिन्दी भाषा में यह प्रथम रचना है ।

पुस्तक में A से आरम्भ होने वाले कुलों को सर्वप्रथम स्थान देते हुए सबसे

(vi)

अन्त में Z से आरम्भ होने वाले कुलों का वर्णन है। किसी भी कुल को आरम्भ करते समय उसकी संक्षिप्त किन्तु सारगर्भिताएँ दी गई हैं जो उस कुल के द्रव्यों की पहचान में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। नवीन शैली होने से अभी इन विशेषताओं को कम स्थान दिया गया है—

इन विशेषताओं को देने के पश्चात् उस कुल के द्रव्यों को अकारादि क्रम से चयनबद्ध किया है। प्रत्येक द्रव्य का शीर्षक प्रसिद्ध भारतीय नाम में दिया गया है। फिर उसके प्रसिद्ध आयुर्वेदीय पर्याय दिये गए हैं। जहाँ सम्भव हुआ यूनानी चिकित्सक उस द्रव्य को किस प्रसिद्ध नाम से प्रयोग करते हैं यह भी लिखा है। फिर अंग्रेजी भाषा में और लैटिन में नाम दिए जाते हैं किन्तु वे नाम द्रव्य के विषय में भ्रम उत्पादक भी सिद्ध हो सकते हैं इसलिए उन्हें नहीं लिखा गया।

द्रव्य के नाम देने के पश्चात् उसके स्वरूप, उत्पत्ति आदि का विवरण दिया गया है तथा उस द्रव्य के प्रयोज्य अंग एवं उनकी मात्राएँ दी गई हैं। इसके बाद उस द्रव्य के गुण कर्मों को वर्णित किया है। एतर्थ आयुर्वेदिक मत तथा आधुनिक मत, दो विभाग किए गए हैं। यहाँ इन शब्दों का स्पष्टीकरण आवश्यक लगता है क्योंकि यह प्रश्न हो सकता है कि आधुनिक मत के शीर्षक में जो लिखा है वह आयुर्वेदिक तो नहीं फिर उसे क्यों अलग किया जा रहा है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि ये दोनों शब्द यहाँ सीमित अर्थों में प्रयोग किए हैं? आयुर्वेदिक मत में वह वर्णन लिखा है जो आयुर्वेदिक संहिता ग्रन्थों से लेकर अन्तिम शालिग्राम निघंटु तक में वातादि दोषों एवं रसादि पदार्थों के अनुसार वर्णित हुआ है। इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, यही बात द्रव्यों के गुण कर्म के विषय में है, यदि भाव प्रकाश में चित्रक को दीपक पाचक कहा है और इसी प्रकार डा० आर० एन० क्षौरी ने उसे अग्नि सन्दता, अजीर्ण एवं संग्रहणी में लाभ करने वाली लिखा है, जो हमें दोनों को स्वीकार करना होगा। अतः द्रव्यगुण का इस प्रकार से ज्ञान करना प्रत्येक आयुर्वेद के छात्र के लिए परमावश्यक है और इसी बात को ध्यान में रखते हुए ऐसा संकल्प किया गया है।

(vii)

केवल वानस्पतिक कुलों को देखकर अथवा आधुनिक मत में डाक्टर शब्द पढ़कर अथवा संस्कृत एवं हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के शब्द देखकर किसी वस्तु को आयुर्वेद के लिए अनावश्यक कहना, अपने प्राचीन चरक आदि श्रुतियों की परम्पराओं का उल्लंघन करना है, जो समय-समय पर किसी विषय में किए गए अनुभवों को आत्मसात करने का उपदेश दे गए हैं।

भाषा

साहित्य में भाषा का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। आयुर्वेद एक विज्ञान है—उस वैज्ञानिक साहित्य में भी भाषा के विषय में विचार करना होता है। पुस्तक लेखन के समय इस विषय पर चिन्तन किया। और यद्यपि अब तक का उपलब्ध साहित्य संस्कृत गर्भित क्लिष्ट भाषा में मिलता है तो भी आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान को सरल हिन्दी में लिखा गया है। क्योंकि सरल हिन्दी में होने से जन लाभान्वित हो सकते हैं।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस पुस्तक को लिखने में मैंने प्राचीन संहिता-ग्रन्थों से लेकर आज तक के प्रकाशित अनेक ग्रन्थों से सहायता ली है। न केवल पुस्तकों से ही अपितु विद्वानों के द्वारा लिखित एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से भी विषय चयन किया है। इन सभी ग्रन्थकारों एवं लेखकों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा व्यक्त करना, मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ और यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह जो कुछ भी लिखा गया है उसका श्रेय ऐसे विद्वानों को ही है जिन्होंने इस विषय पर श्रेष्ठ साहित्य रचना की है।

इस पुस्तक को आयुर्वेद के विद्यार्थियों, चिकित्सकों एवं विद्वानों के सम्मुख करते हुए मैं आशा करता हूँ कि गुणग्राही बनकर इसे अपनायेंगे।

व्यास निवास,

नई दिल्ली-५

—शिवकुमार व्यास

अनुक्रमणिका

(कहाँ, क्या देखें)

१. विवेच्य विषय	१ से ५
२. द्रव्य	५ से २१
३. रस ^०	२१ से ३३
४. गुण	३३ से ३६
५. वीर्य	३६ से ४२
६. विपाक	४३ से ४८
७. प्रभाव	४८ से ४९
८. कर्म	४९ से ५६
९. द्रव्य विज्ञान	५६ से ३५३
१०. जांगम द्रव्य	३५४ से ३७२
११. परिशिष्ट	३७२ से ३८२
१२. पुस्तक में वर्णित द्रव्यों के प्रसिद्ध नामों की अनुक्रमणिका	३८३ से ३८६

^० विशेष :—विस्तार अधिक होने के कारण “रस” की विवेचना प्रस्तुत पुस्तक में न देख कर निराश न हों अपितु “सचित्र रस शास्त्र” मधुर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ से पढ़कर लाभ उठावें)

—प्रकाशक

क

विवेच्य - विषय

द्रव्य गुण विज्ञान—

वह विज्ञान है जिसमें द्रव्यों के गुण बताए जाते हैं। यहां पर 'गुण' शब्द व्यापक अर्थ का बोधक है, इससे गुण एवं कर्म दोनों का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। गुण एवं कर्म का ग्रहण करते समय भी इस 'गुण' में द्रव्यगत पंचपदार्थ का बोध किया जाता है। जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो जाएगा कि रस, गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव द्रव्य के पंचपदार्थ होते हैं। अतः यह कहा जाएगा कि "द्रव्यगुण विज्ञान वह विज्ञान है जिस में द्रव्य का तथा उसमें निहित रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव एवं कर्म का विस्तार से वर्णन किया जाता है।"¹

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे मेटिरिया मेडिका (Materia Medica) कहा जाता है, और इसी का संक्षिप्त आयुर्वेदीय नाम 'निघंटु' है।
वर्गीकरण—

किसी भी विज्ञान का अध्ययन करने के लिए सुविधा की दृष्टि से विषय के अनुसार उसे कई विभागों में विभक्त कर लिया जाता है। द्रव्य गुण विज्ञान के भी विभाग बनाकर उनका क्रमशः अध्ययन करना सुविधाजनक होता है। अतः द्रव्य गुण विज्ञान का विभाजन पृष्ठ दो पर किया है—

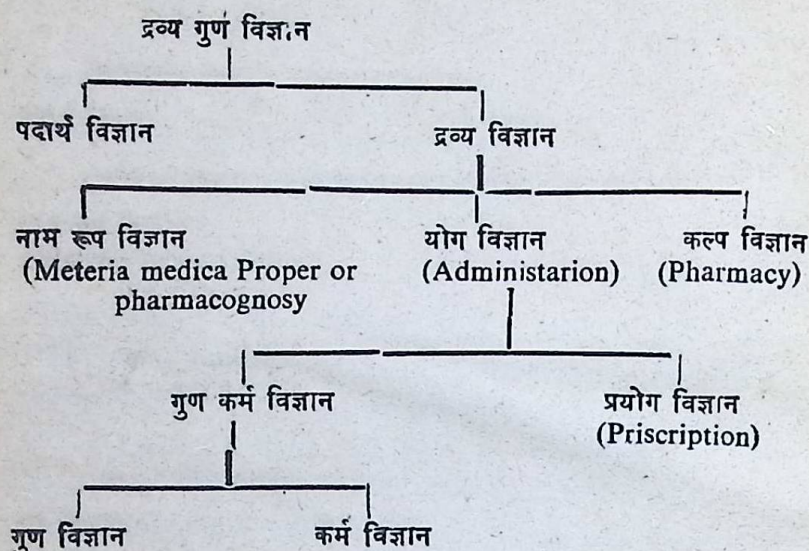
पदार्थ विज्ञान---

किसी विज्ञान के विवेच्य को 'पदार्थ' कहा जाता है। द्रव्य में पांच पदार्थ निहित रहते हैं, आगामी पृष्ठ पर देखें।

1. द्रव्याणां गुण कर्माणि प्रयोगा विविधास्तथा ।

सर्वशो यत्र वर्ण्यन्ते शास्त्रं द्रव्यगुणं हि तत् ॥

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान



● रस, गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव नामक पांच पदार्थ हैं ।¹ उनका वर्णन द्रव्य गुण विज्ञान के पदार्थ विज्ञान में किया जाता है । इनके अतिरिक्त विवेच्य विषय में 'द्रव्य' के तथा 'कर्म' के सम्बन्ध में सभी तत्वों की चर्चा भी की जाती है । इस प्रकार पदार्थ विज्ञान में निम्न सात प्रकरणों का समावेश किया जा सकता है—

१. द्रव्य (Drug)—रसादि पंच पदार्थों का तथा कर्म का आश्रयभूत जो पांचभौतिक विकार है—वह 'द्रव्य' कहलाता है । यथा—हरड़, बहेड़ा, आंवला ।

२. रस (Taste)—जिह्वा के द्वारा जिस विषय का ज्ञान होता है, वह रस कहलाता है, जैसे मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय ।

३. गुण (Property)—द्रव्य के अन्दर रहने वाले शीत, उष्ण, लघु आदि भौतिक धर्मों को गुण कहा जाता है ।

४. वीर्य (Dynamic Property)—द्रव्यगत क्रिया करने वाला धर्म

१. द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।

पदार्थाः पंच तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ (भा० प्र०)

विवेच्य-विषय

३

वीर्य कहा जाता है। शीत, उष्ण भेद से यह दो प्रकार का बताया है—कुछ लोग आठ प्रकार का भी मानते हैं।

५. विपाक (Final taste after digestion)—जठराग्नि के योग से पाचन के परिणाम स्वरूप जो रसान्तर उत्पन्न होता है, वह विपाक कहलाता है।

६. प्रभाव (Specific property)—रसादि में समानता रहने पर भी द्रव्य में सहज विशिष्ट शक्ति होती है, वह प्रभाव कहलाती है। जैसे—सहदेवी जटा को सिर पर बांधने से ज्वर उतर जाना।

७. कर्म (Action)—रसादि के द्वारा द्रव्य जो जो परिवर्तन शरीर में करता है वह कर्म कहलाते हैं। यथा—वमन, विरेचन, वृहण आदि।
द्रव्य विज्ञान—

द्रव्य विज्ञान के उपविभागों में से कल्प विज्ञान 'भैषज्य कल्पना' के अन्तर्गत पढ़ाया जाता है—प्रयोग विज्ञान 'काय चिकित्सा' के साथ सीखना होगा। अतः इस प्रसंग में निम्न बातें बताई जायेंगी।

१. नाम रूप विज्ञान (Pharmacognosy)—इसमें द्रव्य का नाम, जाति, स्वरूप, उत्पत्ति स्थान आदि का विस्तार से वर्णन किया जाता है।

२. गुण विज्ञान—इसमें द्रव्य गत रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाद का वर्णन किया जाता है।

३. कर्म विज्ञान—विभिन्न प्रकार के शरीर पर होने वाले कर्मों का वर्णन किया जाता है।

किसी भी द्रव्य का वर्णन करते समय हम उपर्युक्त तीन विषयों का नातिसंक्षिप्त (विस्तार) से वर्णन करेंगे।

पदार्थ विज्ञान एवं द्रव्यों का वर्णन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि यह बात स्पष्ट हो जाए कि चिकित्सा शास्त्र में द्रव्य गुण विज्ञान का क्या महत्व है।

महत्व—

चिकित्सा शास्त्र में द्रव्यगुण विज्ञान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

एतदर्थं शास्त्रों में अनेक उक्तियां देखने को मिलती हैं। उनका अवलोकन करने से विदित हो जाता है कि द्रव्यगुण विज्ञान का अध्ययन चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही आवश्यक है।

१. आयुर्वेद के दो प्रयोजन होते हैं। (क) स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और (ख) आतुर के रोग को शान्त करना। स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा तभी की जा सकती है जब कि शारीरिक घातुओं को समा-वस्था में रखा जा सके। संसार में सभी कुछ पञ्चभौतिक हैं। आत्मा के संयोग से पञ्चमहाभूतों के द्वारा पुरुष बनता है और द्रव्य में भी पञ्चमहाभूत का विकार पाया जाता है। इस प्रकार शरीर और द्रव्य एक समान माने जा सकते हैं, उस शरीर के धारकों को समावस्था में लाने के लिए या उन में विषमता उत्पन्न होने पर उन्हें समानता में लाने के लिये उपयुक्त द्रव्यों का प्रयोग कराया जाता है।^१ और द्रव्यों के विषय में तथा उनकी अवस्थानुसार उपयुक्तता के विषय में ज्ञान तभी हो सकता है जब द्रव्यगुण विज्ञान का अध्ययन किया गया हो।

२. आतुर के विकार को शान्त करना दूसरा प्रयोजन है। इसे चिकित्सा कहा जाता है और चिकित्सा के चार पाद हुआ करते हैं (१) चिकित्सक (२) द्रव्य (३) उपस्थाता (४) रोगी। इनमें चिकित्सक प्रधान है और उसका साधन है द्रव्य। यों कहा जा सकता है कि 'कर्ता' चिकित्सक है और उसका करण 'भैषज' है। बिना करण के कार्य को पाना सम्भव नहीं। अतः द्रव्य के बिना चिकित्सक कुछ नहीं कर सकता और द्रव्य के विषय में सभी ज्ञान द्रव्यगुण विज्ञान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

३. वह चिकित्सक जिसे द्रव्यों का ज्ञान नहीं यदि चिकित्सा करता है तो उसे दुर्मति समझना चाहिये। उसके साथ जात करने वाला भी नरकगामी होता है। क्योंकि बिना जाने हुए द्रव्य का प्रयोग उतना ही हानिकारक होता है जितना कि विष, अग्नि, शस्त्र एवं वज्र का प्रयोग और यदि पूर्ण रूप से

१. गुण या उक्तता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा।

स्थान वृद्धि क्षयास्तस्माद् बेहिनो द्रव्यहेतुका ॥ (सु. सू. अ. ४२.)

विवेच्य-विषय

५

जान कर प्रयोग किया जाए तो वह उतना ही लाभकारी होता है जितना 'अमृत' का सेवन। अतः नाम से, रूप से एवं गुणों से औषध को जान कर ही चिकित्सा की जा सकती है।¹

४. जिस प्रकार व्याकरण का ज्ञान किए बिना विद्वान् का तथा बिना अभ्यास किए घनुषधारी का समाज में उपहास होता है, उसी प्रकार बिना द्रव्यगुण विज्ञान जाने हुए चिकित्सक भी उपहास के पात्र होते हैं।²

५. आयुर्वेद की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि जिस शास्त्र में आयुष्य एवं अनायुष्य द्रव्यों के गुण एवं कर्म का वर्णन होता है—वह आयुर्वेद कहा जाता है। इसका अर्थ हुआ कि द्रव्य-गुण विज्ञान ही आयुर्वेद है। यह बात भी इसके महत्व को बताने वाली है।³

इन सभी बातों को देखते हुए यह समझ लेना बहुत सरल है कि एक आयुर्वेदज्ञ बनने के लिए आवश्यक है कि द्रव्य-गुण विज्ञान का ज्ञाता होवे और इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि द्रव्य-गुण विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय है।

पदार्थ-विज्ञान

१. द्रव्य, २. रस, ३. गुण, ४. वीर्य, ५. विपाक, ६. प्रभाव
७. कर्म की विवेचना।

१ द्रव्य

द्रव्य किसे कहते हैं? यह है सर्वप्रथम शंका जो प्रत्येक अनभिज्ञ के मन में उत्पन्न होती है। इसका समाधान है द्रव्य की परिभाषा बताना। और द्रव्य की परिभाषा हम मुख्यतः दो प्रकार से बता सकते हैं।—(क) दार्शनिकता युक्त (ख) द्रव्यगुण उपयोगी।

चरक एवं सुश्रुत में द्रव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है—“जिसमें

1. चरक सूत्र स्थान अध्याय १ के सूत्रों पर आधारित।

2. निघंटुना बिना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं बिना।

अभ्यासे न च धानुष्कस्त्रयो हासस्य भाजनम्। (र० नि०)

3. यतश्चायुष्यानायुष्याणि, च द्रव्यगुणकर्मणि वेदयत्यतो ऽऽयुर्वेदः।

(च० सू० ४०)

कर्म और गुण आश्रित हों तथा जो अपने कार्य-द्रव्यों का समवायिकारण हो, वह द्रव्य कहलाता है।¹ यह परिभाषा कारण द्रव्य एवं कार्य द्रव्य सभी पर लागू हो सकती है। पञ्चभूत-आत्मा-मन-काल और दशा के लिए इस परिभाषा के अनुसार द्रव्य कहना उपयुक्त है क्योंकि इनमें गुण एवं कर्म आश्रित रहते हैं और अपने कार्य द्रव्य के लिए यह समवायिकारण भी हैं। इसी प्रकार कार्य द्रव्यों के लिए भी यह बात है—‘हरीतकी’ में गुण एवं कर्म होते हैं तथा यह अपने कार्यद्रव्य ‘अभयारिष्ट’ के लिए समवायिकारण है। इस प्रकार द्रव्य की उपर्युक्त परिभाषा एक व्यापक अर्थ में प्रयोग की जा सकती है।

यहां पर समवायिकारण को समझ लेना भी आवश्यक है। साधारण रूप से कारण तीन प्रकार के हुआ करते हैं समवायिकारण, असमवायिकारण, निमित्तकारण। इनमें प्रधान समवायिकारण है क्योंकि वह समवाय सम्बन्ध से कार्य का घटक होता है। और समवाय सम्बन्ध उसे कहते हैं जो कभी अलग नहीं हो सकता।

द्रव्य गुण उपयोगी परिभाषा इस प्रकार की गई है कि ‘द्रव्य’ उसे कहते हैं जिसमें रसादि (रस-गुण-वीर्य-विपाक व प्रभाव) पांच निहित रहते हैं अथवा जो इन पांच का आश्रय है।² यहां पर इन पांचों से जो क्रिया शरीर पर होती है, अर्थात् कर्म भी ग्रहण करने होंगे। यह परिभाषा केवल द्रव्य गुण तक ही सीमित रह सकती है, क्योंकि इसमें कार्य-द्रव्य समवायिकारण होना आवश्यक नहीं बताया गया। इस प्रकार हमें द्रव्य गुण विज्ञान के लिए दोनों ही परिभाषाएँ मान्य हैं—

द्रव्य का पञ्चभौतिकत्व—

संसार में सभी द्रव्य पाञ्चभौतिक हैं। द्रव्य गुण विज्ञान में कारण द्रव्यों का उपयोग नहीं किया जाता, अतः द्रव्य शब्द से केवल कार्य-द्रव्य ही ग्रहण किए जाते हैं। चिकित्सार्थ जो भी द्रव्य प्रयोग में लाए जाते हैं, वह सभी

1. यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायियत् । तद् द्रव्यम् (च० सू० अ० १)
द्रव्य लक्षणन्तु क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति । (सु० सू० ४०)
2. रसादीनां पञ्चानां यदाश्रयभूतं तद् द्रव्यम् । (भा)

निर्जीवास्या में होते हैं। अतः इस अवस्था में उनमें आत्मा एवं मन की स्थिति नहीं होती और काल एवं दिशा भी द्रव्य की उत्पत्ति में समवायीकरण नहीं है, केवल निमित्त मात्र है। अतः 'द्रव्य' को पाञ्चभौतिक कहा जाता है।

इस प्रसंग में यह जान लेना भी आवश्यक है कि द्रव्य पञ्चमहाभूतों के विकार समुदाय हैं। इनकी उत्पत्ति का स्वरूप देखना हो तो इनकी तीन अवस्थाओं के विषय में विचार करना होगा। वे तीन अवस्थाएं हैं—

१. भूत, २. महाभूत, ३. दृश्यभूत।

महाप्रलय में भी परमाणुरूप में 'आकाश' आदि भूतों की स्थिति रहती है, क्योंकि यह नित्य हैं और इस अवस्था में इनके 'शब्द' आदि गुण अव्यक्तावस्था में रहते हैं। फिर सर्व प्रथम आकाश के त्रिसरेणु का महत परिमाण होने से 'आकाश' महाभूत बनता है और फिर आकाश का वायु के त्रिसरेणु के साथ संयोग होता है तब वायु की उत्पत्ति होती है जो 'वायु' महाभूत कहलाता है इस अनुप्रवेशक्रम से पाँचों महाभूतों की उत्पत्ति होती है और इस अवस्था में आकाश में एक गुण तथा पृथ्वी में पाँचों गुण विद्यमान रहते हैं। इस अवस्था तक भी यह महाभूत 'द्रव्य' की रचना में समर्थ नहीं होते। अब पाँचों महाभूत आपस में मिलते हैं और इस क्रिया को 'अन्योन्यानुप्रवेश' कहा जाता है। इस मिलने से 'दृश्यभूत' की उत्पत्ति होती है। इन पञ्जीकृत महाभूतों से ही संसार के सभी द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए 'सभी द्रव्य पञ्चभौतिक है' ऐसा कहा जाता है। पञ्चभौतिक होते हुए भी पार्थिव द्रव्य, आप्य द्रव्य आदि कहना विशिष्ट महाभूत के अनुसार होता है।

द्रव्य का औषघत्व—

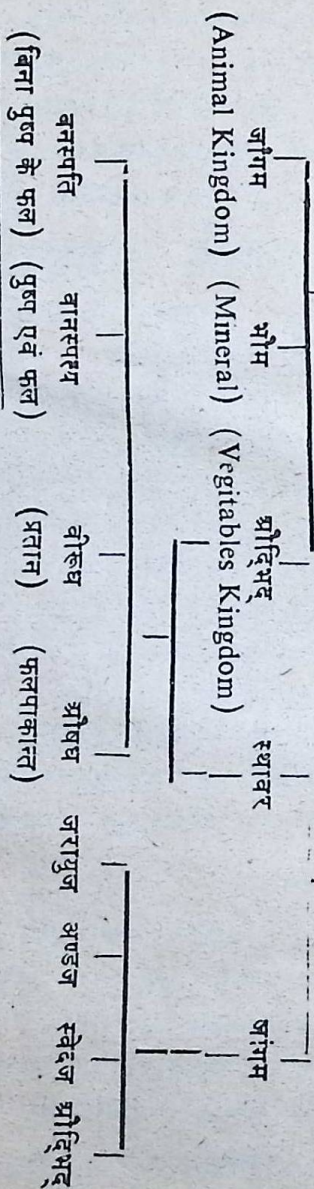
यहाँ यह बात भी स्पष्ट हो जानी चाहिए कि संसार के सभी द्रव्य औषघ होते हैं। क्योंकि जो द्रव्य में गुण होते हैं वही हमारे शरीर में होते हैं। द्रव्य के द्वारा ही हम उनकी क्षय-वृद्धि को दूर कर समान अवस्था में रख सकते हैं। और यही चिकित्सा है जो औषघ के द्वारा हो सकती है। अतः मानना होगा कि सभी द्रव्य औषघ हैं। सामान्य और विशेष के आधार पर वह शरीर

1. "सर्वं द्रव्यं पञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे।"

(च० सू० अ० २६)

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

द्रव्य (योनि भेद से)

चरक मतानुसार¹सुश्रुत मतानुसार²

1. तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जागमं भौममोदिभदम् ।

प्रीदिभदं तु चतुर्विधं । वनस्पतिस्तथा वीरुहानस्पत्यस्तथौषधि ॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पवानस्पत्यः फलैरपि ।

श्रीषधः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः ॥ (च० सू० अ० १)

2. द्रव्याणि पुनरोषधयस्तः द्विविधाः स्याद्वर जंगमाश्च ।

तासां स्याद्वराश्चतुर्विधाः, वनस्पतयो वृक्षा वीरुध श्रीषध इति ।

जंगमास्तथापि चतुर्विधाः जरायुजाण्डज स्वेदजोद्विभक्ताः ॥ (सु० सू० अ० १)

में क्षय हुए गुणों को बढ़ाकर तथा बढे हुए को घटाकर समावास्था में लाकर स्वास्थ्य लाभ कराते हैं ।

द्रव्य का वर्गीकरण—

द्रव्य कितने प्रकार के होते हैं—यह बताते समय यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से द्रव्य के भिन्न २ भेद हुआ करते हैं । हमने यहाँ आयुर्वेदीय शास्त्रों में वर्णित प्रमुख दृष्टिकोणों के अनुसार द्रव्य के जितने भेद बताए हैं, उन का क्रमशः अवलोकन कराएँ ।

(अ) कार्यकारण भेद से—दो प्रकार के द्रव्य होते हैं—१. कारण द्रव्य जो ६ होते हैं और सृष्टि के मौलिक तत्व कहे जाते हैं । २. कार्य द्रव्य—जो असंख्य हैं और कारण द्रव्यों से उत्पन्न होते हैं । द्रव्य गुण में केवल 'कार्य द्रव्यों' का ही प्रयोग होता है ।

(आ) चेतनाचेतन भेद से—दो प्रकार के होते हैं—

१. चेतन—जिन में चेतना (आत्मा) का निवास हो जैसे जन्तु आदि । यह दो प्रकार का होता है—

(क) बहिरन्तश्चेतन—जङ्गम सृष्टि । (ख) अन्तश्चेतन—आदिभद् सृष्टि ।

२. अचेतन—में आत्मा की स्थिति एवं अभिव्यक्ति नहीं होती । यह पार्थिव तत्व हैं । जैसे लोहा, सोना आदि ।

(इ) योनि-भेद से चरक एवं सुश्रुत दोनों ही संहिताएँ आयुर्वेद में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं । योनि भेद से द्रव्य कितने प्रकार के हैं—यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—

(ई) दोष कर्म भेद से—द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं ।¹

(१) शमन	(२) कोपन	(३) स्वस्थवृत्तहितकर (संघव)
---------	----------	--------------------------------

वातशामक	पित्तशामक	कफशामक	वातकोपक	पित्तकोपक	कफकोपक
(देवदारु)	(चन्दन)	(अगर)	(मूंग)	(तिल)	(दुग्ध)

1. किंचिद्दोष प्रशमनं किंचिद्वातु प्रदूषणम् ।

स्वस्थवृत्तौ हितं किंचित्त्रिविधं द्रव्यमुच्यते ॥ (च० सू० अ० १)

(उ) प्रयोग भेद से—द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—(१) ओषध द्रव्य, (२) आहार द्रव्य । ओषध द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं—(क) तीक्ष्ण वीर्य (ख) मध्यम वीर्य एवं (ग) मृदु वीर्य और आहार द्रव्य छः रसों के अनुसार होते हैं ।

(ऊ) भौतिक संगठन से—द्रव्य पांच प्रकार के हैं ।

१. पार्थिव, २. आप्य, ३. तंजस, ४. वायव्य, ५. आकाशीय ।

(ए) रस भेद से—द्रव्य छः प्रकार के होते हैं ।

१. मधुर स्कन्ध काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा आदि ।

२. अम्ल स्कन्ध—दाडिम, आंवला, अनार, नीम्बु आदि ।

३. लवण स्कन्ध सैन्धव, विड़, सामुद्र आदि ।

४. कटु स्कन्ध—पिप्पली, पिप्लामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ आदि ।

५. तिक्त स्कन्ध—चन्दन, नीम, कुटज, गोखरू आदि ।

६. कषाय स्कन्ध—अनन्त मूल, लोघ, मोचरस, पाठा आदि ।

इन छः स्कन्धों के पूर्ण द्रव्यों का वर्णन चरक संहिता विमानस्थान अध्याय ८ और सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अध्याय ४२ में अवलोकन कर सकते हैं ।

(ऐ) वीर्य भेद से—वीर्य के सम्बन्ध में दो मत हैं—कुछ शीत, उष्ण दो प्रकार से मानते हैं और अन्य आठ प्रकार (गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, मृदु तीक्ष्ण) का मानते हैं । इनमें शीत एवं उष्ण ही प्रमुख एवं सर्वमान्य हैं । अतः वीर्य भेद से द्रव्य दो प्रकार के होंगे ।

१. शीत वीर्य द्रव्य—आंवला, चन्दन, पद्म आदि ।

२. उष्ण वीर्य द्रव्य—अगरू, तगर, कुष्ठ एवं एला आदि ।

इनकी गणना चरक चिकित्सास्थान अध्याय ३ में की गई है । इच्छुक सज्जन वहीं अवलोकन करें ।

(ओ) विपाक भेद से—तीन प्रकार के द्रव्य हैं ।

१. मधुर विपाकी द्रव्य—सोंठ, पीपल, हरड़, आंवला आदि ।

२. अम्ल विपाकी द्रव्य—कुलत्थ आदि ।

1. वीर्यप्रधानओषध द्रव्यं रस प्रधानमाहार द्रव्यञ्च । (च० सू० अ० २)

३. कटु विपाकी द्रव्य—चित्रक, द्रव्य आदि ।

(अ) रचनात्मक दृष्टिकोण में—आयुर्वेद के प्राचीन संहिता ग्रन्थ चरक सुश्रुत एवं वाग्भट्ट में द्रव्यों की रचना के अनुसार भी विभक्त किया है । वे निम्न प्रकार हैं—

चरकसंहिता—द्रव्य (आहार द्रव्य) १२ वर्गों के विभाजित किए हुए हैं—

- | | |
|----------------------------------|-------------------------------------|
| १. शूकधान्य वर्ग : गेहूँ, जौ आदि | २. शमीधान्य वर्ग : मूँग, माष आदि |
| ३. मांस वर्ग : आनूप आदि मांस | ४. शाक वर्ग : बथुआ, चोलाई आदि |
| ५. फल वर्ग : अंगूर, अनार, | ६. हरित वर्ग : नीम्बु, मूली, आदि |
| ७. मद्य वर्ग : सुरा, आसव, | ८. जल वर्ग : दिव्य, भौम आदि |
| ९. गोरस वर्ग : गाय, भैंस का | १०. इक्षु वर्ग : गन्ना, शक्कर, गुड़ |
- दूध-दही आदि

११. कृतान्त वर्ग : मण्ड, पेया आदि १२. आहार वर्ग : तेल, लवण आदि

इनका अवलोकन चरक सूत्रस्थान अध्याय २७ में किया जा सकता है ।

सुश्रुत संहिता—द्रव्य मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं—

(क) द्रव द्रव्य—१० वर्ग

(ख) अन्य द्रव्य—१३ वर्ग

- | | | | |
|--------------|----------------|------------------|-----------------|
| १. जल वर्ग | २. क्षीर वर्ग | १. शालि वर्ग | २. कुधान्य वर्ग |
| ३. दधि वर्ग | ४. तक्र वर्ग | ३. वैदल वर्ग | ४. मांस वर्ग |
| ५. घृत वर्ग | ६. तैल वर्ग | ५. फल वर्ग | ६. शाक वर्ग |
| ७. मधु वर्ग | ८. इक्षु वर्ग | ७. पुष्प वर्ग | ८. कन्द वर्ग |
| ९. मद्य वर्ग | १०. मूत्र वर्ग | ९. लवण वर्ग | १०. क्षार वर्ग |
| | | ११. घातु वर्ग | १२. रत्न वर्ग |
| | | १३. कृतान्त वर्ग | |

इनका विस्तार से वर्णन सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ४५ और ४६ में देखा जा सकता है ।

अष्टांग संग्रह—रचनानुसार द्रव्य दो प्रकार के हैं—

(क) द्रव द्रव्य—६ वर्ग

(ख) धन्य द्रव्य—६ वर्ग

- | | | | |
|---------------|---------------|------------------|---------------------|
| १. जल वर्ग | २. क्षीर वर्ग | १. शूकधान्य वर्ग | २. शिम्बीधान्य वर्ग |
| ३. इक्षु वर्ग | ४. तैल वर्ग | ३. कृतान्त वर्ग | ४. मांस वर्ग |

५. मद्य वर्ग ६. मूत्र वर्ग ५. शाक वर्ग ६. फल वर्ग

इनका विस्तार से वर्णन अष्टांग संग्रह सूत्रस्थान अध्याय ६ और ७ में देख सकते हैं ।

अष्टांग हृदय में द्रव द्रव्यों के ६ वर्गों में से मूत्र वर्ग को छोड़ दिया गया । तथा अन्न द्रव्यों के ६ वर्गों के साथ औषध वर्ग नामक एक और वर्ग भी बताया गया । इनका वर्णन अष्टांग हृदय सूत्रस्थान अध्याय ५ और ६ में आपको मिलेगा ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने द्रव्यों को इनकी रचानानुसार विभक्त किया है और औद्भिद् सृष्टि के कुलानुसार द्रव्यों का विभाजन किया गया है । आयुर्वेदीय द्रव्यगुण विज्ञान में द्रव्यों का वर्णन करते समय वर्गीकरण इसी आधार पर किया गया है ।

(अ) कर्मानुसार वर्गीकरण—द्रव्यों का वर्गीकरण कर्मों के अनुसार भी किया गया है । चरक आदि संहिता ग्रन्थों में तथा वाग्भट्ट के संग्रह ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्गीकरण देखने को मिलता है, हम वहाँ उसकी रूपरेखा मात्र बताना चाहते हैं ।

चरक ने द्रव्यों को कर्मों के अनुसार विभक्त किया है । उसके प्रमाण निम्न हैं—

१. चरक सूत्रस्थान अध्याय ४ में जीवनीय आदि ५० वर्ग ।
२. चरक विमानस्थान अध्याय ८ में और सूत्रस्थान अध्याय २ में वामकवर्ग ।
३. चरक सूत्रस्थान अध्याय ५ में सुखशोचन वर्ग आदि ।
४. चरक सूत्रस्थान अध्याय २१ में लघन-बृंहण आदि ।
५. चरक सूत्रस्थान अध्याय २३ में संतर्पण, अपतर्पण आदि ।
६. चरक सूत्रस्थान अध्याय २४ में संज्ञाप्रबोधक आदि ।
७. चरक सूत्रस्थान अध्याय २५ में हिततम, अहिततम आदि ।
८. चरक विमानस्थान अध्याय ६ में वातवर्धक, पित्तवर्धक आदि ।
९. चरक शारीरस्थान अध्याय ८ में गर्भवृद्धिकर आदि ।
१०. चरक चिकित्सास्थान अध्याय १, २ में रसायन वाजीकरण आदि ।

यह सब उद्धरण इस बात को स्पष्ट करने वाले हैं कि चरक ने कर्मों के अनुसार द्रव्यों का विभाजन किया था ।

सुश्रुत संहिता ४ में भी कर्मों के अनुसार द्रव्यों का वर्गीकरण किया गया है । जिस के प्रमाण निम्न हैं—

१. सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३८ में विदारीगन्धादि ३६ वर्गों का वर्णन ।
२. सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३९ में उर्ध्वभागहर आदि वर्गों का वर्णन ।
३. सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३९ में पाचन, दारण आदि वर्गों का वर्णन ।
४. सुश्रुत चिकित्सास्थान अध्याय २६ में वाजीकरण आदि वर्गों का वर्णन ।
५. सुश्रुत कल्पस्थान अध्याय २५ में विष आदि वर्गों का वर्णन ।

वाग्भट्ट में भी कर्मों के अनुसार द्रव्यों का विभाजन किया है । अष्टांग संग्रह में सूत्रस्थान अध्याय १४—१५—१६ में इनका विस्तार से वर्णन है और अष्टांग हृदय में सूत्रस्थान अध्याय १५ में ३३ वर्गों का वर्णन किया गया है जो कर्मों के अनुसार है ।

इस प्रकार हम प्राचीन साहित्य में द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण पाते हैं और आधुनिक विज्ञान में भी कर्मों के अनुसार द्रव्यों का विभाग किया गया है । जैसे नाड़ी संस्थान पर उत्तेजना लाने वाले द्रव्य आदि ।

(अ:) उपलब्ध निघट्ट मतानुसार—द्रव्य वर्गीकरण पूर्ण करते समय हमें यह न भूलना चाहिए कि आज द्रव्यों के प्रमुख ग्रंथ निघंटु हैं । उन में भी द्रव्यों का विभाजन में सर्वप्रथम श्रेय घन्वन्तरि निघंटु को है जिस में सभी द्रव्यों को सात वर्गों में विभक्त किया । वे वर्ग हैं—

- | | |
|--------------------|--------------------|
| १. गुडूच्यादि वर्ग | २. शतपुष्पादि वर्ग |
| ३. चन्दनादि वर्ग | ४. करवीरादि वर्ग |
| ५. आम्रादि वर्ग | ६. सुवर्णादि वर्ग |
| ७. मिश्रकादि वर्ग | |

यह विभाजन द्रव्यों के कर्मों के अनुसार ही किया गया और एक समान कर्म करने वाले द्रव्यों का वर्णन एक ही वर्ग में हुआ । यह परिपाटी चरक आदि से ग्रहण की गई ।

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

इस के पश्चात् और निघंटु बने, जिन्होंने अपना आदर्श चरक आदि को न मानकर घन्वन्तरि निघंटु को माना और इसी प्रकार द्रव्यों के नाम पर वर्गों का वर्णन किया किन्तु उन में इस बात का ध्यान नहीं रक्खा गया कि वर्ग में समान कर्म करने वाले द्रव्यों का वर्णन होना चाहिए।

भावप्रकाश निघंटु इन में प्रसिद्ध है। उसमें सभी द्रव्यों के २२ वर्गों में विभक्त किया हुआ है किन्तु उसमें भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह द्रव्यों की रचना के अनुसार वर्गीकरण है कि उनके कर्म सामान्य के आधार पर। इन में से कोई भी बात दृष्टिगोचर नहीं होती। कहा जाता है कि प्रयोज्य अंग फल या कन्द हों उन द्रव्यों का वर्णन हरीतक्यादि वर्ग में किया गया है किन्तु वहाँ पर हम पाते हैं कि सैन्धव का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह कहना कि इन वर्गों का आधार क्या है कठिन सा प्रतीत होता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से द्रव्य के भेदों के विषय में चर्चा की है। यद्यपि यह बहुत विस्तृत विषय है जिसका एक ग्रंथ अलग से ही बन सकता है तो भी इतना अवश्य है कि पाठ्यक्रम की दृष्टि से इतना जान लेना ही पर्याप्त है क्योंकि इन में दिए गए संदर्भों की सहायता से मूल चरक संहिता, आदि में सभी बातों की जानकारी की जा सकती है।

द्रव्यों के सुश्रुतोक्त गण—

गण	द्रव्य	प्रमुख गुण-कर्म
विदारोगन्धादि	शालपर्णी, विदारी, महाबला, नागबला, गोक्षुर, प्रश्निपर्णी, शतावरी, सारिवा, कृष्ण सारिवा, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुग्दपर्णी, वृहतीद्वय, पुनर्नवा, एरण्ड, हंसपदी, वृश्चिकाली, कपिकच्छ।	वृंहण, अंगमदं प्रशमन, श्वास, कास, शोष, गुल्म नाशक।
आरग्वधादि	आरग्वध, मदनफल, कर्कोटकी, कुटज, पाठा, कुटकी पाटला, मूर्वा, छदि, विष, कण्डू	कफ, कुष्ठ, ज्वर,

गण	द्रव्य	प्रमुख गुण-कर्म
	इन्द्रयव, सप्तपर्ण; निम्ब, पीत सैरेयक, नील सैरेयक, गुडूची, चित्रक, काकजंघा, करञ्ज, लताकरञ्ज, पटोल, चिरायता, करेला ।	प्रमेह नाशक ।
वरुणादि	वरुण, अतिर्गल, शोभांजन, मधुशिव कफ नाशक, मेद नाशक ढेकार, मेषशृंगी, चिरबिल्व, शिरःशूल, गुल्म नाशक । नक्तमाल, मोरट, अग्निमन्थ, रक्त-पीत, सैरेयक, बिम्बी, अर्क, अपामार्ग, चित्रक, शतावरी, बिल्व, कर्कट शृंगी, दर्भ बहुतीक्ष्ण ।	
वीरतर्वादि	वीरतरु, नील-रक्त पीत सैरेयक, वातहर, मूत्रजनन, दर्भ, बन्दाक, जलज दर्भ, नल, कुश, अश्मरीभेदन, काश, पाषाणभेद, अग्निमन्थ, वातव्याधि नाशक । मूर्वा, राजार्क, अपामार्ग श्योनाक, इन्दीवर, ब्राह्मी, गोक्षुर ।	
सालसारादि	सालसार, सर्ज, खदिर, सोमवल्क, कफ, मेद, कुष्ठ, प्रमेह अरिमेद, क्रमुक, भूर्जपत्र, मेषशृंगा, पाण्डू नाशक । तिनिश, चन्दन, कुचन्दन, शिषपा, शिरिस, असन, घव, अर्जुन, ताल, शाक, नक्तमाल, चिरबिल्व, अश्वकर्ण, अगार, पीतचन्दन ।	
रोध्रादि	रोध्र, शाबररोध्र, पलाश, श्योनाक, कफ, मेद, विष एव अशोक, फंजी, कटफल, एलवालुक, योनिविकार नाशक, शल्लकी, जिगिणी, कदम्ब, शाल, स्तम्भन व वर्ण कारक । कदली ।	
अर्कादि	अर्क, अलर्क करंज, लताकरंज, कफ, मेद, विष, नागदन्ती, अपामार्ग, भार्गी, रास्ना, कुष्ठ, कृमि नाशक	

गण	द्रव्य	प्रमुख गुण-कर्म
	कलिहारी, श्वेत अपाजिता, नील अपराजिता, वृश्चिकाली ।	व्रण शोधक ।
सुरसादि	सुरसा, श्वेत तुलसी, मरूवक, क्षुद्र तुलसी, रोहिध, गन्धतृण, राजिका, ववंरी, कासमर्द, छिक्किका, खरपुष्प, बिडंग, कटफल, निर्गुण्डी, श्वेत निर्गुण्डी, मुण्डी, मूषाकर्णी, काकजंघा, काकमाची, विषमुण्ठी ।	कफ, कास, श्वास, प्रतिश्याय, कृमि नाशक, व्रण, शोधक ।
मुष्ककादि	मुष्कक, पलाश, घव, चित्रक, मंदहर, शुक्र मदनपाल, शिशपा, स्नुही, त्रिफला । एवं अशमरी	शोधक नाशक ।
पिप्पल्यादि	पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मीर्च, गजपीपल, हरेणुका, एला, अजमोद, इन्द्रयव, पाठा, जीरा, सर्षप, महानिम्बफल, हिंगु, भाङ्गी, मूर्वा, अतिविषा, वचा ।	कफघ्न, वातनाशक, दीपन, पाचन, शूल-नाशक, प्रतिश्याय, गुल्म नाशक ।
एलादि	एला, तगर, कुष्ठ, मांसी, रोहिध, त्वक्, पत्र, नागपुष्प, प्रियङ्गु, हरेणुका, नखी, चोरपुष्पी, श्रीवेष्टक, तज, ग्रन्थि पर्ण, एलावालुक, गुग्गुल, सर्जरस, तुरूष्क, कुन्दरू, अगरू, स्पृक्का, उशीर, देवदारू, नागचम्पक, कमलकेशर ।	वात कफ नाशक, विष नाशक, कण्डू-कुष्ठ नाशक, वर्ण कारक ।
वचादि	वचा, मुस्ता, अतिविषा, हरीतकी, देवदारू, नागकेशर ।	स्तन्य शोधन, दोष पाचन ।
हरिद्रादि	हरिद्रा, दारूहरिद्रा, पृश्नपर्णी, इन्द्रयव, मुलहठी ।	” ”

गण	द्रव्य	प्रमुख गुण-कर्म
श्यामादि	त्रिवृत, विधारा, दन्ती, शंखिनी, तित्त्वक, कम्पिल्लक, महानिम्ब, क्रमुक, द्रवन्ती, इन्द्रायण, आरग्वध, करञ्ज, लताकरञ्ज, गुडूची, सप्तला, बृद्धदारुकभेद, स्नुही, स्वर्णक्षीरी ।	भेदन, अनुलोमन, विषघ्न ।
वृहत्यादि	वृहती, कंटकारी, इन्द्रयव, पाठा, मुलेठी ।	त्रिदोषहर, पाचन मूत्रजनन ।
पटोलादि	पटोल, चन्दन, रक्तचन्दन, मूर्वा, गुडूची, पाठा, कुटकी ।	कफपित्त शामक, ज्वर नाशक, विषनाशक ।
काकोल्यादि	काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गुडूची, कर्कट-शृंगी, वंशलोचन, पद्मक, प्रपोण्ड-रीक, ऋद्धि, वृद्धि, मृद्वीका ।	वातपित्तहर, रक्तशामक, वृहण, वृष्य, कफ-कारक, स्तन्यजनन ।
ऊषकादि	ऊषक (क्षारविशेष), सैन्धव, शिलाजतु, कासीस, हिगु, तुत्थ ।	कफभेदहर, मूत्रजनन, रक्तपित्तशामक, तृष्णा-नाशक ।
सारिवादि	सारिवा, मुलेठी, चन्दन, रक्त-चन्दन, पद्मक, गम्भारीफल; मधूक पुष्प, उशीर ।	दाहशामक, ज्वर-नाशक ।
अञ्जनादि	सौवीराञ्जन, रसाञ्जन, नाग-केशर, प्रियंगु, नीलोत्पल, नलक, पद्मकेशर, मुलेठी ।	रक्तपित्त, विष, दाह नाशक ।
परूषकादि	परूषक, द्राक्षा, दाडिम, राजादन, कतकफलक, शाकफल, त्रिफला ।	वातहर, हृद्य, तृष्णा-हर, मूत्रजनन ।
प्रियंगवादि	प्रियंगु, लज्जालु, घातकी, पुन्नाग,	पित्तहर, स्तम्भन,

गुण	द्रव्य	प्रधान गुण-कर्म
	नागकेशर, चन्दन, रक्तचन्दन, मोचरस, रसांजन, कुम्भीक, स्रोतोञ्जन, पद्मकेशर, मञ्जिष्ठा ।	संधानीय, व्रणरोपण ।
अम्बुष्ठादि	पाठा, वातकीपुष्प, लज्जालु, श्योनक, मुलेठी, बिल्व, शाबर- रोध्न, पलाश, नन्दीवृक्ष ।	" "
न्यग्रोषादि	न्यग्रोष, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, मधूक, आभ्रातक, अर्जुन, आम्र, कोशाग्र, लाक्षावृक्ष, जम्बूद्वय, प्रियाल, मुलेठी, कट्फल, वेतस, कदम्ब, बदरी, तिन्दुक, शल्लकी, रोध्र, शाबररोध्र, भल्लातक ।	ग्राही, सन्धानीय, रक्त- पित्त शामक, दाह- शमिक ।
गुडूच्यादि	गुडूची, निम्बु, धान्यक, चन्दन, पद्मक ।	ज्वरनाशक, दीपक, तृष्णानाशक, दाह- नाशक ।
उत्पलादि	नीलोत्पल, रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सौगन्धिक, कुवलय, पुण्डरीक, मधुक ।	दाहशामक, रक्तपित्त- शामक, तृष्णा विष- नाशक ।
मुस्तादि	मुस्ता, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरीतकी, आमलकी, विभीतक, कुष्ठ, श्वेत वचा, वचा, पाठा, कुटकी, काकजंघा, अतिविषा, एला, भल्लातक, चित्रक ।	कफहर, मेदहर, दीपन, कुष्ठनाशक ।
त्रिफला	हरीतकी, विभीतक, आमलकी ।	कुष्ठ, प्रमेह, विष, ज्वर नाशक ।
त्रिकटु	शुण्ठी, पिप्पली, मरिच ।	कफ, मेद, कुष्ठ, गुल्म नाशक ।

गण	द्रव्य	प्रधान गुण-कर्म
आमलक्यादि	आमलकी, हरीतकी, पिप्पली, चित्रक ।	कफ नाशक, रोचन, दीपन, वृष्य ।
त्र्यम्बादि	वंग, नाग, ताम्र, रजत, लोह, सुवर्ण, मण्डूर ।	कृमिनाशक, विध-नाशक ।
लाक्षादि	लाक्षा, आरग्वध, कुटज, करवीर, कट्फल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निम्ब, सप्तपर्ण, चमेली ।	कफ पित्तनाशक, कुष्ठ कृमिनाशक ।
लघुपंचमूल	गोक्षुर, बृहती, कंटकारी, पृश्नि, पर्णी, शालपर्णी ।	वातपित्तहर बृंहण, वल्य ।
बृहत् पंचमूल	विल्व, अग्निमन्य, श्योनाक, पाटला, गभारी ।	वातहर, दीपन कफ-नाशक ।
वल्ली पञ्चमूल	विदारि, सारिवा, श्यामसारिवा, गुडूची; मेषशृंगी ।	कफ नाशक, रक्तपित्त शामक, शुक्रशोधक ।
कंटक पञ्चमूल	करमर्द, गोक्षुर, संरेयक शतावरी ।	„ „
तृणपञ्चमूल	कुश, काश, नल, शर, दर्भ ।	रक्तपित्त नाशक ।

इस प्रसंग में यह बात स्मरणीय है कि सुश्रुतसंहिता के इन गणों में जो द्रव्य हैं—उनमें से कुछ ऐसे द्रव्य हैं जिनके विषय में निश्चितता से नहीं कहा जा सकता । यह अभी मतभेद का विषय है । चरक संहिता के पचास वर्ग 'कर्म' के प्रकरण में दिये जायेंगे ।

द्रव्यों के कुछ प्रसिद्ध गुण—

गण	द्रव्य
१. अष्टवर्ग	काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, जीवक ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि ।
२. अम्लपंचक	अम्लवेनस, जम्बीर, मातुलुंग, नारंग, निम्बुक ।
३. अम्लवर्ग	जम्बीर, निम्बुक, अम्लवेनस, इमली, नारंग, दाडिम, वृक्षाम्ल, बीजपूर, चांगेरी, चणकाम्ल, कर्कन्धु, करमर्द, चुन्निका ।

४. उपविष अर्कक्षीर, स्नुहीक्षीर, लांगली, करवीर, गुञ्जा, अहिफेन, घृतूर ।
५. चतुरुष्ण सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पलामूल ।
६. चतुर्जात दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर ।
७. चतुर्वीज मेथी, चन्द्रशूर, कालाजाजी, अजवायन ।
८. जीवनीय अष्टवर्ग, मुगदपणी, मासपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी ।
९. त्रिमद बायबिडंग, नागरमोथा, चित्रक ।
१०. त्रिजात दालचीनी, इलायची, तेजपात ।
११. त्रिगन्धक गन्धक, हरताल और मनःशिला ।
१२. त्रिवृत घृत, तैल, वसा ।
१३. त्रिकटक बृहती, कटकारी घन्वयास ।
१४. दशमूल बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी, शालपर्णी, प्रश्निपणी, बृहती, कटकारी, गोक्षुर ।
१५. पञ्चसुगन्धिक कपूर, कंकोल, लौंग, गुवाक, जातिफल ।
१६. पञ्चकोल पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ ।
१७. पञ्चवल्कल वट, उदुम्बर, अश्वत्थ, पारीस, प्लक्ष की छालें ।
१८. पञ्चतृण कुश, काश, शर, दाभ, इक्षु ।
१९. पञ्चगव्य गाय के दधि, दूध, घृत, मूत्र, पुरीष ।
२०. पञ्चलवण सैन्धव, सौवंचल, विड़, सामुद्र, सांभर ।
२१. पञ्चपल्लव आम, जामुन, कपित्थ, बीजपूर, बिल्व के पत्ते ।
२२. पञ्चतिक्त गिलोय, नीम की छाल की छाल, वासा, कटकारी, परोलपत्र ।
२३. पञ्चामृत गिलोय, गोखरू, मूसली, मुण्डी, शतवरी ।
२४. बलाचतुष्टय बला (खरैटी), अतिबला (कंधी), महाबला (सहदेई), नागबला (गंगेरन) ।
२५. महास्नेह घृत, तैल, वसा, मज्जा ।
२६. मधुरत्रयम् खांड, गुड़, और शहद ।
२७. सूत्राष्टक गाय, बकरी, भेड़, भैंस, हाथी, घोड़ा, ऊंट, गधा का मूत्र ।
२८. यमक घृत, तैल ।

२९. षडूष्ण पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च ।
 ३०. क्षाराष्टक पलाश, सेहुण्ड, चिरचिटा, इमली, आकं, तिलका क्षार और जवाखार और सज्जीखार ।
 ३१. क्षारपञ्चक यव, मुष्कक, सर्ज, पलाश, तिल का क्षार ।
 ३२. क्षारत्रय सज्जीखार, जवाखार और टकण ।
 ३३. क्षीराष्टक गाय, भैंस, बकरी, ऊँटनी, स्त्री, भेड़, हथिनी, घोड़ी का दूध ।

२. रस

द्रव्य के पांच पदार्थों में सर्व प्रथम पदार्थ है 'रस' । रस किसे कहते हैं ? इस प्रश्न को यदि आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से देखें तो हम पाते हैं कि मुख्यतः चार अर्थों में यह शब्द प्रयोग में आया है—

१. रस (घातु) शरीर की सप्तघातुओं में से प्रथम घातु रस का ग्रहण होता है क्योंकि वह निरन्तर गतिशील रहता है ।^१

२. रस (पारद) स्वर्ण आदि कभी लोहों को अपने में विलीन करने के कारण रस कहलाता है ।^२

३. रस (कल्पना) वनस्पतियों को पीसकर, निचोड़ कर जो द्रव भाग निकाला जाता है वह रस या स्वरस कहलाता है क्योंकि यह सर्व शरीर में वीघ्रता से व्याप्त हो जाता है ।^३

४. रस (इन्द्रियार्थ) रसनेन्द्रिय के द्वारा जिस विषय का ग्रहण होता है उसे रस कहते हैं । यही द्रव्यगुण विज्ञान का रस है ।^४

ऊपर रस शब्द की चारों निरुक्तियों को बताया गया है । हमारा प्रयोजन केवल चतुर्थ प्रकार के रस से ही है जिसमें बताया गया है कि रसनेन्द्रिय

१. "रसति अहरहर्गच्छतीति रसः ।"

२. रसति भक्षयति सर्वान् लोहान् इति रसः ।

३. रसति शरीरे आशु प्रसरति इति रसः ।

४. रस्यते अस्वाद्यते रसनेन इति रसः ।

के ग्राह्य विषय को रस कहते हैं। अतः उसके लक्षण आदि का वर्णन हम आगे करेंगे।

रस-लक्षण—जैसा कि उपर्युक्त निरूपित से ही स्पष्ट हो जाता है कि रस उसे कहते हैं जो रसनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। चरक में रस की परिभाषा बताते हुए लिखा भी है—“रसना का विषय रस कहा जाता है।^१ मधुर आदि जो भी रस हो; यद्यपि उनमें अपनी-अपनी विशिष्टता होगी तो भी वह सभी होंगे रसना द्वारा ग्रहण करने योग्य। अतः रस वही है जो रसनेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाता है।”

अनुरस—रस के लक्षण के साथ ही यदि यह भी स्पष्ट हो जाए कि अनुरस क्या है तो बहुत ही सुविधाजनक रहे। यहां यह बात तो बताई ही जा चुकी है कि रस व्यक्त होता है, क्योंकि वह जिह्वा के द्वारा जाना जाता है—अनुरस इससे कम शक्ति वाला होता है। इसमें मुख्य रूप से तीन विशेषताएं होती हैं—

१. अव्यक्त अथवा ईषत् व्यक्त—यथा हरीतकी में मधुरस—अनुरस है।
२. अवस्था विशेष में व्यक्त—यथा पिप्पली की आर्द्र अवस्था में मधुर रस अनुरस है।

३. रसाभिभूत (अन्त-व्यक्त)—रस का आरम्भ में बोध होता है और उससे दबे रहने के कारण अनुरस उसके बाद जाना जाता है। यथा-छाछ में आरम्भ में अम्ल रस की प्रतीति होती है और उससे अभिभूत तत्काल रस का ज्ञान अन्त में होता है।

यहां तीन विशेषताएं अनुरस का लक्षण स्पष्ट करने वाली हैं कि “अनुरस वह है जो रस से अभिभूत होने के कारण अव्यक्त रहता है अथवा अन्त में किंचित व्यक्त रहता है।^२

१. “रसनायौ रसः” (चरक सू० अ० १)

२. अनुरसस्तु रसेनभिभूतत्वादव्यक्तो व्यक्तो वा किंचिदन्ते। (अ.सं. सू. १७)

रस संख्या—आयुर्वेद के ग्रन्थों में द्रव्य गत रसों की संख्या ६ बताई गई है। चरक ने रसों की संख्या का संग्रह करते समय बताया है कि मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय छः रस होते हैं।^३

चरक की इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए एक गोष्ठी का वर्णन चरक सूत्रस्थान अध्याय २६ में किया गया है। जिसमें वहाँ पर उपस्थित ऋषियों के रस की संख्या के विषय में मत बताए गए हैं और उन सबके मतों को जानकर प्रत्येक की आलोचना करते हुए महर्षि पुनर्वसु आत्रेय ने सिद्ध किया है कि जैसा कि कहा भी गया है कि रस छः ही प्रकार के होते हैं। उन ऋषियों का मत पुनर्वसु का उत्तर निम्न कोष्ठक द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

ऋषि	रस संख्या	रस नाम	आत्रेय द्वारा समाधान
भद्रकाप्य	१	जल ही रस है	जल आधार है और रस आघेय हैं और आधार आघेय एक नहीं। अतः जल रस नहीं।
शाकुन्तेय ब्राह्मण	२	१. छेदनीय २. उपशमनीय	यह दोनों कर्म होते हैं और रस है कारण। कारण एवं कर्म अलग-अलग होते हैं, अतः यह रस नहीं है।
पूर्णसि मौद्गल्य	३	उपर्युक्त दो और ३. साधारण	"
हिरण्यक्ष	४	१. स्वादु हितकारी स्वादु	एवं अस्वादु व्यक्ति
कौशिक		२. स्वादु अहितकारी विशेष की रुचि के अनुसार	
		३. अस्वादु हितकारी हैं—ये रस नहीं होते और	
		४. अस्वादु अहितकारी इसी प्रकार हितकारी तथा अहितकारी रस के प्रभाव हुआ करते हैं—अतः इनको रस नहीं मान सकते।	
कुमार शिरा-	५	१. पार्थिव	यह पांच भेद द्रव्यों के हुआ

3. स्वबुरम्नाथ लवणः कटुकस्तिषत एव च ।

कषायश्चेतिषट्कोऽयं रसानां संग्रहः स्मृतः ॥ (च. सू. अ. १)

भारद्वाज		२. आप्य	करते हैं किन्तु रस तो द्रव्यों
		३. आग्नेय	के आश्रित है, अतः इन्हें रस
		४. वायव्य	नहीं मान सकते ।
		५. आकाशीय	
राजर्षि	६	१. गुरु, २. लघु	यह छः द्रव्यगत गुण हैं—
वायुर्विद		३. शीत, ४. उष्ण	इनको रस नहीं माना जा
		५. स्निग्ध	सकता क्योंकि यह रसनेन्द्रिय
		६. उष्ण	द्वारा ग्रहण नहीं हो सकते ।
वैदेह निमि	७	१. मधुर	इनमें प्रथम छः तो मान्य हैं क्षार
		२. अम्ल	एक द्रव्य है जो विशेष क्रिया
		३. लवण	द्वारा निर्मित होता है और न
		४. कटु	केवल रसनेन्द्रिय द्वारा अपितु
		५. तिक्त	अन्य इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होता
		६. कषाय	है । इसमें कई रसों का समिश्रण
		७. क्षार	रहता है । अतः क्षार रस
			नहीं ।
वडिश घर्मागव	८	उपर्युक्त सात तथा	अव्यक्त और व्यक्त होना तो
		८. अव्यक्त	रस की अवस्थाएं होती हैं ।
			हरीतकी आदि में रस व्यक्त
			होता है और जल में अव्यक्त
			रहता है अतः इसे रस नहीं
			मान सकते ।
कांकायन	असंख्य	इक्षु, गुड़, दुग्ध	रसों के आश्रय, कर्म एवं स्वाद
		सभी मधुर रस हैं	आदि भिन्न होने पर भी रस की
		किन्तु भिन्न २	संख्या में कोई अन्तर नहीं
		स्वाद देते हैं ।	आता । यह तो इनका अनेक
			प्रकार के संसर्ग होने पर बना
			स्वरूप होता है ।

और इन सबके मतों का खण्डन कर पुनर्वसु आत्रेय ने सिद्धान्त स्थापित किया कि रस छः प्रकार के हैं । ¹

पांचभौतिकत्व—

द्रव्यों की भांति रस भी पांचभौतिक हैं । यह बात हम दो प्रमाणों के द्वारा स्वीकार करते हैं—

१. आप्तोपदेश द्वारा

२. अनुमान द्वारा

आप्त पुरुषों ने तो बताया है कि रस पांचभौतिक हैं और उनको अनुमान द्वारा भी हम जान सकते हैं और अनुमान लगाते हैं उनके कार्यों को देखकर, उदाहरण के रूप में देखिये—लवण रस कफ एवं पित्तवर्धक होता है । इनमें कफ जल से बढ़ता है, और पित्त अग्नि से बढ़ता है, अतः स्पष्ट हो जाता है कि लवण रस में दो महाभूत बहुलता से होते हैं—अग्नि एवं जल । इसी प्रकार अन्य रसों के विषय में भी जानना चाहिये ।

यह रस यद्यपि पंचमहाभूतों से ही उत्पन्न होता है तो भी प्रत्येक रस में दो-दो महाभूतों की अधिकता होती है । यहाँ उन्हीं दो महाभूतों की अधिकता होना ऋतु पर निर्भर करता है । उस ऋतु विशेष में ही इन दो महाभूतों की बाहुल्यता पाई जाती है जिस में कि उस रस की उत्पत्ति होती है । यह बात निम्न कोष्ठक द्वारा स्पष्ट हो जाती है—

रस	महाभूत	ऋतु
मधुर	पृथ्वी + जल	हेमन्त
अम्ल	पृथ्वी + अग्नि	वर्षा
लवण	जल + अग्नि	शरद्
कटु	वायु + अग्नि	ग्रीष्म
तिक्त	वायु + आकाश	शिशिर
कषाय	वायु + पृथ्वी	वसन्त

1. षडेव रसा इत्युवाच भगवानात्रेय पुनर्वसुः

मधुराम्ल लवण कटुतिक्त कषायाः ।”

(च० सू० अ० २६)

रस	लक्षण	गुण	कर्म
मधुर	स्नेहन, तपण, आह्लादक, मृदुताकारक, मुखलेप कर्ता, कफजनक तथा षट्पद पिपीलिका आदि को प्रिय	स्निग्ध, गुरु, शीत,	सप्तधातु वर्धक, श्रायुष्य, षडिन्द्रिय प्रसादक, बलवर्णकारक, वात-पित्त-विष नाशक, तूष्णादाहप्रशामक त्वचा को हितकारक, केश्य एवं कंठ के लिए हितकारक, जीवनीय, तर्पक एवं वृंहण, मूर्च्छा न'शक तथा शुक्र स्तम्भ्यवर्धक ।
अम्ल	दन्तहर्षण, प्रस्रावण, स्वेदन, रोचन, मुख-शोधन, नेत्रभ्रू निकोचन, रोमाचकार तथा हृद्य	स्निग्ध, लघु, उष्ण	रोचक, अग्निदीपक, पाचक, वृंहण, मन प्रसादक, इन्द्रिय दृढकारक, बलकारक, वातानुलोमक, हृदयतर्पक, लालास्रावक, क्लेदक, मूत्रल, शुक्लघ्न ।
लवण	आशुविलयन, मार्दवकर, रोचन, मुख गल-कंठ तथा कपोल विदाहजनक	स्निग्ध, उष्ण, गुरु	क्लेदन, दीपन, पाचन, भेदन, रोचन, लालास्रावजनक, रक्तकोपक, मूत्रल, कफनिःसारक, शुक्लघ्न, धातुनाशन

1. रसों के लक्षण एवं कर्म प्रादि का विवरण चरक सूत्रस्थान अध्याय २६ पर आधारित है ।

कटु	जिह्वा से लगते ही उद्वेजक और तादकः मुख, नासा और नेत्र से विदाह सहित स्राव कराता	रुक्ष उष्ण लघु	मुखशोषक, अग्निदीपक, पाचक, नाक-ग्राह से जल स्रावक। इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला, श्रलसक, शीय, उपचय, उदरदं, अभि- ष्यन्द, स्नेह, स्वेद, क्लेद, मल शोषक, रोचक, कण्डू नाशक, व्रण अवसादक, त्रिभिनाशक, मांस का लेखन करने वाला, मार्ग खोलने वाला और कफ नाशक, श्रवण एवं घातु नाशक।
तिक्त	जिह्वा से लगते ही अन्य आस्वादों को नष्ट कर्त्ता, स्वयं अप्रिय किन्तु रुचिकारक, मुख शोषक एवं शोषक, कंठशोषक, शैत्यकर	रुक्ष शील लघु	रोचन, विषघ्न, कुमिघ्न, मूर्च्छा, दाह, कण्डू, कुष्ठ, तृष्णा शामक, त्वचामांस स्थिरकर्त्ता, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, स्तन्य, शोधन, लेखन, क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, लसीका, पूय स्वेद मूत्र, पुरीष, पित्त एवं कफ शोषक।
कषाय	जिह्वा में वैशद्य, स्तम्भ एवं जड़ता तथा कण्ठ में स्तम्भकारक	रुक्ष शीत गुरु	संशमन, संग्राही, सन्धानकर, पीडन, रोपण शोषण, स्तम्भन, कफ, पित्तरक्त शामक, शरीर क्लेद को शुष्क करता, लेखन।

रस वर्गीकरण—जगत आग्नेय एवं सौम्य है, अतः इन छः रसों में से कुछ आग्नेय हैं और कुछ सौम्य । आग्नेय उष्ण होते हैं और सौम्य शीतल ।

छः रसों में से आग्नेय एवं सौम्य रस निम्नवत् हैं—

आग्नेय रस

सौम्य रस

१. अम्ल

१. मधुर

२. लवण

२. तिक्त

३. कटु

३. कषाय

आग्नेय पित्तवर्धक होते हैं और सौम्य पित्त शामक होते हैं ।

दोषों पर प्रभाव—

शमन

कोषण

वात मधुर, अम्ल, लवण

वात कटु, तिक्त, कषाय

पित्त कषाय, तिक्त, मधुर,

पित्त कटु, अम्ल, लवण

कफ कटु, तिक्त, कषाय

कफ मधुर, अम्ल, लवण

रसों के गुण कर्म आदि का जो वर्णन किया है उस विषय में दो बातें ज्ञातव्य हैं ।

(क) रस के जो लक्षण अथवा गुण कर्म बताए हैं वह उस द्रव्य के लक्षण अथवा गुण कर्म मानने चाहिए, जिसमें उस रस की प्रधानता हो । कारण यह कि रस तो आश्रित है उसका आश्रय द्रव्य ही है । अतः वे सब द्रव्य के ही लक्षणादि हैं तो भी क्योंकि यह सब द्रव्याश्रित रस के द्वारा होता है, अतः उन्हें रस के लक्षण, गुण, कर्म आदि कहा जाता है ।

(ख) उपर्युक्त गुण कर्म आदि साधारण सिद्धांत हैं । कुछ स्थानों पर इन सिद्धान्तों से विपरीत बातें भी मिलती हैं । यहां पर उदाहरण के लिए कुछ अपवाद नीचे देते हैं—

(१) आंवला 'अम्ल' (रसवाला) है । अतः उष्ण गुण होना चाहिए किन्तु शीत है ।

(२) हरड़ 'कषाय' (रसवाली) है । अतः शीत गुण होना चाहिए किन्तु उष्ण है ।

1. चरक सूत्रस्थान अध्याय १ के आधार पर ।

(३) मधुररस कफवर्धक होना बताया है किन्तु शब्द 'मधुर' होते हुए भी कफ नहीं बढ़ाता ।

(४) कटुरस वातवर्धक होना बताया है किन्तु सौंठ 'कटु' होते हुए भी वातवर्धक नहीं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रसों के जो भी गुण आदि कहे गए हैं वह सब उनके आश्रय द्रव्य के गुण होते हैं तथा कुछ स्थानों पर इस सिद्धान्त के अपवाद भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

रस अतियोगज विकार^२—

यदि इन रसों में से किसी का भी अतियोग होगा तो वह अनेक विकार उत्पादक हो जाएगा । उन विकारों का वर्णन करने से पूर्व यह बात पुनः स्मरण करानी है कि यहां पर 'रस' शब्द से उसके आश्रय भूत द्रव्य का ही ग्रहण करना चाहिए, जैसा कि पहले ज्ञात भी आए हैं ।

रस

अतियोगज विकार

मधुर	स्थूलता, मृदुता, आलस्य, अतिनिद्रा, गोरव, अरूचि, अग्निमन्दता, मुख एवं कण्ठ में मांस वृद्धि, श्वास, कारु, प्रतिश्याय, अलसक, शीतज्वर, आनाह, मुखमाधुर्य, वमन, संज्ञानाश, स्वरभंग, कृमि, गलगण्ड, गण्डमाला, अर्बुद, श्लोषद, गलशोफ, वास्ति, घमनी, गले में चिकनाहट, अभिष्यन्द, नेत्र रोग एवं कफज रोग ।
अम्ल	दन्तहर्ष, तृष्णा, अक्षिनिमीलन, रोमाञ्च, कफ पतला करने वाला, पित्त वृद्धि, रक्तदोष, मांस विदाह, शरीर शिथिलता, शोथ, क्षत, पाक, कण्ठ-वक्ष-हृदय में दाह तथा पित्तज रोग ।
लवण	पित्त प्रकोप, रक्त प्रकोप, तृष्णा, मूर्च्छा, सन्ताप, विदार, मांसकोप, कुष्ठ, विष, शोथ, दन्तच्युति, नपुंसकता, इन्द्रिय नाश, पालित्य, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वात-रक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त ।
कटु	नपुंसकता, मूर्च्छा, ग्लानि, कृशता, भ्रम, दाह, दुर्बलता, तृष्णा, कम्प, अंगशूल, एवं वात विकार ।

2. चरक सूत्र स्थान अध्याय २६ के अनुसार ।

- तिक्त** घातु शोष, स्रोतों में खरता, दुर्बलता, कृशता, ग्लानि, मूर्च्छा, भ्रम, मुख शोष, एवं वातिक विकार ।
- कषाय** मुख शोष, हृच्छुल, आध्मान, स्वरभेद, स्रोतावरोध, श्यानवता, नपुंसकता, विष्टम्भ, वात-मल-मूत्र-शुक्र का अवरोध, कृश, ग्लानि, तृष्णा. स्तम्भ, पक्षाघात, अपतानक, अर्दित एवं वात रोग ।

रसान्तर में कारण—

कुछ विशिष्ट कारणों से द्रव्याश्रित एक रस दूसरे रस में बदल जाता है ।
वे कारण निम्न हैं—

१. काल स्थिति—द्रव्य पुराना होने पर रस में परिवर्तन आजाता है । यथा चावल का भात मधुर है किन्तु कुछ समय तक रखा रहे तो अम्ल हो जाता है ।

२. पात्र स्थिति—यथा काँसी के पात्र में दधि कटु हो जाती है ।

३. संयोग—यथा चूने के संयोग से इमली मधुर हो जाती है ।

४. पाक—यथा जामुन पकाने से मधुर हो जाता है ।

५. आतप—यथा तुम्बरू फल कषाय रस है, उसे धूप में सुखाया जाए तो मधुर हो जाता है ।

६. भावना—यथा कषाय रस प्रधान तिल मुलहठी की भावना से मधुर हो जाते हैं ।

७. परिणाम—यथा दूध-दधि में परिणित हो कर अम्ल हो जाना है ।

८. उपसर्ग—यथा मधुर गन्ने में कृमि लगने से अम्लता या तिक्तता आ जाती है ।

९. देश—यथा कुछ प्रदेशों का आँवला अम्ल न होकर मधुर होता है ।

१०. विक्रिया—यथा कटहल का फल कुछ देर तक हाथ में मला जाए तो अम्ल हो जाता है ।

रस उपलब्धि—

ज्ञान प्राप्ति के प्रमुख तीन ही साधन होते हैं और उनसे ही रस उपलब्धि भी सम्भव है । वे तीन हैं—

(क) प्रक्षत्य

(ख) अनुमान

(ग) आप्तोपदेश ।

रस उपलब्धी में प्रत्यक्ष ही सर्व प्रमुख माना जाता है क्योंकि जिह्वा से प्रत्यक्ष होने वाला गुण ही रस होता है। अतः किसी द्रव्य का रस जानते हुए प्रत्यक्ष ही साधन है।^१ तो भी कुछ द्रव्यों के रसों की उपलब्धी अनुमान तथा आप्तोपदेश से होती है। यथा अव्यक्तावस्था में स्थित रस का ज्ञान आप्तोपदेश से अथवा उसके कर्म देख कर अनुमान द्वारा किया जाता है। सोना कषाय-मधुर रस है, यह भी जिह्वा नहीं बता सकती, अतः आप्तोपदेश एवं अनुमान से जाना जाता है।

रस भेद विकल्प^२—

द्रव्यों में देश-काल भेद से भूतों की न्यूनता-अधिकता के अनुसार एक-दो अथवा अधिक रस रहा करते हैं। उनके संयोग के अनुसार कल्पना करने से मुख्य रूप से ६३ भेद होते हैं। यद्यपि यह असंख्य हो सकते हैं। इसी प्रकार का विकल्प वात-पित्त-कफ का भी है वे भी ६२ हैं। शास्त्रों में बताया गया है कि जिस द्रोष विकल्प में जो रस विकल्प उपयुक्त हो वहां उस विकल्प वाले द्रव्यों का प्रयोग कराया जाए। नीचे उन ६३ भेदों को उदाहरण सहित बताते हैं—

एक रस वाले विकल्प—६

मधुर	गाय का दूध	अम्ल	कच्चा करौंदा
लवण	सैन्धव	कटु	पिप्पली
तिक्त	नीम	कषाय	पद्म

दो रस वाले विकल्प—१५

मधुर अम्ल	बैर	मधुर-लवण	ऊंटनी का दूध
मधुर कटु	कुत्ते का मांस	मधुर तिक्त	गन्धा बिरोजा
मधुर कषाय	तिल तैल	अम्ल लवण	क्षार मृत्तिका
अम्ल कटु	चुक्र	अम्ल तिक्त	सुरा
अम्ल कषाय	हथिनी की दही	लवण कटु	गोमूत्र
लवण तिक्त	शीशा	लवण कषाय	समुद्र फेन
कटुतिक्त	कपूर	कटुकषाय	भिलावा
तिक्त कषाय	हस्तिनी घृत		

१. रसो निपाते द्रव्याणाम् (च० सू० २६)

२. विकल्पों के उदाहरण द्रव्य गुण विज्ञान के आधार पर।

तीन रस वाले विकल्प—२०

मधुर अम्ल लवण	हाथी का मांस
मधुर अम्ल कटु	शल्यक मांस
मधुर अम्ल तिक्त	गोधूम सुरा
मधुर अम्ल कषाय	तक्र
मधुर लवण कटु	जंगली कबूतर का मांस
मधुर लवण तिक्त	घोघा का मांस
मधुर लवण कषाय	गुड़ युक्त कमल कंद
मधुर कटु तिक्त	सूखा घनिया
मधुर कटु कषाय	एरण्ड तैल
मधुर तिक्त कषाय	गुडूची
अम्ल लवण कटु	चांदी
अम्ल लवण तिक्त	हाथी का मूत्र
अम्ल लवण कषाय	हस्तिनी के दही में सांभर का नामक
अम्ल कटु तिक्त	मरिचयुक्त सुरा
अम्ल कटु कषाय	अम्ल बेत
अम्ल तिक्त कषाय	शुक मांसयुक्त सुरा
लवण कटु तिक्त	भेड़ का मूत्र
लवण कटु कषाय	भिलावे में सांभर नमक
लवण तिक्त कषाय	समुद्रफेन
कटु तिक्त कषाय	काला अगर

चार रस वाले विकल्प—१५

मधुर अम्ल लवण कटु	गोमूत्र युक्त शिलाजीत
मधुर अम्ल लवण तिक्त	गोमूत्र मिला घोड़ी का दूध
मधुर अम्ल लवण कषाय	सैन्धव युक्त तक्र
मधुर अम्ल कटु तिक्त	लशुन युक्त सुरा
मधुर अम्ल कटु कषाय	कांजी युक्त एरण्ड तैल
मधुर अम्ल तिक्त कषाय	तुरंजबीन मिला गलर का दूध

मधुर लवण कटु तिक्त	वैगन
मधुर लवण कटु कषाय	गोमूत्र युक्त तिल तैल
मधुर लवण तिक्त कषाय	समुद्र फेन
मधुर कटु तिक्त कषाय	गुग्गुल
अम्ल लवण कटु तिक्त	हथिनो की दही की बनी सुरा में सौंचल
अम्ल लवण कटु कषाय	हथिनी के दही में सौंचल
अम्ल लवण तिक्त कषाय	शुक मांस में रेह
अम्ल कटु तिक्त कषाय	हस्तिनी दधि
लवण कटु तिक्त कषाय	कच्चे बेल फल में सांभर मिला

पांच रस वाले विकल्प—६

मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त	कच्चे करौंदे में मिला हुआ भुना वैगन
मधुर अम्ल लवण कटु कषाय	त्रिकटु और यवक्षार मिला तक्र
मधुर अम्ल लवण तिक्त कषाय	औद्भिद् लवण मिला तक्र
मधुर अम्ल कटु तिक्त कषाय	हरड़
मधुर लवण कटु तिक्त कषाय	रसोन
अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय	भिलावा

छः रसों का विकल्प—१

मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय काले हरिण का मांस

३. गुण

गुण-निरुक्ति—

यदि गुण निरुक्ति का विचार किया जाय तो हम पाते हैं कि इसका गुण संज्ञा इसके 'गोण' होने के कारण है। इसके 'गोण' होने के दो प्रमाण हैं—

(क) चिकित्सा शास्त्र में चिकित्सक कर्त्ता है और इसका 'कारण' द्रव्य है। द्रव्य शरीर पर तभी कोई कर्म कर सकता है जबकि उसमें गुण हों। गुण द्रव्य के आश्रित रहते हैं। इस तरह द्रव्य आधार है और गुण आधेय। आधार सदैव प्रधान होता है और आधेय गौण। गौण होने पर इन्हें गुण कहा जाता है।

(ख) द्रव्य में कर्म एवं गुण आश्रित होते हैं। इन में से कर्म चेष्टावान होता है जब कि गुण निश्चेष्ट। चेष्टावान प्रधान और निश्चेष्ट 'गौण' होता है। अतः इसे गुण कहा जाता है।

गुण-लक्षण—

जो समवाय सम्बन्ध से द्रव्य में आश्रित हो तथा चेष्टा रहित हो वह कारण 'गुण' कहलाता है।^१ इसके लक्षण के विषय में और भी कई मत हैं किन्तु उपयुक्त यही है। रस वैशेषिककार ने लिखा है—“जिन पदार्थों में अनेकविध लक्षण मिलते हैं, वह गुण कहलाते हैं।” अनेक विध की व्याख्या इस प्रकार की जाती है कि रस केवल रसनेन्द्रिय से ग्रहण होता है, परिणाम लक्षण वाला विपाक है और कर्म लक्षण वाला वीर्य होता है किन्तु शीत उष्ण गुण स्पर्श द्वारा जाने जाते हैं और गुरु-लघु भार द्वारा जाने जाते हैं। इसी प्रकार दूसरे गुणों के विषय में भी जानना चाहिए।

वर्गीकरण—

गुणों का वर्गीकरण करते हुए चरक का यह आधार मान्य है जिसमें लिखा है—“सार्था, गुरु आदि, बुद्धि-प्रयत्नान्ता एवं परादि गुण होते हैं।”^२ इनमें ‘सार्था’ गुण वे हैं जो पञ्चमहाभूतों के गुण हैं—इन्हें विशिष्ट गुण कहा जाता है। गुरु आदि गुण द्रव्यगत रहने वाले गुण हैं—इन्हें विशिष्ट गुण कहा जाता है। बुद्धि प्रयत्न आदि जो गुण हैं वह आध्यात्मिक गुण कहलाते हैं। परादि गुण सामान्य गुण होते हैं—

(१) विशिष्ट गुण—५

(३) आध्यात्मिक गुण—६

(२) गुर्वादि गुण—२०

(४) परादि गुण—१०

विशिष्ट गुण—

यह पञ्चमहाभूतों में से प्रत्येक के एक-एक गुण हैं जो एक-एक इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण किए जाते हैं—उनका सम्बन्ध निम्न कोष्ठक से स्पष्ट हो जाता है।

गुण

महाभूत

गुण ग्राह्य इन्द्रिय

शब्द

आकाश

श्रोत्र

१. तन्नामो तु निश्चेष्टः कारणं गुणः। (च० सू० अ० १.)

२. सार्थाः गुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नन्ताः परादयः। गुणा प्रोक्ताः—(च० सू० अ० १.)

स्पर्श	वायु	स्पर्शेन्द्रिय
रूप	अग्नि	चक्षु
रस	जल	रसना
गन्ध	पृथ्वी	घ्राण

इन में 'रस' द्रव्यगुण विज्ञान का विषय है जिसका विस्तार से वर्णन हम ने कर दिया है शेष चार मनोविज्ञान अथवा शरीर क्रिया विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं—अतः उनकी व्याख्या हमें अपेक्षित नहीं ।

आध्यात्मिक गुण —

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख प्रयत्न और बुद्धि इन्हें आत्मगुण या आध्यात्मिक गुण कहा जाता है ।¹ यह पदार्थ विज्ञान का विषय है । अतः इनकी व्याख्या हमें अपेक्षित नहीं ।

गुर्वादि गुण—

यह शरीर गुण कहे जाते हैं । वास्तव में देखा जाए तो 'द्रव्य गुण विज्ञान' में गुण शब्द से इनका ग्रहण होता है । 'द्रव्य' चिकित्सक का 'करण' है । अतः इनके द्वारा ही शरीर के रोगों को दूर किया जाता है । यह बात यहाँ स्मरणीय है कि हमारे शरीर में यही गुण है और द्रव्यों में भी यही बीस गुण होते हैं, अतः सामान्य वृद्धि कर्ता और विशेष ह्रास कर्ता होता है ।² इस सिद्धान्त के अनुसार हम कहेंगे कि क्षीण हुए गुण को समानावस्था में लाने के लिए उस के समान गुणसामान्य वाले द्रव्यों का प्रयोग कराया जाए और वृद्धि को प्राप्त हुए गुण को घटाकर समानावस्था में लाने के लिए उससे विपरीत गुण (विशेष) वाले द्रव्यों का प्रयोग कराया जाय । इस तरह शरीरस्थ गुणों को समानता में रख कर स्वास्थ्य लाभ कराएं ।

ये बीस गुण तथा इनका भौतिक स्वरूप, पञ्चभूतात्मक संघटन, दोषों पर प्रभाव तथा कर्म आदि का विवरण पृष्ठ ३७-३८ से स्पष्ट हो जायेगा, तथा प्रत्येक के उदाहरण भी साथ में मिल जाएंगे ।

1. इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना घृतिः । (च० शा० अ० १)

2. 'सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।

ह्रास हेतुविशेषश्च.....॥ (च० सू० अ० १६)

परादि गुण १०—

परादि गुण यद्यपि द्रव्यगुण विज्ञान में विशेष महत्व नहीं रखते तो भी चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने के लिए इनका जानना आवश्यक है, अतः संक्षेप में इनके विषय में लिखा जाता है ।

१. पर—किसी भी जाति में, रस-गुण वीर्य-विपाक में प्रधान को अथवा हितकारक को 'पर' गुण कहा जाता है ।

२. अपर—पर से विपरीत है । यह निकृष्ट अथवा अहितकारक होता है ।

३. युक्ति—दोष आदि का विचार कर द्रव्य का विचार कर उसे उचित ढंग से प्रयोग करना युक्ति कहलाता है । जो व्यक्ति द्रव्य के नाम रूप को जानता हो किन्तु उसका प्रयोग करने की युक्ति न जानता हो वह योग्य नहीं कहलाता ।

४. संख्या—गणना के द्वारा—एक-दो-तीन को 'संख्या' कहा जाता है । द्रव्य कितने प्रकार के हैं—रस कितने हैं यह 'संख्या' द्वारा जाने जाते हैं ।

५. संयोग—दो द्रव्यों का परस्पर मिलन संयोग कहलाता है । इसके तीन भेद बताए जाते हैं ।

६. विभाग—द्रव्य के विभाजन को विभाग कहते हैं । यथा किसी वृक्ष के फल को अलग कर लेना ।

७. पृथक्त्व—दो चीजों के अलग-अलग होने को पृथक्त्व कहा जाता है ।

८. परिमाण—माप-तोल आदि का जो कारणभूत गुण है उसे परिमाण कहा जाता है ।

९. संस्कार—जिस गुण के द्वारा द्रव्यों के स्वाभाविक गुणों में परिवर्तन लाया जाए ।

१०. अभ्यास—किसी द्रव्य को लगातार लेते रहना अभ्यास कहलाता है ।

गुण-स्वरूप—

गुण का विषय सम्पूर्ण करने से पूर्व एक बात और विचारणीय है वह यह कि गुण का स्वरूप क्या है । आयुर्वेद में 'गुण' की जो व्याख्या की है वह इनके भौतिक स्वरूप मात्र को ही नहीं बताती अपितु इनके द्वारा शरीर पर हुई

गुण	प्रसिद्ध नाम	श्रांगल भाषा	दोषों पर प्रभाव	'प्रधान कर्म'	'अन्य' कर्म	उदाहरण
गुरू	भारीपन	Heaviness	कफकारक; वातहारक	वृंहण	गुरुताकारक, गुरुपाकी माष, मूशली आदि	
लघु	हलकापन	Lightness	वातकारक कफहारक	लंघन	दुर्बलता, कृशताकारक लघुपाकी	मूंग, लाजा आदि
शीत	टण्डक	Cold	वातकफकारक पित्तहारक	स्तम्भन	मूछा, तृषा, दाह, स्वेदन नाशक	चन्दन आदि
उष्ण	गर्मी	Heat	पित्तकारक वातकफहारक	स्वेदन	पाचक, मूच्छा, एवं दाहकारक	चित्रक आदि
स्निग्ध	चिकनाहट	Soothingness	कफकारक वातहारक	क्लेदन	बल्य-वाजीकर, स्नेह मार्दवकर	घृत आदि
रूक्ष	रूखापन	Dryingness	वातकारक कफहारक	शोषण	रूक्षता, कठिनता करने वाला	यव आदि
मन्द	सुस्ती	Dullness	कफकारक पित्तहारक	शमन	कम कार्य करना और देर में कार्य करना	अमृता आदि
तीक्ष्ण	तेजी	Sharpness	पित्तकारक कफहारक	शोधन	लेखन, दाह, पाक- सावकर्ता	जमालगोटा आदि

स्थिर	गतिहीनता	Immobility	कफकारक	घारण	स्तम्भन	जायफल
सर	गतिशीलता	Mobility	कफहारक	प्रेरण	वात-मल प्रवर्तक	अमलतास आदि
मृदु	मुलायमियत	Softness	कफकारक	श्लथन	दाह-पाक स्रवनाशक	पण्ड तेल आदि
कठिन	कड़ापन	Hardness	वातकारक	दृढीकरण	मलशोषक	प्रवाल आदि
विशद	स्वच्छता	Clarity	वातकारक	क्षालन	क्लेदशोषक एवं व्रण रोषक	क्षार आदि
पिच्छिल	लुग्राव	Sliminess	कफकारक	लेपन	जीवनीय, बलकारक	इसवगोल आदि
श्लक्ष्ण	चिकनापन	Smoothness	पित्तकारक	रोपण	धातुवर्धक, मलप्रवर्तक	दुग्धपाषाण
खर	खुरदरापन	Roughness	वातकारक	लेखन	मलशोषक एवं धातु हासकारक	करञ्जफल आदि
सूक्ष्म	छोटापन	Minuteness	वातकारक	विवरण	लघुपाकी, धातुहास	मद्य आदि
स्थूल	मोटापन	Bulkiness	कफकारक	संवरण	स्थूलाकारक, स्रोत-रोषक एवं गुरुपाकी	दधि आदि
सान्द्र	गाढापन	Solubility	कफकारक	प्रसादन	धातुवर्धक, स्थूलता कारक	मक्खन आदि
द्रव	पतलापन	Fluidity	कफपित्तवर्धक	विलोडन	क्लेदकर, प्रसारी	जल आदि

क्रियाओं के आधार पर भी बताती है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुण "भौतिक एवं कार्मुक गुण हैं।" डा० घाणेकर ने सुश्रुत संहिता की व्याख्या करते हुए इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार गुण न केवल भौतिक हैं न ही कर्म हैं, क्योंकि यदि इनको कर्म मान लिया जाए तो फिर दोनों को अलग करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अतः गुण से उनका भौतिक होना और साथ ही साथ कार्मुक होना दोनों ही स्वीकार करना चाहिए। यथा 'उष्णोदक' उष्णगुण है, इसके भौतिक स्वरूप में स्पर्श द्वारा उष्णता पा सकते हैं और शरीर में जाकर यह उष्णता की वृद्धि भी करता है। कहीं-कहीं केवल उसके शरीर पर हुए कर्मों द्वारा अनुमान लगाया जाता है कि कौन गुण है ?

४. वीर्य

'वीर विक्रान्तौ' घातु से वीर्य शब्द की उत्पत्ति हुई है। इसकी निरुक्ति है, "जिसके द्वारा द्रव्य कर्म सम्पादन में समर्थ होता है वह वीर्य कहलाता है।^१ इसी से इसका लक्षण भी स्पष्ट हो जाता है कि 'वीर्य वह शक्ति है जिसके द्वारा द्रव्य कर्म करता है।'^२

वीर्य क्या है इस विषय में यदि विचार करें तो मुख्य रूप से तीन प्रकार के विचार सम्मुख आते हैं—

१. गुण वीर्यवाद, २. कर्म वीर्यवाद, ३. द्रव्य वीर्यवाद।

१. गुण वीर्यवादियों में चरक का कहना है कि 'शक्ति मात्र' वीर्य है। और सुश्रुत का मत है कि जो गुण अधिक शक्तिसम्पन्न होते हैं वह वीर्य कहलाते हैं।

1. वीरयते विक्रान्तः कर्मसमर्थो भवति अनेन इति वीर्यम् ।"

2. येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम् ।" (च० सू० अ० २६)

वीर्यं द्रव्यस्य तज्ज्ञेयं यद्योगात् क्रियते क्रिया ।

नावीर्यं कुरुते गिञ्चित् सर्वाः वीर्यं हि सा ।' (अ० सं० सू० अ० २७)

२. कर्म-वीर्यवाद के मानने वाले नागार्जुन हैं। वीर्य ही कर्म करता है, इसलिए वीर्य कर्मात्मक है।

३. द्रव्य वीर्यवाद के प्रवर्तक आधुनिक वैज्ञानिक हैं। उनका कहना है कि वीर्य के द्वारा जो भी कर्म होते हैं वह द्रव्य में स्थिति उत्कृष्टांश से होते हैं जिसे 'ऐक्टिव प्रिंसिपल' (Active Principle) कहा जाता है और यह द्रव्य स्वरूप होता है।

यदि देखा जाय तो यह सभी मत अपने-अपने दृष्टिकोण से बिलकुल उचित है क्योंकि—“वीर्य एक शक्ति है, शक्ति उत्कृष्ट गुण को कहा जाता है जो कर्म को करने वाला होता है और यह द्रव्य के सार भाग में स्थित रहता है।” इस प्रकार विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि वीर्य शक्ति है, जिस का अधिष्ठान द्रव्य का सार भाग (Active Principle) होता है और यह शरीर में गुरुता, लघुता आदि गुणों को तथा छेदन-अनुलोमन आदि कर्मों को करने वाला है।”

संख्या—

जिस प्रकार वीर्य क्या है इस विषय में अनेक मत हैं, उसी प्रकार उसकी संख्या के विषय में भी अनेक मत हैं। प्रमुखरूप से वह मत तीन हैं—

(१) अनेक विध वीर्य, (२) अष्ट विध वीर्य, (३) द्विविध वीर्य।

वीर्य एक शक्ति है। इस सिद्धांत को मानने वालों का कहना है कि वीर्य की संख्या को सीमित नहीं किया जा सकता। इनका मत है कि जिस द्रव्य में जैसा कार्य करने की शक्ति है उसके अनुसार ही उसमें वीर्य है और यह शक्तियां असंख्यविध हैं, अतः वीर्य भी असंख्य है, उन की संख्या निर्धारित नहीं हो सकती।

अष्ट विध वीर्य मानने वालों का मत है कि बीस गुणों में से केवल आठ उत्कृष्टता को प्राप्त होते हैं, अतः उन आठ को ही वीर्य मानना चाहिए। वे आठ निम्न हैं—

१. शीत, २. उष्ण, ३. स्निग्ध, ४. रुक्ष, ५. गुरु, ६. लघु, ७. मृदु, ८. तीक्ष्ण।

बीस में से आठ ही उत्कृष्ट वीर्य हैं ? इसके भी प्रमाण दिए गए हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

१. समग्रगुण ससृता—यह सर्वाधिक सारवान होते हैं और ये गुण अधिक समय तक रह सकते हैं ।

२. शक्त्युत्कर्ष—अन्य गुणों की अपेक्षा यह अधिक शक्तिशाली होते हैं ।

३. व्यवहारमुख्यता—व्यवहार में भी इन गुणों की ही मुख्यता पाई जाती है, अन्य की नहीं । जैसा कि कहा जाता है, यह ठंडा है, गर्म है, भारी है, हलका है आदि ।

४. बहुलता—द्रव्यों में जो गुण बताए गए हैं, उन गुणों में इन आठ की ही पुनरावृत्ति होती है । इसका अर्थ है कि यह आठ ही अधिक प्रयोजनीय हैं ।

५. उपयोगिता—इन आठ की ही उपयोगिता भी अधिक है ।

६. प्रबलता—यह रस विपाक अथवा अन्य गुणों को अभिभूत करने की शक्ति रखते हैं । अतः दूसरे गुणों की अपेक्षा प्रबल होते हैं ।

इन छः युक्तियों को बताकर यह सिद्ध किया गया है कि अन्य गुणों की अपेक्षा केवल इन आठ में ही उत्कृष्टता है, अतः इन आठ को ही वीर्य माना जाता है ।

द्विविध वीर्यवादियों का मन है कि यह जगत अग्निषोमीय है । अतः इसमें प्राप्त होने वाले सब द्रव्य भी दो प्रकार के ही हो सकते हैं—

१. आग्नेय जिन्हें 'उष्ण' कहा जाता है ।

२. सोम्य जिन्हें 'शीत' कहा जाता है ।

अतः दो ही प्रकार के वीर्य हैं—

(क) उष्ण वीर्य, (ख) शीत वीर्य ।

वीर्यों का भौतिक संगठन—

'वीर्य' भी पाञ्चभौतिक है । अतः यह जानना आवश्यक है कि किस महाभूत की अधिकता से किस वीर्य की उत्पत्ति होती है । आठों प्रकार के वीर्यों में भूतोत्कर्ष निम्न प्रकार से बताया गया हैः—

वीर्य	भूतोत्कर्ष	वीर्य	भूतोत्कर्ष
शीत	पृथ्वी + जल	उष्ण	अग्नि
स्निग्ध	जल	रूक्ष	वायु
गुरू	पृथ्वी + जल	लघु	अग्नि + वायु + आकाश
मृदु	जल + आकाश	तीक्ष्ण	अग्नि
कर्म—			

१. शीत वीर्यं मुखद, स्रावों को रोकना, स्थिरीकरण, प्रसादन, वेदना जीवन, स्तम्भन. कफ वात कारक. गुरू, बल्य ।
२. उष्ण वीर्यं दहन, पाचन, मूर्च्छन, स्वेदन, वमन, विरेचन, विलयन, वात कफ शमन, पित्त जनन, भ्रम उत्पन्न करना, तृष्णा, ग्लानि, लघु, अवृण्य ।
३. स्निग्ध वीर्यं स्नेहन, वृंहण, संतर्पण, वाजीकरण, वयःस्थापन, वातहर ।
४. रूक्षवीर्यं संग्राही, पीड़न, विरूक्षण, उपरोपण, वातवर्धन, कफ शमन ।
५. गुरू वीर्यं उपलेप, वृंहण, वातहर, वाजीकरण ।
६. लघु वीर्यं लेखन, कफहर, विरूक्षण ।
७. मृदु वीर्यं प्रसादन, पित्त शमन ।
८. तीक्ष्ण वीर्यं संग्राही चूषण, भवदारण, स्रावण, कफहर ।

वीर्य उपलब्धि—

वीर्य का ज्ञान प्राप्त करने के दो साधन हैं । प्रत्यक्ष और अनुमान । कुछ द्रव्यों का वीर्य बोध-प्रत्यक्ष से (स्पर्श द्वारा शीत-उष्ण-मृदु का ज्ञान होना आदि) और इस क्रिया को निपात कहते हैं जो द्रव्य इन्द्रिय के साथ सम्पर्क करता है ।

दूसरा साधन है अनुमान । इसमें देखा गया है कि वीर्य का शरीर में जो कर्म होता है उसको देखकर अनुमान लगाया जाता है कि वीर्य क्या है ? इस क्रिया को अधिवास कहते हैं ।

कुछ द्रव्यों के वीर्य जानने के लिए दोनों साधन उपयोग में लाए जाते हैं । इन तीनों क्रियाओं के उदाहरण निम्न हैं—

क्रिया	प्रमाण	उदाहरण
१. निपात	प्रत्यक्ष	मरिच का तीक्ष्ण वीर्य
२. अधिवास	अनुमान	आनूप मांस उष्ण वीर्य
३. निपात + अधिवास	प्रत्यक्ष + अनुमान	मरिच का उष्ण वीर्य

५. विपाक

आयुर्वेद में द्रव्यों का सेवन करने के पश्चात् पाचन के समय दो प्रकार के पाकों का वर्णन किया है—

(क) अवस्थापाक (ख) विपाक

‘अवस्थापाक’ वह है जिसमें ग्रहण किए गए द्रव्यों का पाचन होते समय पाचन तन्त्र में अवस्थानुसार परिवर्तन आता है। महास्रोत में ज्यों २ द्रव्य आगे जाता है त्यों २ उसमें उसके स्वरूप में भिन्नता आती है। यथा प्रथमावस्था का पाक मधुर होना है। मधुर रस का प्रयोग किया गया तो यहाँ अधिकता से मधुर पाक होगा यदि कटु रस का सेवन किया है तो भी मधुर तो अवश्य होगा किन्तु रस की कमी होगी और पूर्णता अथवा अल्पता का ज्ञान होगा उस अवस्था में बने मलभूत श्लेष्मा की मात्रा द्वारा। मधुर मलभूत कफ अधिक बनता है, रस के सेवन से और कटु रस के सेवन से यह कम बनता है।

दूसरी अवस्था में सभी रस प्रधान द्रव्य अम्ल भाव को प्राप्त होते हैं और इसे अम्लपाक कहते हैं—इस अवस्था में मलभूत पित्त की उत्पत्ति होती है।

तीसरी अवस्था में सभी रस वाले द्रव्य कटु भाव को प्राप्त होते हैं और उस अवस्था को कटु पाक कहते हैं। इस अवस्था में मलभूत वायु की उत्पत्ति होती है।

इन तीनों अवस्थाओं को पार कर जाने के पश्चात् द्रव्यों का रसानुसार एक परिणाम होता है। यह परिणाम ही ‘विपाक’ कहलाता है। और क्योंकि यह पाचन के निष्ठा (अन्तिम) काल में होता है—इसलिए इसे निष्ठा पाक भी कहते हैं। यह भिन्न २ रसों के अनुसार अलग २ होता है। तथा द्रव्य के

चरम परिणत स्वरूप रस में आश्रित रहता है। जैसे २ रस शरीर में परिभ्रमण करता है उसके साथ ही साथ उस द्रव्य का विपाक भी भ्रमण करता रह कर शरीर पर अपनी क्रिया करता है। और इसके द्वारा शरीर को धारण करने वाले घातु रूप कफ, पित्त, वायु की उत्पत्ति होती है, यह तीनों ही घातु स्वरूप हैं। अतः इन्हें प्रत्यक्ष नहीं देख सकते जब कि मलरूप वातादि का प्रत्यक्ष भी किया जा सकता है। यह घातु रूपवातादि तो अनुमान द्वारा ही जाने जा सकते हैं।

इस प्रकार देखने पर विपाक क्या है, यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि “जाठराग्नि की क्रिया होने के पश्चात् पाचन क्रिया के अन्त में जो रस विशेष उत्पन्न होता है, वह विपाक कहलाता है।”^१ इसी को और भी सरल करना हो तो कहा जाएगा कि परिणाम जिसका स्वरूप है वह विपाक है।^२
विपाक भेद—

विपाक कितने प्रकार का होता है इस विषय में कई मत हैं। मुख्य मत निम्न प्रकार हैं—

१. षड्विध विपाकवाद

२. पञ्चविध विपाकवाद

३. त्रिविध विपाकवाद

३. द्विविध विपाकवाद

१. षड्विध—षड्विध विपाकवादियों का कहना है कि रस छः प्रकार के होते हैं। अतः उनके विपाक भी छः ही तरह के होंगे। उनका प्रमाण यह है कि यदि कीकर का बीज बोया जाए तो उसके परिणाम स्वरूप कीकर का वृक्ष ही उत्पन्न होगा, आम का वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार मधुर रस खाया जाय तो मधुर विपाक और जो भी रस खाया जाए उसका वही विपाक होगा। इस तरह छः रसों के विपाक भी छः ही होंगे। किन्तु प्रमाणों द्वारा यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। द्रव्यों के रस गुण आदि के विषय में दिए गए आप्तवचनों द्वारा सिद्ध होता है कि कटु रस वाले द्रव्य वा विपाक मधुर होता है जैसे पिप्पली में, और अम्ल रस वाले

१. जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।

रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः (अ० ह० सु० अ० ६)

२. ‘परिणाम लक्षणौ (२० वं १)

द्रव्य का विपाक मधुर होता है जैसे आंवला में, और मधुर रस वाले तैल का विपाक कटु होता है। इन उदाहरणों से रस विपाकवाद का खण्डन होता है और कहा जाता है कि विपाक रसानुसार छः प्रकार का नहीं हो सकता।

२. पञ्चविध—सुश्रुत ने एक स्थान पर पञ्चमहाभूतों के अनुसार विपाक पांच प्रकार के बताए हैं। वे विपाक प्रत्येक भूत प्रधान द्रव्य के अनुसार एक २ होते हैं। इसका समाधान सुश्रुत के ही दूसरे वचन से हो जाता है। जिसमें बताया है कि इन पांच महाभूतों में से दो गुण हैं (पृथ्वी + जल) तथा तीन लघु हैं। (तेज + वायु + आकाश) और इसी आधार पर सुश्रुत ने आगे केवल दो प्रकार का विपाक बताया है। इस लिए पञ्चविध विपाकवाद का अन्तर्धान द्विविध में हो जाता है।

३. त्रिविध विपाकवाद—आत्रेय सम्प्रदाय के आचार्य विपाक तीन प्रकार का मानते हैं। वे हैं—

(क) मधुर विपाक (ख) अम्ल विपाक (ग) कटु विपाक।

इनका कहना है कि शरीर वात पित्त कफ पर ही आधारित है। इनकी समता को आरोग्य और विषमता को रोग कहा जाता है। शरीर में इनकी समावस्था में लाने के लिए द्रव्यों का प्रयोग कराया जाता है और उन द्रव्यों के विपाक द्वारा वातादि पर क्रिया होती है। इस प्रकार मधुर विपाक कफ वर्धक अम्ल विपाक पित्त वर्धक, कटु विपाक वातवर्धक होता है।

वह छः रसों से इन तीन का सम्बन्ध बनाते हुए लिखते हैं^१—

रस	विपाक
कटुतिक्त कषाय	कटु
अम्ल	अम्ल
मधुर लवण	मधुविपाक

इनका कहना है कि जिस प्रकार कफ को मधुर प्रधान, वात को कटु प्रधान और पित्त को अम्ल प्रधान माना जाता है उसी प्रकार इन तीनों के अनुसार ही तीन प्रकार का विपाक होता है। किन्तु सुश्रुत इसका खण्डन करते हैं और

१. कटुतिक्तकषाणां विपाकः प्रायशः कटुः।

अम्लोऽम्लं पच्यते स्वानुर्मधुरं लवणास्तथा ॥ (च० सु० २६)

खण्डन का आधार यह है कि वह पित्त को 'कटु' ही मानता है। उसका कहना है कि पित्त स्वाभाविक अवस्था में कटु होता है, यदि वह विदग्ध हो जाए तो अम्ल हो जाता है, अतः विदग्धावस्था को मानना उचित नहीं, ऐसा करने से तो और भी प्रकार का विपाक मानना पड़ेगा क्योंकि कफ भी विदग्ध हो कर लवण हो जाता है।¹

अतः अम्ल को न मान कर केवल मधुर और कटु ही विपाक होना चाहिए। और फिर चरक ने भी एक स्थान पर इन तीनों को दो में ही मान लिया है। वहां बताया है कि 'मधुर विपाक' 'गुरु' होता है और कटु व अम्ल विपाक 'लघु' होते हैं।² अतः इन तीन का भी अन्तर्भाव 'गुरु' एवं 'लघु' नामक दो प्रकार के विपाकों में हो जाता है जिसे सुश्रुत ने द्विविध विपाकवाद बतलाया है—

८. विविध विपाकवाद — धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालों ने विपाक दो ही प्रकार का बताया है—

(क) गुरु विपाक, (ख) लघु विपाक

इन का सिद्धांत है कि चिकित्सा शास्त्र में पञ्चमहाभूतों के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं,³ अतः इस विषय में भी उसी सिद्धांत पर चलना होगा और पृथ्वी तथा आप्य महाभूत क्योंकि गुरु होते हैं। अतः इनकी प्रधानता वाले द्रव्यों का विपाक गुरु विपाक होगा और तेज, वायु, आकाश, लघु हैं अतः इनकी अधिकता वाले द्रव्यों का विपाक लघु होगा। यह 'गुरु विपाक' एवम् 'लघु विपाक' दोनों ही कों के अनुसार जाने जाने हैं⁴ अतः यह न मानना चाहिए कि गुरु विपाक वह कहलाएगा जो देर में पचता हो और लघु विपाक का अर्थ हो जो शीघ्र पचे। शीघ्र पचना अथवा

1. पित्तं हि विदग्धमम्लतामुपेत्याग्नेयत्वात् । (सू० सू० ४०)

2. तेषां गुरुस्यान्मधुरः कटुकाम्लत्वतोऽन्यथा ॥ (च० सू० अ० २६)

3. भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सते (सू० शा० १.)

4. विपाकः कर्म निष्ठायाः (च० सू० २६.)

देर में पचना, पाचन की अवस्था से सम्बन्ध रखते हैं कि जब विपाक पाचन के परिणाम का अन्त है। अतः गुरु का अर्थ होगा वृंहण और लघु का अर्थ होगा 'लघन' क्रिया करने वाले विपाक।

जैसा कि हम चरक के वर्णन में बता आये हैं वहाँ इन दोनों को ही स्वीकार किया है। इधर सुश्रुत ने भी गुरु और लघु विपाक के नाम मधुर एवम् कटु बताए हैं, एक स्थान पर लिखा है कि "विपाक दो प्रकार के होते हैं, मधुर और कटु"। यह शब्द गुरु और लघु के पर्यायवाची कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार सारे मतों को जान लेने के बाद हम कहेंगे कि विपाक दो प्रकार के ही मानने चाहिए—

(१) मधुर विपाक (गुरु विपाक) (२) कटु विपाक (लघु विपाक)

(अम्ल विपाक का अन्तर्भाव लघु विपाक में ही हो जाता है जैसा कि हम पीछे सिद्ध कर आए हैं)।

गुण कर्म—

सुश्रुत ने दो प्रकार के विपाकों के गुण कर्म बताए हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

विपाक	गुण	कर्म
गुरु विपाक	पृथ्वी-जल	वात पित्त नाशक, कफ वर्धक एवं मलमूत्र प्रवर्तक।
लघु विपाक	तेज वायु-आकाश	श्लेष्म नाशक, वात कोपक, मल-मूत्र रोधक।

प्रसंगवश चरक में वर्णित ३ विपाकों के कर्म भी बताने उचित हैं। वहाँ निम्न प्रकार से वर्णन उपलब्ध होता है—

विपाक	कर्म
१. मधुर विपाक	कफ वर्धक, शुक्रल, मलमूत्र प्रवर्तक।
२. अम्ल विपाक	पित्त वर्धक, शुक्रनाशक, मलमूत्र प्रवर्तक।
३. कटु विपाक	वात वर्धक, शुक्रनाशक, मलमूत्र रोधक।

रस एवं विपाक में अन्तर—

विपाक का विषय सम्पूर्ण करने से पूर्व एक शंका का समाधान करना

१. द्विविध एव पाको मधुरः कटुश्च । (सु० सू ४०.)

आवश्यक होता है कि रस और विपाक में क्या अन्तर है ? यह शंका उत्पन्न इसलिए हुई कि कुछ का कहना है कि विपाक की आवश्यकता ही क्या है । रस से ही कार्य सम्पन्न हो सकता है । इसका उत्तर यह है कि रस एवम् विपाक दोनों अलग २ हैं और उनमें निम्न भेद है—

१. लक्षण भेद—रस जिह्वा का ग्राह्य गुण है, परिणाम लक्षण गुण विपाक है ।

२. काल भेद—रस की उपलब्धि आरम्भ काल में होती है जबकि विपाक की अन्तिम काल में ।

३. कर्म भेद—रस का कर्म स्थानिक होता है जबकि विपाक का सार्व-देहिक ।

४. कर्माधिष्ठान भेद—रस के कर्म के स्थान शारीरिक एवम् मानस हैं जबकि विपाक का कर्माधिष्ठान केवल शारीर है ।

५. उपलब्ध भेद—रस प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है जबकि विपाक अनुमान द्वारा जाना जाता है ।

६. प्रभाव

द्रव्य में जो विशिष्ट शक्ति होती है वह प्रभाव कहलाती है । यह तो सर्व विदित ही है कि द्रव्य में रस गुण-वीर्य-विपाक एवं प्रभाव रहते हैं और यह शरीर पर अपनी क्रिया करते हैं । उस क्रिया के अनुसार हम दो प्रकार का विधान पाते हैं—

(१) जिसमें रस के अनुसार ही गुण वीर्य एवं विपाक होता है और तदनुरूप सी क्रिया होती है । जैसे मधुर रस, गुरु गुण, शीत वीर्य एवं मधुर विपाक द्रव्य है तो वह कफवर्धक एवं वातपित्तशामक होगा । इसमें कोई विशेष शक्ति नहीं ।

(२) रसादि सब समान हैं किन्तु कुछ विशेष क्रिया होती है । जैसे दन्ती कटु रस एवं कटु विपाक है तथा उष्ण हैं, किन्तु इसके साधारण कर्म पित्त-वर्धक होने के अतिरिक्त यह रेचन भी है । इसका यह रेचन गुण विशेष शक्ति है । यह प्रभाव कहलाता है ।

प्रभाव की परिभाषा बताते हुए लिखा भी है—‘रस-वीर्य-विपाक समान रहने पर भी जहां कर्म विशेष होता है जो एक विशेष शक्ति द्वारा होता है, वह शक्ति प्रभाव कहलाती है।^१ ऐसे कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(१) चित्रक व दन्ती दोनों कटु रस कटुविपाक तथा उष्ण वीर्य हैं किन्तु चित्रक रेचक नहीं जबकि दन्ती ‘रेचक’ हैं।

(२) तिल और मदनफल दोनों मधुर, तिक्त कषाय, स्निग्ध, पिच्छिल है किन्तु तिल वामक नहीं जबकि मदनफल वामक है।

(३) मुन्नका एवं मुलहठी दोनों मधुर शीत हैं। इनमें मुन्नका रेचक है किन्तु मुलहठी नहीं।

इनमें रेचक अथवा वामक कर्म रसादि के द्वारा न होकर उनमें स्थित विशेष शक्ति द्वारा होता है और उसे ही प्रभाव कहा जाता है।

यह प्रभाव एक प्रकार से अचिन्त्य है।^२ इसके विषय में चिन्तन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि रसादि सभी समान रहने पर एक द्रव्य रेचक है दूसरा नहीं। इसका अर्थ हुआ कि रेचक क्रिया उन रसादि से रहीं जानी जा सकती। इसीलिए उसे प्रभाव कहा जाता है।

जो कर्म चिन्त्य हैं वह वीर्यजन्य कर्म होते हैं और जो अचिन्त्य है वह प्रभावजन्य कर्म; ऐसा स्मरण रखना ठीक है।

७. कर्म

जो किया जाए उसे कर्म कहते हैं।^३ इसका स्वरूप क्रिया है। यह संयोग और विभाग में स्वतन्त्र कारण होता है और द्रव्य के आश्रित होता है।^४ इस

१. रसवीर्य विपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते ।

विशेषः कर्मणा चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः ॥ (च० सू० २६)

२. सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय ४० के आधार पर ।

३. यत् कुर्वन्ती तत् कर्म (च० सू० अ० २६)

४. संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्य वाधितम् ।

कतंव्यस्य क्रिया कर्म, कर्म नान्यदपेक्षते (च० सू० अ० १)

का अर्थ यह हुआ कि शरीर में क्रिया उत्पन्न करने वाले द्रव्यगत पदार्थ को कर्म कहा जाता है ।

द्रव्यों के कर्म शरीर पर किस प्रकार होता है, यह एक विचारणीय विषय रहा है । इसके विषय में आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से विचार करें तो हम यही पाते हैं कि द्रव्य पाञ्चभौतिक है और शरीर भी पाञ्चभौतिक है, अतः द्रव्यों के कर्मों द्वारा इनकी समता उत्पन्न हो जाती है जो कि शरीर को स्वस्थ बना देती है । अतः कहा जा सकता है कि द्रव्य के कर्म शरीर के पाञ्चभौतिक संघटन को ठीक करना है । इसकी विस्तृत व्याख्या चरक चिकित्सास्थान अध्याय १५ में की गई है ।

कर्म के विषय में जो दूसरा प्रश्न है वह यह कि द्रव्य में स्थित रस गुण आदि में कौन कर्म करने वाला है ? एतदर्थ समाधान यह है कि “द्रव्य का कर्म कहीं रस द्वारा, कहीं गुण से, कहीं वीर्य, कहीं विपाक से और कहीं प्रभाव से होता है ।”^१ और इन में भी रस को अभिभूत करने की शक्ति विपाक में है, विपाक को वार्य अभिभूत करता है और वीर्य को प्रभाव । यह उस अवस्था में होता है जब कि रसादि सब समान बल वाले हों ।^२

यह दो सिद्धान्त इस विषय में शास्त्रों में वर्णित किये गए हैं ।

प्रसिद्ध कर्म—

आयुर्वेद के पाठकों को शरीर पर होने वाले विभिन्न कर्मों की परिभाषा एवं उस कर्म को करने वाले द्रव्यों का उदाहरण रूप में जानना आवश्यक है । हम यहां प्रसिद्ध कर्मों की व्याख्या उदाहरण सहित करेंगे । इसका क्रम यह बनाया है कि सर्वप्रथम चरकोक्त पचास गणों के कर्मों की व्याख्या भी हो जाएगी और उन गणों के द्रव्यों का ज्ञान भी । इनके पश्चात् दूसरे प्रसिद्ध कर्मों का वर्णन होगा ।

1. किञ्चिद्रसेन कुल्ले कर्म, वीर्येण चापरम् ।

द्रव्यं गुणेन, पाकेन, प्रभावेण च किञ्चन ॥

2. रस विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति ।

बल साम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलं ॥ (च० सू० प्र० २६)

कर्म	लक्षण	चरकोषत वर्ग के द्रव्य
जीवन	प्राणों को धारण करने, वाले (पृथ्वी एवं जल गुण बाहुल्य द्रव्य)	जीवक, श्वभक, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी
वृहण	शरीर को बढ़ाना (मोटा करना) (गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थूल आदि गुण वाले, तथा पृथ्वी जल बला पीतबला, जंगली कपास, भूत बाहुल्य द्रव्यों द्वारा)	खिरनी, दुग्धिका, अश्वगन्धा, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेत-विदारि विधारा ।
लेखन	घातुओं, मलों व देह को विशुष्क करना ।	मुस्तक, कुष्ठ, हरिद्रा, दारु-हरिद्रा, वचा, अतिविषा, कुटकी, चित्रक, चिरबिल्व, श्वेतवचा ।
भेदन	मल को गाढ़ा अथवा पतला कर तोड़-फोड़ कर अधः मार्ग से बाहर निकालना ।	त्रिवृत, अर्क, एरण्ड, लांगली, दन्ती, चित्रक, चिरबिल्व, शंखनी कुटकी, स्वर्णक्षीरी ।
सम्बान	टूटे-फटे को जोड़ना ।	मुलहठी, गिलोय, पृश्निपर्णी, पाठा, लज्जालु, मोचरस, घातकी लोध्र, प्रियंगु, कट्फल ।
दीपन	हजम न करके केवल भूख को बढ़ाना (अग्नि बढ़ाना)	पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अम्लवेतस, मिर्च अजमोद भल्लातक, हिंगु ।
बल्य	बलवर्धक, रोग प्रतिषेधक, शक्ति, वर्धक ।	ऐन्द्रा, कपिकच्छु, मुलहठी, शतावरी, क्षीरविदारि, अश्व-गन्धा, शालपर्णी, कुटकी, बला, अतिबला ।
वर्ण	त्वचा की सुन्दरता वर्धक ।	चन्दन, प्रन्नाग, पद्माक, उशीर, मुलहठी, मंजिष्ठा, सारिवा, क्षीर विदारि, श्वेतदूर्वा, श्याम-दूर्वा ।

५२

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

कण्ठ्य	गले की आवाज के लिए हितकारक	सारिवा, इक्षुमूल, मुलहठी, पिप्पली, द्राक्षा, विदारि कटु-फल, हंसपदी, वृहनी कंटकारी ।
हृद्य	हृदय को बलदायक ।	आम्र, आम्रतक, लकुच, कर-मर्द, वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, राज-बदर, बदर, दाड़िम, मातु-लुंग ।
तृप्तिघ्न	तृप्तिनाशक ।	सोंठ, चव्य, चित्रक, बिडग, मूर्वा, गुडूची, वचा, मुस्तक, पिप्पली, पटोलपत्र ।
अशोघ्न	बवासीर नाशक ।	कुटज, बिल्व, चित्रक, सोंठ, अतिविषा, हरीतकी, घन्वयास, दारूहरिद्रा, वचा, चव्य ।
कुष्ठघ्न	कुष्ठ नाशक ।	खदिर, हरीतकी: हरिद्रा, भल्ला तक, सप्तपर्ण, आरग्वध, कर-वीर, बिडग, चमेली के पत्ते ।
कण्डूघ्न	खारिश नाशक	चन्दन, उशीर, आरग्वध, करंज निम्ब, कुटज, सर्षप, मुलहठी, दारूहरिद्रा, मुस्तक ।
कृमिघ्न	कृमि नाशक	शोभाजन, मरिच, स्नुही, केबुक, बिडग, निगुण्डी, अपामार्ग, गोक्षुर, मूषाकर्णी, वृषपर्णी ।
विषघ्न	विषनाशक	हरिद्रा, मंजिष्ठा, रास्ना, छोटी इला-यचा, अनन्त मूल, चन्दन, निर्मली, सिरस, सिन्दुवार, लिसोड़ा ।
स्तन्यजनन	दुग्ध उत्पन्न करना ।	वीरण, शाली, षष्ठिक, इक्षुवालीका, दर्भ, कुश, काश, जलजदर्भ, शर, रोहिष (सब के मूल) ।

स्तन्य- शोधन	दुग्ध का शोधन	पाठा, सोंठ, देवदारु, मुस्तक, मूर्वा, गिलोय, इन्द्रियव, चिरायता, चुटकी, सारिवा ।
शुक्रजनन	सप्तम शरीर धातु वीर्य उत्पन्न करना ।	जीवक, शृषभक, काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, शतावरी, जटामासी, उच्चट्टः भेद ।
शुक्रशोधन	वीर्य का शोधन करना	कुष्ठ, एलवा, कटुफल, समुद्रफेन, कदम्बनिर्यास, इक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुरक, राजार्क, उशीर ।
स्नेहापग	स्नेह द्रव्यों की शक्ति को बढ़ाने वाले द्रव्य और स्नेहद्रव्य के सहायक रूप में प्रयोग होने वाले ।	मृद्विका, यष्टीमधु, गुडूची, मेदा, विदारी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती, शालपर्णी ।
स्वेदोपग	स्वेदक द्रव्यों की शक्ति बढ़ाने और उनके सहा- यक रूप में प्रयोग किए जाने वाले द्रव्य ।	शोभाञ्जन, एरण्ड, अर्क श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, यव, तिल, कुल्थ, माष, बदर
वमनोपग	वामक द्रव्यों की शक्ति बढ़ाने और सहायक रूप में प्रयोग होने वाले ।	मधु, मधुयुष्ठी, कोविदार, कर्बुदार, कदम्ब, समुद्रफल, बिम्बी, शणपुष्पी, अर्क, अपामार्ग ।
विरेचनो- पग	दस्तावर द्रव्यों की शक्ति बढ़ाने और सहायक रूप में प्रयोग होने वाले ।	द्राक्षा, गम्भारी, फालसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, राजबदर, बदर, क्षुद्रबदर, पीलु ।
आस्थाप- नोपग	आस्थापन के द्रव्यों की शक्ति बढ़ाने और उनके सहायक रूप में प्रयोग होने वाले ।	रास्ता, देवदारु, बिल्व, मदनफल, शत- पुष्पा, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, गोक्षुर, अग्निमन्थ, श्योनाक ।

शिरोविरे- चनोपग	शिरोविरेचन के द्रव्यों की शक्ति बढ़ाने और सहायक रूप में प्रयोग होने वाले ।	ज्योतिष्मती, छिन्निकका, मरिच, पिप्पली, विडंग, सर्षप, अपामार्ग बीज, श्वेत अपराजिता, नील अपराजिता ।
छदि निग्रहण	उलटी मिटाने वाले द्रव्य	जम्बुपल्लव, आम्रपल्लव, मातुलुंग, अम्लबदर, दाडिम, यव, मधुयष्टी, उक्षीर, मुलतानी, मिट्टी ।
तृष्णा- निग्रहरा	प्यास बुझाने वाले	सांठ, घन्वयास, मुस्त, पर्पट, चन्दन, चिरायता, गुडूची, हाऊवेर, घान्यक, पटोल ।
हिक्का- निग्रहण	हिचकी मिटाने वाले ।	शटी, पुष्करमूल, बदरबीज, कंटकारी, वृहती, बन्दाक, हरीतकी, पिप्पली घन्वयास, कर्कटशृंगी ।
पुरीष- संग्रहणीय (संग्राही)	जो पतले मल को बांधे या जो द्रव्य दीपन, पाचन तथा उष्ण होने, से द्रव का शोषण करते हों ।	प्रियंगु, अनन्त मूल, आम्रास्थि, श्यो- नाक, लोध्र, मोचरस, लज्जालु, घातकी पुष्प, भाङ्गी, पद्मकेशर ।
पुरीष- विरजनीय	पुरीष के दोषों को दूर कर उसके रंग को स्वा- भाविक करने वाले ।	जम्बुत्वक, शल्लकीत्वक, घन्वयास, मधूक, शाल्मली, श्रीगेटक, अष्टमृत, बिदारी, उत्पल, तिल ।
मूत्र संग्रह- णीय	जो द्रव्य मूत्र की प्रवृत्ति को कम करें ।	जम्बु, आम, प्लक्ष, वट, आम्रतक, उदुम्बर, अश्वत्थ, भल्लायक, अमन्तक, सोमवल्क ।
मूत्रविरज- नीय	मूत्र के वर्ण को प्राकृत करने वाले द्रव्य	पत्र, उत्पल, नलिन. शुमुद, सौगान्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, यष्टीमधु, प्रियंगु, घातकी ।
मूत्र	मूत्र को अधिक मात्रा में	वन्दाक, गोक्षुर, राजाकं, सूर्यवर्त

(मूत्रल)	विरेचनीय लाने द्रव्य ।	पाषाणभेद, दर्भ, कुश, काश, जलदर्भ, शर, (इनके मूल) ।
कासहर	खांसी मिटाने वाले द्रव्य	द्राक्षा, हरीतकी, आंवला, पिप्पली, घन्वयास, कर्कटशृंगी, कटंकारी, श्वेत पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, भू-आंवला ।
श्वासहर	श्वास मिटाने वाले द्रव्य	शटी, पुष्करमूल, अम्लदेतस, एला, हिगु, तुलसी भू-आंवला, जीवन्ती, चोरपुष्पी ।
श्वयथुहर	शोथ मिटाने वाले द्रव्य ।	पाटला, अग्नि मन्थ, श्योनाक, बिल्व, गम्भारी कटंकारी, वृहती, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, गोक्षुर ।
ज्वरहर	बुखार हटाने वाले द्रव्य ।	सारिबा, शर्करा, पाठा, मज्जिष्ठा, द्राक्षा, पीलु, परुषक, हरीतकी, विभी-तक आमलक ।
श्रमहर	थकावट मिटाने वाले द्रव्य	द्राक्षा, खजूर, प्रियाल, बदर, दाडिम, तूत, पसूपक, इक्षु, यव, षष्टिक ।
दाह	बाह्य एवम् आभ्यन्तर दाह	लाजा, चन्दन, गम्भारीफल, मधूक,
प्रशमन	को शान्त करने वाले द्रव्य	शर्करा, नीलोत्पल, उशीर सारिबा, गुडूची, हाऊवेर ।
शीत	जो द्रव्य शीतको मिटावें	तगर, अगार, घान्यक, शृंगवेर, अज-बचा, कटंकारी, अग्निमन्थ, श्योनाक, पिप्पली ।
प्रशमन		
उददं	त्वचा पर उत्पन्न हुए	तिन्हुक, प्रियाल, बदर, खदिर, श्वेत,
शमन	चकत्तों (उददं) को शान्त करने वाले ।	खदिर, सप्तपर्ण, अश्वकर्ण, अर्जुन, असन, अरिमेद ।
अंगमदं-	मांस पेशियों की ऐंठन	शालपर्णी, पृश्निपर्णी वृहती, कटंकारी,
प्रशमन	मिटाने वाले	एरण्ड, काकोली, चन्दन, उशीर, एला, मधुयष्टी ।
शूल	उदरशूल को मिटाने वाले	पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक,

प्रशमन		सोंठ, मरिच, अजमोद, बनयवानी, जीरक, गड़ीर ।
शोणित	रक्त बढ़ाने वाले द्रव्य	मधु, मुलहठी, केसर, मोचरस, मृत्क-
स्थापन	और रक्तस्राव को रोकने वाले द्रव्य	पाल, लोध, गैरिक, प्रियंगु, शर्करा, लाजा ।
वेदना-स्थापना	दुःखात्मक वेदना को दूर करने वाले द्रव्य ।	शाल, कटफल, कदम्ब, पद्मक, पुन्नाग, मोचरस, शिरस, जलवेतस, एलवालुक, अशोक ।
संज्ञा-स्थापन	संज्ञा (ज्ञान) को लाने वाले द्रव्य	हिंगु, कटफल, अरिमेद, वचा, चोर-पुष्पी, ब्रह्मी, भतकेसी, जटामांसी गुलगुल, कुटकी ।
प्रज्ञा-स्थापन	गर्भ कराने वाले द्रव्य	ऐन्द्री, ब्राह्मी, दर्वा, दूर्वाभेद, लक्ष्मणा, हरीतकी, हरिद्रा, नागबला, महाबला, वाराहीकन्द ।
वयः-स्थापना	आयु को स्थिर रखने वाले द्रव्य	गुडूची, हरीतकी, आमलक, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, पुनर्नवा ।

उपर्युक्त चरक के दशेमानी का वर्णन हो गया, अब अन्य कर्मों का वर्णन करते हैं—

कर्म	व्याख्या	उदाहरण
मेघ्य	बुद्धि को बढ़ाने वाले द्रव्य	शंखपुष्पी, गुडूची, यष्टा-मधुक
मदकारी	जो द्रव्य बुद्धि को विकृत कर दें इनके गुण (तीक्ष्ण, लघु उष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशु, रूक्ष, विकाशी, विशद) शरीर में स्थित ओज के गुणों के विपरीत होते हैं ।	भांग, गांजा, आहिफेन, मद्य
निद्राजनन	कफ एवं तम की अधिकता से	विजया, अहिफेन, भैष का
स्वापजनन	नींद लाने वाले	दूध

स्वेदन	स्तम्भता, जोखता, शीतता दूर करने वाले एव पसीना लाने वाले	चरक के त्रयोदशविध साग्नि स्वेद एवं दशविध निराग्नि स्वेद
स्वेद	पसीने को कम करने वाले या कम	उशीर
अपनयन	करने वाले द्रव्य	
रोम	रोमों को पुनः उत्पन्न करने वाले	हाथीदन्त
संजनन		
रोमशातन	जो द्रव्य रोगों को साफ कर दें	शंखचूर्ण, हरतालका लेपन
केश्य	बालों को बढ़ाने वाले और उनका रंग निखारने वाले द्रव्य	लंका, भृंगराज, मेहदी
पाचन	जो कच्चे रस को पचावे किन्तु अग्नि को न बढ़ावे	नाग केसर
रसायन	जो जरा और व्याधि को मिटाते हैं,	हरड़, गिलोय, गुग्गुलु
वाजीकरण	जो स्त्री ग्रहण में छोड़े की सी ताकत दें, अधिक वीर्य प्रदान करावें	कौंच
शुक्ल	जो द्रव्य शुक्र की वृद्धि करने (शुक्रजनन) वाले हों	घृत, दुग्धादि सात्विक अन्न
लघन	शरीर में लघुता लाने वाले	जो लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विशद, रुक्ष, सूक्ष्म, खरं, सर, कठिन गुण वाले तथा चारों प्रकार का संशोधन (वमन विरेचन, आस्थापना, शिरोविरेचन)
रक्षण	शरीर में रुक्षता, खरता, वैशद्यता पैदा करने वाले द्रव्य	यह द्रव्य रुक्ष, लघु, खर उष्ण, कठिन गुणवाले तीक्ष्ण होते हैं। यव, लोभिया। तैल, घृत आदि जिनमें द्रव, सूक्ष्म, सर स्निग्ध,
स्नेह	चिकन'हट, मृदुता एवं क्लेद करने वाले द्रव्य	

		पिच्छिल, गुरु, शीत, मंद एवं मृदु गुण होते हों । इन्द्र जो, सोनापाठा आदि ।
स्तम्भन	रुक्षता, शीतला, कषायता, लघुपाकी होने से जो द्रव्य वातकारक होते हैं ।	
शमन	दुष्ट दोषों का जो शोधन न करें और समान दोषों को प्रकुपित न करें तथा विकृत दोषों को समावस्था में लावें ।	गिलोय आदि ।
संस्नन	कोष्ठ में चिपके हुए मल को पका हुआ या कच्चा ही अघमार्ग से निकालने वाले द्रव्य ।	अम्लतास आदि ।
अनुलोमन	मल को पाक कर उसे अघोमार्ग से निकालने वाले ।	हरीतकी आदि ।
वमन	अपक्व कफ पित्त अन्न को बलपूर्वक उर्ध्व मार्ग से निकालने वाले द्रव्य ।	मदनफल आदि ।
शोधन	संचित मल को उस स्थान से हटाकर उर्ध्व अथवा अघः मार्ग से निकालना	देवदाली फल आदि ।
रेचन	पक्व अथवा अपक्व मल को पतला कर अघः मार्ग से निकालने वाले द्रव्य ।	दन्तबीज आदि ।
छेदन	चिपके हुए कफादि को जो बल पूर्वक उन्मूलित करें ।	क्षार-मरिच शिलाजीत ।
सूक्ष्म	शरीर से सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्रोतों में पहुंचने वाले ।	मद्य, विष आदि ।
योगवाही	जिन द्रव्यों के साथ मिलाया जाए उनके गुणों को बढ़ाने वाला ।	घृत, तैल, शहद आदि ।
व्यवापि	जो पहले सारे शरीर में व्याप्त होजाए और फिर पाचन को प्राप्त हो, इसकी क्रिया पाचन से पूर्व ही होती है ।	भांग, मदिरा, अफीम ।
विकाशी	जो शरीर के सन्धि बन्धनों को शिथिल	

	करें तथा ओज एवम् धातु का नाश करें ।	
विष	जो द्रव्य विकाशी हों, सूक्ष्म हों, छेदी, मदकारी, आग्नेय जीवन कारक, योग- वाही हों वह विष कहलाते हैं ।	विष ।
अभिष्यन्दी	पिच्छिन्नता, गुरुता के कारण जो रस- वाही स्रोतों का अवरोध करने वाले हों जिनके द्वारा शरीर में गुरुता उत्पन्न होवें ।	दधि आदि ।
आशुकारी	उसी प्रकार शीघ्रक्रिया करने वाले द्रव्य जिस प्रकार पानी पर तैल फैल जाता है ।	विष ।
प्रमाथि	अपने वीर्य के द्वारा जो स्रोतों में संचित दोषों को हटा देवे ।	मरिच तथा वचा आदि ।
विदाही	जो स्वभाव से ही गुरु हों तथा देर में पाक को प्राप्त होते हों और इस प्रकार पित्त प्रकोश करें ।	उड़द ।

द्रव्य-विज्ञान

A

ACANTHACEAE FAMILY

वासादि वर्ग

- स्वरूप — प्रायः द्रव्य क्षुप जाति के ।
 पत्र — अभिमुख, उपपत्र रहित ।
 पुष्प — व्याघ्रमुख के समान, पुष्प बाह्यकोश एवं
 पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५-५।
 (क) पुं केशर—२ या ४
 (ख) गर्भाशय—दो खण्डों में विभक्त

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

१. अडसा

आयुर्वेदीय पर्याय—वासक, वासा, वासिका, वाजिदन्त, वृष, आटरूपक।
 यूनानी नाम—हूकारिन।

अंग्रेजी—Malabar Nut.

लैटिन—Adhatoda Vasica.

विवरण—इसका पौधा ५ से १० फुट ऊँचा होता है। जिसमें बाम-के पत्तों के जैसे ४ से ८ इंच लम्बे पत्ते आते हैं। फूल सफेद रंग के और दूर से देखने पर खुले हुए फूल सिंहमुख की तरह लगते हैं। इसके बीज एक-एक कोष में चार २ होते हैं।

अडूसे का दूसरा भेद काला बाँसा है। इसके पत्ते ज्यादा गहरे रंग के और फल ताम्बे के रंग के होते हैं। वैसे इसका पौधा भी कुछ अधिक बड़ा होता है। यह जाति ज्यादा फायदा करने वाली कही जाती है। बाँसा सभी प्रांतों में पैदा होता है, बर्मा और सिंगापुर में अधिक पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, पत्ते और फूल।

मात्रा—पत्ते का रस १ से २ तोला, फूल ५ से १० रत्ती, जड़ छाल २ से ५ रत्ती, जड़ का क्वाथ ४ से ८ तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्तरस, लघु, रुक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है। इसमें कपास रस भी होता है। यह कफ पित्त शामक, हृद्य, रक्त स्तम्भक, श्लेष्महर, कासहर, कण्ठघ्न, श्वासहर, मूत्रजनन, ज्वरघ्न है। आमवात, व्रणशोथ तथा नाड़ी शूल में इसके कल्क का प्रलेप करते हैं और चर्म रोगों में इसके पत्तों का लेप फायदा करता है। श्वास, कास, क्षय, रक्त-पित्त के लिए श्रेष्ठ दवा है।

आयुर्वेदिक योग—वासावलेह, वासारिष्ट।

आधुनिक मत—विश्लेषण करने से इसमें एक क्षार तत्व 'वासिकिन' (vasicine) और एक organic acid adhatodic acid प्राप्त हुए हैं। साथ ही साथ गन्ध युक्त उड़नशील तैल, चर्बी, राल, शर्करा, गोंद पाए गए हैं।

डा० देसाई का कहना है कि शरीर के अन्दर इसका क्रिया 'इपिकेकोना' की तरह होती है। यह एक बढ़िया तरह का उत्तेजक, संकोचायाम नियामक और कफ निःसारक होता है।

मैजर वसु और डा० कीर्तिकर का कहना है कि यह श्वास नालियों की सूजन में, कुष्ठ में, रक्त विकार में, हृदय रोग में, ज्वर में, प्यास में, क्षय, पोलिया में लाभ करता है। मूत्रकण्ट और सफेदे की हालात में लाभ करता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक नाइकर्णी ने लिखा है कि इसके पत्तों का रस साढ़े सात माशा लेकर उसमें अद्रक का रस और शहद मिलाकर पिलाने से पुरानी खांसी, श्वास और क्षय में लाभ होता है।

आघा तोला पत्तों का रस शहद के साथ दिया जाये और नीम के पत्तों के साथ अड़ूसे के पत्तों का भाप कर पेड़ पर सेक करें तो गुर्दे का दर्द दूर हो जाता है।

आधुनिक चिकित्सक इसके द्वारा निर्मित कई दवाइयों का प्रयोग आज भी करते हैं।

२. कालमेघ

आयुर्वेदीय पर्याय—यवतिक्ता, कल्पनाथ।

अंग्रेजी—Kalmegh. लैटिन—*Andrographis Paniculata*

विवरण—कालमेघ आज चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है किन्तु आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन प्राप्त नहीं होता है, केवल चरक में एक स्थान पर अवश्य यवतिक्त का वर्णन मिलता है जिसके पर्यायवाची नाम शंखिनी, अक्षिपीडक आदि बताए हैं।

इसका क्षुप १ से ३ फुट तक ऊंचा होता है, जिसका तना चौकोर होता है। तने का निचला भाग चिकना होता है और ऊपर का भाग रोमांश। इस के पत्ते २ से ३ इंच लम्बे होते हैं, अभिमुख एवं रेखाकार होते हैं। इस में फूल छोटे-छोटे सफेद और नीले रंग के होते हैं और दूर से देखने पर मज्झर के समान दिखाई देते हैं। फल यव के आकार के और तिक्त होते हैं। इस फल में अनेक चौकोर बीज होते हैं जो रोमश होते हैं। यह विशेष कर आसाम एवं बंगाल में पैदा होता है।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

प्रयोज्य अंग - पंचांग ।

मात्रा—चूर्ण ५ से १० रत्ती, स्वरस २ से ४ माशा ।

गुणकर्म—कफ पित्त नाशक, अग्नि बढ़ाने वाला, बलवर्धक, रक्त बोधक, रेचक, होता है । यह विशेष रूप से मलेरिया में प्रयोग किया जाता है । यह तिक्त एवं तीक्ष्ण होता है । यह गुल्म, हृदय रोग एवं कुष्ठ में लाभ करता है ।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि यह चिरायता एवं कुनीन की तरह कर्म करता है । इसके ताजे पत्तों का रस बड़ी इलायची, जायफल, दाल-चीनी के साथ मिलाकर बालकों की कमजोरी, ज्वर की कमजोरी, पेट दर्द, अतिसार की पक्वावस्था में दिया जाता है ।

इसके रासायनिक विश्लेषण में कुछ उड़नशील तैल मिले हैं । इसके पंचांग में सोडियम क्लोराइड और पोटेशियम क्लोराइड पाया जाता है । कालमेघ सत्व (Extract Kalmegh) के नाम इसका योग प्रयोग किया जाता है ।



३. तालमखान

आयुर्वेदीय पर्याय - कोकिलाक्ष, इक्षुरक

यूनानी - तालीमखाना

अंग्रेजी - Long leave Barlaria; लैटिन - Asteranth Longtfolia

विवरण -- इसका पौधा २ से ४ फुट ऊँचा होता है । जिसका तना ईश की तरह पौरो वाला और शाखा रहित चौकोर और पतला होता है । पौरी की गांठ पर चारों तरफ ५, ६ बिना डंढल के लम्बे पत्ते होते हैं और १ इंच लम्बा पीले रंग का तेज कांटा होता है । पत्तों के ऊपर तने के चारों तरफ नीले और बैंगनी रंग के फूल निकलते हैं । इसमें गोल और कंटीला फल लगता है जिसमें ४ से ८ तक बीज निकलते हैं—इन बीजों को तालमखाना कहा जाता है । यह पानी की अधिकता में, तालाब या नहर के किनारे और वान के खेतों में, विहार में खूब पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—बीज, पत्ते और जड़ ।

मात्रा—बीज चूर्ण १ से ३ माशा; पञ्चांग रस २ से ५ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस; स्निग्ध पिच्छिल गुण, शीतवीर्य और

मधुरपाक होता है। यह वात पित्त शामक; यकृदुत्तेजक, क्षोणितस्थापन और शोथहर है। इसके बीज बल्य; बृहद और वृष्य होते हैं, यह मूत्रल होता है। वातव्याधि, आमवात, कलैव्य, नाड़ी दीर्बल्य, अश्वमरी, मूत्रकृच्छ में लाभ करता है। रक्तपित्त, शोष एवं वातरक्त में लाभ होता है।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने से इसमें ३१% अलव्यूमिनायड, कुछ क्षार तत्व और २१ से २३% एक पीला, 'मीठा', स्थिर तेल प्राप्त हुआ है।

कर्नल चोपड़ा ने लिखा है कि इसकी जड़ का काढ़ा जिगर के रोगों को दूर करता है। जननेन्द्रिय (Genitory tract.) और मसाने के रोगों के लिए लाभप्रद है। यह पेशाब ज्यादा लाता है इसलिए जलोदर, गठिया और मूत्र के दूसरे रोगों में दिया जाता है। डा० नाडकर्णी भी इसके ऊपर लिखे गुणों का समर्थन करते हैं और उनका कहना है कि यह एक पौष्टिक पदार्थ है।

AMARYLLIDACEAE FAMILY तालमूल्यादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप जाति।

षत्र—लोमयुक्त।

पुष्प—बाह्यकोश के दल (Calyx)-६

पुकेसर—(Androceum) ६

बीज कोष—त्रिकोष्ठी—अधःस्थ।

४. सुदर्शन

आयुर्वेदीय पर्याय—सुदर्शना, सोमवल्ली, चक्रांगी।

लैटिन—*Crinum Zeylanicum*.

विवरण—बागों में इसके पौधे दिखाई देते हैं जो बहुवर्षायु एवं २ से ३ हाथ ऊँचे होते हैं। इसमें हरे रंग के २ से ३ इंच चौड़े पत्ते भूमि से ही निकलने शुरू होते हैं। सफेद रंग के फूल वर्षा में आते हैं और बाद में गोल सा फल लगता है। यह विशेष रूप से उड़ीसा, बंगाल में तथा कुछ-कुछ अन्य प्रान्तों में भी पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र एवं कन्द ।

मात्रा—पत्र स्वरस ३ से ६ माशा, कन्द चूर्ण ४ से ८ रत्ती ।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर—तिक्त रस, रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाक होता है । वातकफ शामक, वामक, रेचक, शोथ नाशक, ज्वरघ्न, रक्त विकार एवं कुष्ठ नाशक होता है । इसके पत्तों का रस कर्णसाव कर्ण शूल, अन्य कानों के रोगों में लाभ करता है । इसके कन्द को पीस कर गर्म लेप देने से बवासीर का दर्द मिट जाता है और इसको विद्रधि पर बांध दिया जाए तो वह पक कर फूट जाती है ।

इसका रासायनिक विश्लेषण करने पर विदित हुआ कि इसमें लाइकोरिन नामक तत्व होता है ।



AMARANA THACEAEFAMILY अपामार्गादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप जाति

पत्र—सादे, उपपत्र रहित, अभिमुख या एकान्तर

पुष्प—गुच्छों में, शाखाग्र या पत्रकोण से उद्भूत

फल—शुष्क, स्थायी और कोष के भीतर आवृत

५. चिरचिटा

आयुर्वेदीय पर्याय—अपामार्ग, शिखरी, मयूरक, प्रत्यक्, पुष्पा, खरमञ्जरी ।

यूनानी—अल्कुम ।

अंग्रेजी—Chaff Tace

लैटिन—Achyranthes Aspera

विवरण—इसका पौधा १ से २ फुट तक ऊँचा होता है । यह वर्षा के शुरूआत होते ही उग आता है, जब तक वर्षा होती रहती है यह बढ़ता जाता है । इसकी शाखाएँ फैली हुई होती हैं । इसके पत्ते छोटे, अण्डे जैसे गोल ३ से ५ इंच लम्बे और २ से ३ इंच चौड़े, छोटे २ रोम वाले होते हैं । सर्दी में हरे संफेद रंग के फूल मंजरी की तरह निकलते हैं, जिनका डंठल लम्बा होता है । इसमें छोटे, लम्बे घूमल रंग के फल लगते हैं । यह फल गर्मियों में पक जाते हैं और फिर घूप की तेजी में यह पौधा भी खत्म हो जाता है ।

अपामार्गादि वर्ग

६५

इसकी एक जाति और होनी है उसे लाल अपामार्ग कहते हैं और उसके पत्ते, फूल, फल आदि सफेद न हो कर लाल होते हैं। चिरचिटा सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, बीज, पत्ते।

मात्रा—रस १ से २ तोला; क्वाथ ५ से १० तोला, बीजपूर्ण १ से ३ माशा; क्षार ४ से ८ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक कहा है। कफवात शामक, कफपित्त संशोधक है। इसके बीज देर में पचते हैं और वह भूख को बन्द करते हैं। वैसे यह रोचन, दीपन, पाचन, पित्तसारक और कृमिनाशक है। हृद्य, रक्तशोधक रक्तवर्धक है। मूत्रल, अश्मरी नाशक और मूत्राम्लता नाशक है। पसीना लाता है और खारिश दूर करता है। स्थानिक प्रयोग किया जाए तो व्रणशोधन करता है और शिरोविरेचन के लिए उपयुक्त है। आयुर्वेद में भस्मक रोग में इनके बीजों को खीर बना कर देने का विधान है।

आधुनिक मत—आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसके बीज और पंचांग में क्षार होता है जिसमें पोटैश अधिक होता है। उनका कहना है कि यह सिकुड़न (Astringent) पैदा करता है, पेशाब ज्यादा लाता है; ताकतवर है। इसका प्रयोग Menorrhagia (मानसिक स्राव अधिक) दस्त और पेचिश में किया जाता है। इसका क्षार सर्वांग शोथ; जलोदर में लाभ करता है और इसका खाने का प्रयोग और लगाने का प्रयोग कुत्तों के काटे और साँप के काटे में लाभ करता है। इसका रस दर्द दान्त को दूर करता है और इसका अंजन (Corneal Opacity) फूला में लाभ करता है।

डा० नाडकरनी का कहना है कि इसके ताजे पत्तों को पीस कर काली मिर्च, लहसन और गुड़ के साथ मिला कर गोलीया बनाकर देने से कलाजार में फायदा करता है।

६ चौलाई

आयुर्वेदीय नाम—तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, यूनानी बक्लए यमानिया
अंग्रेजी—Hermaphrodite Amaranth.
लैटिन—Amaranthus Spinouslin

विवरण—इसका पौधा मौसमी होता है। यह १, २ फुट ऊँचा और अनेक शाखाओं वाला, मुलायम, लम्बे, गोल पत्तों वाला होता है। इसमें फूल गुच्छों में लगते हैं और फल छोटे गुच्छेदार होते हैं। यह सारे भारत में पाया जाता है और वर्षा तथा सर्दी में रहता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, मूल, बीज।

मात्रा—रस १ से २ तोला चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदीय भूत—रस एवं पाक में मधुर, लघु रुक्ष, गुण और शीत वीर्य है। पित्त, कफ तथा रक्त दोषों को दूर करने वाली रेचक, दीपन, अनुलोमन हृद्य, मूत्रल, पुरीषजनन है। इसके मूल का लेप दाह, व्रण और विषों को दूर करता है इसका साग लगातार खाने से पत्थरी नहीं रह पाती।

ANACARDIACEA FAMILY

आम्रादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष जाति

पत्र—एकान्तर (Alternate) कभी २ अभिमुख (Opposite)

एकांकी (Simple) अथवा संयुक्त (Compound) उपपत्ररहित

पुष्प—संपुष्प, पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्प आभ्यन्तर कोश के दल—४-५

पुं केशर—३-५

फल—अण्डाकार, गोल, मांसल

७. आम

आयुर्वेदीय पर्याय—आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, यूनानी—अंबज

अंग्रेजी—Mango

लैटिन—Mangifera Indica

विवरण—आम एक प्रसिद्ध चीज है, जिसका वृक्ष ३०-४० फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते १-६ इंच लम्बे १-२ इंच चौड़े और आगे के हिस्से में नौकीले होते हैं। इसके फल हरी पीली मंजरी के रूप में होते हैं जिसमें से नशीली गन्ध आती है। यह मंजरी बसन्त में लगती है। इसमें गर्मी-वर्षा में

फल लगते हैं जो २ से ४ इंच लम्बे, गोल, कच्चे में हरे और पकने पर पीले हो जाते हैं। फल के भीतर गुठली और गुठली के भीतर गिरी होती है। आम की बहुत जातियाँ होती हैं। आम भारत के गर्म इलाकों में प्रायः बिहार, बंगाल, मद्रास में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्ते, फूल, फल गुठली की गिरी।

मात्रा—रस १ से २ तोला, काढ़ा ५-१० तोला, चूर्ण १-३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कच्चा फल अम्ल रस, लघु रूक्ष गुण, शीत वीर्य तथा कटु विपाक होता है। यह त्रिदोषकारक है। पका फल मधुर रस, गुण-स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर विपाक होता है। यह वात पित्त शामक होता है।

आम की छाल, पत्ते, फूल और गुठली कफ पित्त-शामक होते हैं। इनका बाह्य प्रयोग रक्तरोधक और व्रण रोपक होता है। यह स्तम्भन करते हैं। कच्चे फल का पानक दाहप्रशामक है और लू लगने पर दिया जाता है। कच्चा फल रक्त पित्त प्रकुपित करता है। यह रोचन और दीपन होता है।

पका आम स्नेहन, अनुलोमन, सारक, हृद्य, वृष्य, शोणितस्थापन, बल्य, वर्ण्य और वृहण है। आम के पत्ते छर्दि (कै) दूर करते हैं। गुठली कृमिघ्न, गर्माशय शोथहर, प्रमेह एवं पुण्यमेहहर, मूत्र संग्रहणीय कार्य करती है।

आधुनिक मत—विश्लेषण करने पर कच्चे फल में पोटाश, साइट्रिक एसिड, मैलिक एसिड प्राप्त हुए हैं। पके फल में कार्बन बाइसल्फाइड, बेंजील गैलिक एसिड और साइट्रिक एसिड मिले हैं। आम के फल में विटामिन 'सी' और 'ए' होते हैं। इसकी छाल टैनिन और इसकी गुठली में टैनिन एवं गैलिक एसिड प्राप्त हुए हैं।

डाक्टर आर० एन० क्षीरी का कहना है कि कच्चा आम स्कर्वी रोग को दूर करने वाला है।

कर्नल चोपड़ा इसके फल को विरेचक, अधिक पेशाब लाने वाला मानते हैं। यह बहने खून को रोकने वाला है। इसके पत्ते विच्छु के काटने पर लाभ करते हैं।

डा० नाइकरनी ने लिखा है कि भुने हुए कच्चे आम के गूदे में शक्कर

मिला कर तैयार की हुई चटनी हैजे और प्लेग के दिनों में प्रयोग करने से, इनसे बचाव हो जाता है। इसके छिलके सहित फल का अर्क निकाल कर डिपथीरिया और कंठमाला में देने से फायदा करता है।

८. आमड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—आम्रातक, कपीतन, मर्कटात्र।

चिकनी—Hog-plum

लैटिन—Spondias Mangifera

विवरण—इसका वृक्ष ३०-४० फुट ऊँचा होता है। जिसका तना मोटा होता है और छाल सफेद रंग की चिकनी होती है। पत्ते पीले रंग के और चिकने होते हैं जो लम्बे डंठल से लगे रहते हैं। इसका फल $\frac{1}{2}$ से २ इंच लम्बा बड़े बेर के बराबर होते हैं। इनमें एक सख्त गुठली निकलती है यह सारे भारत में खास कर जंगलों में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, छाल, पत्र।

मात्रा—स्वरस १—२ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—कच्चा आमड़ा अम्ल रस एवं उष्णवीर्य होता है। पका हुआ कषाय-मधुर रस एवं शीत वीर्य होता है। गुण गुरु एवं स्निग्ध तथा विपाक मधुर होता है।

कच्चा फल कफपित्तवर्धक, वातशामक है। रुचिवर्धक एवं रेचक है। पका फल वातपित्तशामक एवं कफवर्धक होता है। तृप्तिकारक, वीर्यवर्धक, विष्टम्भी बलकारक होता है। क्षत दाह, रुधिर विकार, क्षय नाशक है।

आधुनिक मत—कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह एक संकोचक सुगन्धित व शान्तिदायक पदार्थ है। इसका प्रयोग पेषित में किया जाता है।

इसकी छाल मूत्रमार्ग की शोथ को दूर करती है। इसकी छाल का सत्व अतिसार व रक्तातिसार में लाभ करता है। इसे गठिया की अच्छी दवा बताया जाता है और इसके पत्तों का रस कन के रोगों को दूर करता है।

९. काकड़ासिंधी

आयुर्वेदीय पर्याय—कर्कटशृंगी, शृंगी, वक्रा, अजाशृंगी यूनानी—काकरा

लैटिन—Pistacia Integerima

विवरण—इस वृक्ष की ऊँचाई २५ से ३० फुट ऊँची होती है। जिसकी छाल मिटले रंग की होती है। इसके पत्ते २ से ५ इंच लम्बे और १ से ३ इंच चौड़े होते हैं; पूरा पत्ता ६-८ इंच लम्बा होता है जो शाखाओं के आगे छत्ते की तरह लगे रहते हैं। इसके फूल छोटे, पीले-हरे रंग के होते हैं। यह फूल जनवरी और फरवरी के महीने में लगते हैं : मार्च में छोटे चपटे और पतले फल लगते हैं। इसकी शकल जियापोता नामक वृक्ष से मिलती-जुलती है।

इस वृक्ष के शाखाओं, पत्तों पर एक कीड़े से, जिसे 'एफिस' कहा जाता है, सींग जैसी खेखली चीज बन जाती है। यही काकड़ा सिंधी कही जाती है। यह १ से २ इंच लम्बी और १/२ से १ इंच चौड़ी पुराने ईंटों के रंग की होती है। जोर से दवाने पर यह सहज ही टूट जाती है। इसके अन्दर घूल जैसी चीज निकलती है, जिसके विषय में डिमक ने लिखा है कि यह उस कीड़े का मरा हुआ चूरा होता है। यह वृक्ष कुमाऊँ, आसाम, बंगाल में पैदा होता है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि इस पेड़ के अलावा कुछ पेड़ों पर बने सींगों को भी 'काकड़ा सिंधी' के नाम से बाजार में बेचा जाता है।

प्रयोज्य अंग—कीड़े से बना सींग।

मात्रा—६ से १२ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होती है। यह कफवातशामक, संग्राही, वातानुलोमक, हिक्का निग्रहण, ज्वरघ्न है। यह गर्भाशय के शोथ, प्रदर और पूयमेह के लिए लाभदायक है। क्षयरोग नाशक है। विशेष रूप से कास, स्वास, हिक्का में प्रयोग करते हैं। सुश्रुत के मतानुसार यह अन्य औषधियों के साथ साँप और बिच्छू का जहर दूर करने के काम में ली जाती है।

आधुनिक मत—इसमें टैनिन ६०%, उड़नशील तैल और गोंद होते हैं। इसके तैल की गंध तारपीन के तैल जैसी होती है। इसमें Crystalline hydrocarbon होता है।

कर्मल चाकड़ा का कहना है कि यह कफ, क्षय और खांसी की हालत में प्रयोग की जाती है।

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

डा० वामन गणेश देसाई ने इसे कफ रोगों के लिए बहुत उपयोगी बताया है। इसके प्रयोग से सांस नालिका का नवीन और प्राचीन शोथ दूर हो जाता है। जमा हुआ कफ निकल जाता है और नया कफ पैदा नहीं होता। श्वास नलिका की श्लेष्मिक कला पर (Mucus membrane) इसका प्रभाव 'इपि-कोना' की अपेक्षा अधिक होता है।

१०. काजू

आयुर्वेदीय पर्याय — काजूत, काजूतक, वृत्तारूपकट यूनानी नाम — बादामे फिरंगी
अंग्रेजी — Cashew लैटिन — Anacardium Occidentale

विवरण — इसका पेड़ आम का जैसा होता है और हमेशा हरा रहता है। इसके पत्ते ४-८ इंच लम्बे और ३-५ इंच चौड़े होते हैं जिन पर १० जोड़ी धारियाँ होती हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं जिन पर लाल निशान पड़े होते हैं। इसका फल गुर्दे (Kindney) की शकल का होता है और मैला रंग होता है जिसके अन्दर सफेद रंग की गिरी निकलती है, इसे काजू कहते हैं। इसकी छाल से एक तरह का गोंद निकलता है।

प्रयोज्य अंग — गिरी।

मात्रा — $\frac{1}{2}$ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत — मधुर रस, लघु-स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोष नाशक है किन्तु विशेष रूप से वातशामक है। यह दीपन, स्नेहन, अनुलोमन रक्तशोधक, हृद्य वृष्य, मूत्रल, वाजीकरण, बल्य एवं वृंहण है। यह गुल्म, उदर रोग, ज्वर, कृमि, व्रण, कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, अर्श एवं आनाह नाश करता है।

आधुनिक मत — इसके छिलके से गाढ़े काले रंग का तेल निकलता है उसमें ६०% एनाकार्डिक एसिड होता है। एक्तेल होता है जो (Cardol) कार्डोल कहलाता है, यदि यह त्वचा पर लग जाए तो त्वचा पर छाला पड़ जाता है।

इसकी गिरी से तेल निकलता है जो काजू का तेल कहलाता है। यह कृमि रोग की श्रेष्ठ दवा माना जाता है।

११. चिरोंजी

आयुर्वेदीय पर्याय—प्रियाल, खरस्कन्ध, राजादन यूनानी—हब्बुस्समाना
अंग्रेजी—Cuddapa Almond लैटिन—Bucharania Lactifolia.

विवरण—इसका पेड़ ४० से ५० फुट ऊँचा होता है जिसका तना सीधा और ऊँचा होता है और चारों तरफ शाखाएं फैली रहती हैं। इसकी छाल घूमिल होती है और उसकी मोटाई १ इंच होती है। इसमें ६ से १० इंच लम्बे और ५ से ६ इंच चौड़े नोकदार पत्ते होते हैं जो देखने में सुन्दर चिकने और सख्त होते हैं। पत्ते के किनारे साधारण विना कटे-फटे होते हैं। पत्ते का डंठल छोटा होता है। इसमें मञ्जरी लगती है जिनका ऊपरी भाग मन्दिर की चोटी की तरह का होता है। फूल शाखा के अगले भाग में लगते हैं जो नीले रंग के सफेद और छोटे होते हैं तथा बहुत संख्या में होते हैं, इसमें करोंदें जैसे गोल, कुछ चपटे सांवले रंग के, गूदे वाले और स्वाद में खट्टे-मीठे फल लगते हैं, जिनके बीच में छोटी, मिटेले रंग की और चिकनी गिरी निकलती है जो 'चिरोंजी दाना' कहलाती है। इसका फल मार्च में लगता है।

यह पहाड़ों में होने वाला पेड़ है, जो हिमालय, म०-प्र०, उड़ीसा, बर्मा में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, बीज, की गिरी।

मात्रा—छाल का काढ़ा ५ से १० तोला, गिरी चूर्ण १—२ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुरस, स्निग्ध-गुरु सर गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक है। वात पित्तशामक, नाड़ियों के लिए बलप्रद, तृष्णाशामक, दुर्जर, विष्टम्भी, सारक, हृद्य, मूत्रल, वृष्य और वाजीकरण है, बल्य और वृंहण है। इसका लेप कुष्ठ, खारिश और दूसरे चर्म रोगों में लाभ करता है। इसका तेल पालित्य (बाल उड़ना) रोग में भी सिर पर लगाया जाता है।

आधुनिक मत—विश्लेषण करने पर इनमें २८% मांस बढ़ाने वाला तत्व, २½% स्टार्च और क्षार ३½% पाए गए हैं। इसकी सींगी में ५८% फिक्सड आयल मिलता है। इसी को चिरोंजी का तेल कहा जाता है।

इस तेल का प्रयोग बादाम के तेल की जगह किया जाता है। गोंद का प्रयोग दस्तों में लाभ पहुंचाना है।

७२

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

डा० आर० एन० क्षीरी का कहना है कि चिरोंजी चिकनी, ताकत देने वाली और कफनिःसारक है। कमजोरी में इसका प्रयोग किया जाता है। इस का तेल त्वचा के रोगों के लिए लाभदायक है।

१२. पिस्ता

आयुर्वेदीय पर्याय—मुकलक

यूनानी नाम—फुस्तुक

अंग्रेजी—Pistachio

लैटिन—Pistacia Vera

विवरण—यह सीरिया और अफगानिस्तान में पैदा होने वाले एक वृक्ष के बीज की गिरी है जो पिस्ता के नाम से प्रयोग की जाती है। इसके वृक्ष के पत्तों पर भी काकड़ा सींगी की तरह कीड़ों का एक कोष सा बन जाता है, जो पिस्ते का फूल कहलाता है। इसका फूल एक तरफ से गुलाबी और दूसरी तरफ से पीताभश्चेत होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, मज्जा, फूल।

मात्रा बीज मज्जा $\frac{1}{2}$ से १ तोला, फूल ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरुस्निग्धगुण, उष्णवीर्य, मधुर विपाक है। यह वातशामक है। बल्य, वृंहण एवं वृष्य है। कफपित्तवर्धक होता है।

इसका फूल स्तम्भक है और कास अतिसार आदि में प्रयोग किया जाता है। गलशोथ, मुख पाक में इसकी गोलियां चूसते हैं।

आधुनिक मत—बीज मज्जा में सुगन्धित मधुर सा तैल होता है। पिस्ते के फूल में गैलोटेनिक एसिड के जैसा एक कषाय द्रव्य ४५% होता है। बीज मज्जा का तैल स्मरण शक्ति बढ़ाता है। खांसी मिटाता है, हृदय को बल देता है, पागलपन और रक्तदोष दूर करता है।

१३. भिलावा

आयुर्वेदीय पर्याय—भल्लातक, अरुण्कर, अग्निक, शोफकृत, अग्निमुख

यूनानी—हब्बुल कल्ब

अंग्रेजी—Marking Nut

लैटिन—Semecarpus Anacardium

विवरण—इसका पेड़ २५ से ३० फुट ऊंचा होता है। इसकी छाल एक इंच मोटी घूस्र वर्ण की होती है। यदि इनका रस निकाला जाए तो काले

रंग का होता है। इसकी शाखाओं के अग्रभाग से पत्ते निकलते हैं जो लगभग ३ से ८ इंच लम्बे और ५ से १२ इंच चौड़े होते हैं। पत्तों का निचला हिस्सा हृदयाकृति होता है, ऊपरी हिस्से में छोटे-छोटे रोम होते हैं। पत्तों का अगला हिस्सा कुछ मोटा होता है। पत्ते के बीच की लकीरें (Veins) १५ से २५ तक होती हैं और सख्त होनी हैं। यह पत्ते वसन्त में झड़ जाते हैं। गर्मियों में इसमें फूल लगते हैं जो पीलापन लिए होते हैं और यह एक वृक्ष में एक ही लिंग (Sex) के लगते हैं। किसी पेड़ में पुरुष लिंगी तो किसी में स्त्री-पुष्प होते हैं। फूलों का डंठल पत्ते के जितना लम्बा होता है। सर्दियों के दिनों में इसमें फल लगते हैं जो काजू से मिलते-जुलते होते हैं। यह १ इंच लम्बे और दिलकी शक्ल के होते हैं। कच्चा फल हरा होता है और पकने पर चमकीले काले रंग का होता है। पके हुए फल का रस शहद के जैसा गाढ़ा और काला होता है। फल के भीतर बादाम के जैसा एक मीठा बीज होता है। फल के ऊपर एक टोपी लाल रंग की होती है जो पक जाने पर खाई जाती है।

यह भारत के गरम प्रदेशों में, हिमालय के निचले हिस्सों में विशेषकर बिहार, बंगाल, आसाम और उड़ीसा में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा—रस $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती। चटनी ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर कषाय रस; लघुस्निग्ध तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह कफ वातशामक और पित्तसंशोधक है। मेघ्य, दीपन, पाचन, भेदन, यकृतदुत्तेजक और कृमिघ्न है। हृदय के लिए उत्तेजक और शोथ को दूर करता है। कफ निःसारक है। आरम्भ में मूत्र की मात्रा बढ़ती है किन्तु वृक्कों के पक जाने पर बाद में मात्रा कम हो जाती है और यदि फिर भी प्रयोग किया जाए तो मूत्र में खून जाने लगता है। कामोत्तेजक, वाजीकरण और गर्भाशययोत्तेजक है। स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। रसायन है।

आधुनिक मत—इसके फल में ३२% एक ऐसा तैल होता है जो त्वचा पर छाला डाल देता है। यह तैल ईथर में घुल जाता है यह हवा में मिलकर काले रंग का होता जाता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि “भिलावे का गाढ़ा काले रंग का रस एक उत्तेजक औषध के रूप में प्रयोग किया जाता है। त्वचा पर लगाने से यह छाला बना देता है। गठिया की सूजन, कुष्ठ में, दर्द के स्थान पर इस का लेप किया जाता है। लेप से सूजन और जलन होती है। भिलावा को तिल तैल या मक्खन के साथ प्रयोग किया जाए तो यह गर्म, नशा करने वाला, पाचक रसायन और नाड़ियों को बल देने वाला है। यह संग्रहणी, पेट के कीड़े और श्वास और मृगी में प्रयोग किया जाता है। यह गण्डमाला, कुष्ठ और रक्तदोषों में प्रयोग किया जाता है।

विशेष—भिलावा एक जहरीली चीज है। इसलिए इसे शुद्ध करके प्रयोग किया जाता है। अशुद्ध भिलावा ज्यादा मात्रा में प्रयोग करने से सबसे पहले गुदा और शिश्न के अगले हिस्से में खारिश और जलन होती है। पसीना बहुत आता है, प्यास बहुत लगती है। पेशाब कम आता है और उसका रंग घृन्न या लाल होता है। ऐसी हालत में इसका देना बन्द कर देना चाहिए। इसके लिए नारियल का रस चीनी मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

भिलावा का प्रयोग करते समय घूप, स्त्री-सहवास और मांस भक्षण छोड़ दें। नमक को छोड़ देने से ज्यादा लाभ होता है।

बच्चों, वृद्धों, पित्त प्रकृति वालों और गर्भवती स्त्रियों को भिलावे का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

१४ रूमो मस्तगी

यूनानी—अलकरूमि

अंग्रेजी—Mastich

लैटिन—*Pistacia Lentiscus*

विवरण—पिस्ते की तरह एक हमेशा हरा रहने वाला पौधा होता है। यह रूम. दक्षिणी यूरोप, ईरान आदि में होता है। इसके तने और शाखाओं में चीरे लगाने से एक गाढ़ा जमा हुआ गोंद निकलता है। यही गोंद बाजारों में रूमो मस्तगी के नाम से प्रचलित है। यह पीलापन लिए हुए सफेद छोटे गोल दानों की शकल में होता है। यह सुगन्धित होता है और स्वाद कुछ मीठा होता है। अगर इसे खरल में डाल कर रगड़ें तो यह चिपक जाता है। बाजार में नकली चीजें भी इसमें मिलाकर बेच देते हैं।

प्रयोज्य अंग—गोंद ।

मात्रा—३ मासे ।

गुण—यह काबिज है । गरम व खुश्क है । सूजन व वायु दूर करती है । दिल, दिमाग, पेट, जिगर, वृक्क (Kidney) और हाजमे को ताकत देती है । दिमाग के दोषों और कफ को सुखाती या निकालती है । मुंह से खून आने को बन्द करती है । पृष्ठों की तमाम बिमारियों को दूर करती है । पेचिश और मिचली को दूर करती है । यह पेशाब ज्यादा लाती है । यह आतर्व लाने वाली और वाजीकरण है ।

इसमें मैस्टिकिक एसिड ६०% होता है । एक तत्व जिसे मस्टिकिन कहते हैं १०% होता है । इसमें एक उड़न शील तेल होता है ।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह उत्तेजक (Stimulant) और मूत्रल (Diuritic) है । दांतों के लिए लाभप्रद है ।

१५ समाकदाना

आयुर्वेदीय पर्याय—तिन्तिडीक

यूनानी नाम—सुमाक

लैटिन—*Rhus Parviflora*.

विवरण—इसके पेड़ मझले कद के होते हैं । इसके फल मसूर के दानों के बराबर होते हैं और उनके समान ही होते हैं । यह उत्तर भारत में विशेषतः हिमालय में २-५ हजार फुट बी ऊँचाई पर प्राप्त होते हैं । नेपाल और कुमाऊँ में पाया जाता है ।

प्रयोज्य अंग—फल ।

मात्रा—३-५ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—वातशामक, कफपित्तवर्धक होता है । रोचन, दीपन, ग्राही, हृद्य, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, शोथहर, एवं रक्तविकार नाशक होते हैं । यह अरुचि, तृष्णा, वमन, अतिसार, प्रवाहिका में लाभ करता है । इसका लेप सूजन को दूर करता है । जुकाम में सिर पर इसका लेप किया जाता है ।

७६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

APOCYNACEAE FAMILY

कुटजादि वर्ग

पत्र—सादे, अभिमुख (Opposite), अखंड, उपपत्ररहित ।

पुष्प—शाखाग्र उद्भूत ।

पुष्पवाह्यकोश (Calyx) एवं पुष्प अभ्यन्तर कोश (Corolla) के दल ४-५

पुंकेसर (Androceum) ४-५

फल—सैम, गोल या लम्ब गोल, एक डंठल में दो सैम ।

१६. कनेर

आयुर्वेदीय नाम—श्वेत पुष्प शतकुम्भ ।

यूनानी नाम—सम्मुल्हिमार ।

अंग्रेजी—Rose berry spurge.

लैटिन—*Nerium odorum*.

विवरण—इसका पेड़ लगभग १० फुट से १५ फुट तक ऊँचा होता है । इसके मूल से ही और काण्ड से भी शाखाएँ निकलती हैं जिनसे यह झाड़ीदार पेड़ लगने लगता है । इसके पत्ते ४ से ६ इंच लम्बे, नौकीले होते हैं । पत्र के बीच की सिरा सख्त होता है । गर्मी और वर्षा में इस में फूल लगते हैं जो अलग-अलग जाति में अलग-अलग रंग के सफेद, लाल, नीले या पीले होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर शीतकाल में ५ से ६ इंच तक लम्बी, पतली, चपटी, सख्त गोल फालियाँ लगती हैं । फलियों के पकने पर इसमें से छोटे-छोटे चक्राकार, सफेद रोएँदार भूरे रंग के बीज निकलते हैं ।

कनेर के पत्ते या तने को काटा जाए तो सफेद दूध निकलता है । वृक्ष के आकार और गुणों के अनुसार सफेद और लाल कनेर एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं लेकिन पीली कनेर का पेड़ ज्यादा गहरा, पत्ते ज्यादा चमकीले, पतले और छोटे, फल गोल पकने पर भूरे रंग के और फल में गुठली निकलती है । यह प्रायः जंगली कनेर कहलाती है ।

प्रयोज्य अंग—मूल और मूलत्वक ।

मात्रा—चूण १/८ से १ रत्ती ।

आयुर्वेदिक मत—कटु, तिक्त रस, लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण गुण, उष्ण दीर्घ और कटु विपाक है । वात कफ शामक है, बाह्य प्रयोग में कुष्ठघ्न, व्रणशोधन,

कुटजादि वर्ग

७७

व्रणरोपन तथा शोधक है। यह दीपन, विदाहि तथा भेदन है। मूत्रल होने से मूत्र कृच्छ्र और अश्मरी नाशक है। हृद्य है।

आधुनिक मत—जड़ में दो तेज जहरीले तत्व मिलते हैं (i) Neriodorin (ii) Neriodorein इनका हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। एक ग्लुकासाइड जिसे Rosagline कहा जाता है; होता है। Neriene नामक एक तत्व डिजिटैलिन के जैसी प्रभाव दिखाता है।

पीली कनेर में एक मुख्य तत्व Thevetin होता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि पत्ते का तत्व हृदय की गति को मन्द करता है, नाड़ी की गति को मन्द करता और द्वासावरोध करने वाला है। इसका मूल और मूलत्वक मूत्रकारक है। गर्भपात या आत्महत्या के लिए इसकी जड़ खा लेते हैं। इसकी जड़ की छाल का लेप फिरंग व्रण (Syphilitic ulcer) शिश्नक्षत और दाद पर लाभ करता है।

कनेर एक विष है। इसका विषाक्त प्रभाव होने पर उलटी, दस्त, नब्ज मन्दा होना, सांस शीघ्रता, वदन में जकड़ाहट और बेहोशी हो कर मौत तक हो सकती है। इसका यह प्रभाव २ घंटे में हो जाता है। इसमें इसबगोल मूठे में भिगोकर पिलावे या कत्तीरा पानी में भिगोकर वादाम-तैल में मिलाकर पिलाना चाहिए।

१७ करौंदा

आयुर्वेदीय पर्याय—कर्मद, सुषेण, कृष्णपाक

यूनानी—करूंदह

अंग्रेजी—Jasmine flowered Carrissa **लैटिन**—Corissa Carandus.

विवरण—इसका भाड़ीनुमा पौधा ४ ६ फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते १ से ३ इंच लम्बे और १ से १½ इंच चौड़े गोलाई लिए हुए, चिकने और सांसल होते हैं। फूल छोटे सफेद रंग के और बहुत सुगंध वाले होते हैं। यह फूल बसन्त ऋतु में लगते हैं। इसका फल गोल, सफेद एव लाल रंग का होता है जो पकने पर काले रंग का हो जाता है। इसके भीतर तिकोने चार बीज होते हैं। वर्षा काल में फल आते हैं।

करौंदा की एक और जाति होती है जो करौंदी या जंगली करौंदा कहा जाता है। इसकी ऊँचाई कम, पत्ते और फल छोटे होते हैं।

करोँदा भारत में रेतीली और खुश्क जमीन पर होता है। विशेष कर पंजाब बंगाल और बर्मा में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, जड़ की छाल, पत्ते।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—कच्चा फल अम्लरस, गुरु स्निग्ध गुण, अम्ल विपाक और उष्ण वीर्य होता है। पका फल मधुराम्ल रस, गुरु स्निग्ध गुण, मधुर विपाक और शीतवीर्य होता है। इसकी जड़ तिक्त रस, उष्ण वीर्य, गुरुस्निग्ध गुण और कटु विपाक होती है।

कच्चा फल वातनाशक, पित्तकफवर्धक, रक्तपित्तवर्धक है। पका फल वात शामक, रुचिवर्धक, तृष्णाशामक, दीपन और ग्राही है। अतिसार और रक्त पित्त को दूर करने वाला होता है। चर्म रोग दूर करता है। इसका मूल कफवातशामक है। यह ज्वरघ्न भी है।

आधुनिक मत—इसमें एक क्षार तत्व और सैलिसिलिक एसिड (Salicylic acid) पाया जाता है। कर्नल चौपड़ा आदि का कहना है कि इसका कच्चा फल संकोचक, पका फल शीतल, इसकी जड़ कड़वी, पेट को फायदा करने वाली और पेट के कीड़े मारने वाली होती है। विषम ज्वरों में इसके पत्तों का क्वाथ लाभ करता है।

कही २ इसकी जड़ को घोंड़े के पेशाब, नीम्बु के रस और कपूर के साथ पीस कर खुजली की दवा के रूप में प्रयोग करते हैं।

१८. कुड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—कुटज, कुटिज, कीट, वत्सक, इन्द्रयवफल, गिरिमल्लिका।

दूनानी नाम—शज्जलिसानुल असाफीरूल मुरं।

अंग्रेजी—Kurehi

लैटिन—Holarrhene Antidysenterica

विवरण—इसके पेड़ २०-२५ फुट ऊँचे होते हैं जिनकी छाल पीले, मैले रंग की होती है और काष्ठ मुलायम और पाण्डू वर्ण होता है। इसके पत्ते कदम्ब के पत्तों के समान होते हैं और यदि पत्र एवं कामल शाखा को तोड़ा जाए तो दूध निकलता है। पत्ते में १०-१६ जोड़ी उभरी हुई सिराएँ होती हैं।

इसके फूल चमेली के फूल के समान श्वेत वर्ण एवं गंध वाले होते हैं। इसमें ८-१६ इंच लम्बी फलियां लगी रहती हैं। यह डंठल के पास एक साथ दो लगी रहती हैं किन्तु दूसरे किनारे पर अलग रहती हैं। इन फलियों पर सफेद रंग के दाग होते हैं। इन फलियों में यव की आकृति के बीज निकलते हैं जिन पर रूई सी लगी रहती है, जैसे आक के बीजों पर होती है। इन बीजों को 'इंद्र यव' कहते हैं। कुटज के श्वेत एवं कृष्ण दो भेद बताए हैं, इनमें श्वेत कुटज उत्तम है उसके बीज तिक्त होते हैं। कृष्ण कुटज की छाल काली और बीज मधुर व कम गुणकारी है। इसके अतिरिक्त भी इसकी कई जातियों का वर्णन प्राप्त होता है।

श्वेत कुटज हिमालय, बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा में पाया जाता है। कृष्ण कुटज महाराष्ट्र में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, बीज।

मात्रा—छाल १ से २ तोला, बीज चूर्ण ४ से से रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कषायरस, लघुरूक्ष गुण, शीतवीर्य, कटुविपाक है। यह कफपित्त शामक है। दीपन, स्तम्भन, अशोघ्न और कृमिघ्न है। रक्त-शोधक, रक्तस्तम्भक, ज्वरघ्न एवं लेखन है। इसका प्रयोग अग्निमान्द्य, अतिसार, प्रवाहिका, ज्वरातिसार, अर्श, उदरशूल एवं कृमि रोग में किया जाता है, यह ज्वर, रक्तविकार में लाभ करता है। इसका बाह्य प्रयोग व्रण रोपक है।

आधुनिक मत—इसकी छाल और बीजों में 'कुचिसिन' और 'कुचीन' नामक दो तत्व प्राप्त होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि सफेद कुटज के बीज और छाल विषम ज्वर में सिनकोना की तरह लाभ करते हैं। सिनकोना का प्रयोग बेचैनी जी मिचलाना, वमन, शिरःशूल कर देता है किन्तु यह नहीं करते। ग्रहणी, रक्तातिसार, कृमि, रक्तपित्त, श्वास, गुदका दद, विसूचिका में लाभ करते हैं। प्रसव के बाद स्त्री जननेन्द्रियदृढ़ करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

१६. सतौना

आयुर्वेदीय पर्याय—सप्तपर्ण, विशालत्वक, शारद, विषमच्छद।

लैटिन—Alstouia Scholaris.

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

विवरण - इसका हराभरा पेड़ ४०-५० फुट ऊँचा होता है। जिसकी छाल मोटी, सफेद और भंगुर होती है, इसे काटने पर दूध निकलता है। इसमें एक साथ छत्ताकार सात पत्ते लगे मिलते हैं। यह चिकने होते हैं। इसको तोड़ने से भी दूध निकलता है। शरदऋतु में हरिताभ श्वेत फूल गुच्छों में लगते हैं जो सुगन्धित होते हैं। इसमें शीतकाल में १ फुट लम्बी, टेढ़ी, चपटी सी फली लगती है। फली पकने पर फट जाती है और उसमें से सफेद रंग के रुई सी लगे हुए छोटे २ बीज निकलते हैं। यह हिमालय में ३ हजार फुट की ऊँचाई तक तथा बंगाल में ज्यादा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, दूध, फूल।

नत्रा—स्वरस १ से २ तोला, त्वक् चूर्ण ६ से १२ रत्ती, दुग्ध ३ से ६ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाकी होता है। यह त्रिदोष नाशक है। यह दीपन, अनुलोमन एवं कृमि नाशक है। हृद्य एवं रक्तशोधक होता है।

इसका प्रयोग कुष्ठ, रक्तविकार, जन्तु नाशक रूप में किया जाता है। ज्वर में इसका प्रयोग लाभ करता है। व्रण एवं कुष्ठ पर इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल के पेशाब, पदार्थ होते हैं।

डिटैमिन (Ditamine) एकिटैमिन (Echitamine)

एकितैनिन (Echitanine) एकिकाँउचिन (Echicaoutchien)

एकिसरीन (Echicerin) आदि।

इनमें से डिटैमिन नामक तत्व की क्रिया ज्वर में उसी प्रकार होती है जैसे कुर्नीन की। इसकी छाल आमवात, वातरोग एवं चर्म रोगों में लाभ करती है। पाचक होने से पुराने उदर रोग एवं संप्रहणी में लाभ करती है।

२०. सर्पगन्धा

Rauwolfia Serpentina.

विवरण—इसका पौधा बहुत ऊँचा नहीं होता, लगभग ३ फुट तक होता है। इसकी छाल सफेद रंग की रुएदार होती है। पत्ते अण्डाकार होते हैं और

कुटजादि वर्ग

८१

इनका रंग नीचे की ओर हल्का और ऊपर की तरफ गहरा हरा होता है। वह १/३ इंच के डंठल से लगे रहते हैं और ४ से १२ जोड़े सिराएँ होती हैं। पुष्प दण्ड में अनेक पुष्प होते हैं और यह श्वेत गुलाबी या नीलाभ रक्त वर्ण के होते हैं। लाल रंग के मटर के बराबर के फल वर्षा काल में लगते हैं। इसकी जड़ अंगुली के बराबर मोटी और घूसर वर्ण की होती है। यह बिहार, बंगाल उत्तरप्रदेश में मिलता है। वर्मा, लंका, अंडमान, जावा में भी मिलता है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

मात्रा—२ रत्ती से ६ माशा तक अवस्थानुसार।

गुण कर्म—आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका विस्तार से वर्णन नहीं मिलता किन्तु आज इसका प्रयोग बहुत होता है। यह वातकफ शामक है। यह वेदना शामक एवं निद्राजनक होती है। उन्माद, अपस्मार एवं अनिद्रा में प्रयोग की जाती है यह दीपन, पाचन, कृमि नाशक है। इससे हृदय पर अवसादक प्रभाव पड़ता है और रक्त वाहिनियों का प्रसार होता है। इसका प्रयोग रक्तभाराधिक्य में किया जाता है। यह आतर्वजनन एवं ज्वरघ्न है। सर्प विष में इसका प्रयोग किया जाता है।

इसके रस गुण आदि की परीक्षा कर बताया गया है कि इसमें तिक्त रस, रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक एवं निद्राजनन प्रभाव है।

हर्ष का विषय है कि आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली में १९३१ में सिदीकी महोदय ने इस पर अनुसन्धान किया और इसमें मुख्यतः ५ उपकार पाए—

अजमेलाइन, अजमेलीनाइन, अजमेलीसाइन, सपॅराटाइन, सपॅटिनाइन।

उनका कहना है कि प्रथम तीन हृदय अवसादक हैं। यह तीनों सफेद रंग के पदार्थ हैं। दूसरे दोनों पीले रंग के पदार्थ हैं, यह हृदय उत्तेजक हैं किन्तु स्नायु मण्डल और श्वासोच्छ्वास की क्रिया को निष्क्रिय करते हैं।

आज का चिकित्सक समाज इस औषध का बहुत प्रयोग कर रहा है।

ARACEAE FAMILY

सूरणादि वंश

- स्वरूप— प्रायः क्षुप जाति के ।
 पत्र— एकान्तर (Alternate), विभिन्न रंग के, प्रायः साधारण (Simple) कभी विभक्त (Compound)
 पुष्प— अवृन्त, छोटे, एक लिंगी ।
 बीज कोष— १ से ३ खंड वाला ।
 फल— माँसल, सरस ।
 बीज— अनेक ।
 मूल— प्रायः कन्द मूल (Bulbous Root)

२१. जमीकन्द

आयुर्वेदीय पर्याय—सूरण, ओल, कन्द, अर्शोघ्न

यूनानी—ओल

अंग्रेजी—Elephant's Foot.

लैटिन—*Amorphophallus Campanulatus*

विवरण—यह वर्षायु १ से ३ फुट ऊँचा छोटा पौधा होता है । काण्ड के ऊपरी भाग में फीके, हरे एवं नीचे के भाग में तीन भागों में विभक्त १ से ३ फुट लम्बे छत्राकार पत्ते लगे होते हैं । इसमें लाल या बैंगनी रंग के फूल आते हैं जो बरसात में लगते हैं । बाद में फल लगता है जो लाल रंग का होता है । और इसमें २-३ बीज निकलते हैं । इसका कन्द ऊपर से दबा हुआ, चपटा, गोल होता है ।

जमीकन्द की दूसरी जाति जंगली होती है जो बिना बोये ही वनों में पैदा हो जाती है *Amorphophallus Sylvaticus* कहते हैं ।

यह सारे भारत में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—कन्द ।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—यह कटु कषाय रस, लघु तीक्ष्ण एवं रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक और अर्शोघ्न प्रभाव वाला होता है ।

सूरणादि वर्ग

८३

यह कफवात शामक, दीप्त, पाचन, अनुलोमन, यकृतोत्तेजक, शूल प्रशपन, कुमिघ्न है। यह कफघ्न, वृष्य, आतर्वजनन, बल्य और रसायन है। इसका स्थानिक प्रयोग सन्निधिशोथ, इलीपद और अर्बुद पर मधु और घृत के साथ पीसकर करना चाहिए। अर्श के लिए सूरणमोदक इससे बनाया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें Calcium oxilate होता है। तथा एक कटु, तीक्ष्ण और दाहक रस होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह भूख को बढ़ाता है। ताकत देता है, और पेट के अकारे को दूर करता है। बवासीर के लिए यह बहुत लाभप्रद है।

२२. जलकुम्भी

आयुर्वेदीय पर्याय—कुम्भीका, वारिपर्णी, वारिमूली, खमूलिका।

अंग्रेजी—Tropical Duck weed, **लैटिन**—Pistia Stratiotes

विवरण—यह एक जलाशयों में होने वाला पौधा है। इसमें ३ से ४ पत्ते निकलते हैं, पत्ते निकलने से पहले इसकी डाली नज्रिकाकार बीच में फूली हुई मोटी होती है जिसका आकार धड़े में मिलता-जुलता होता है, इसलिए उसे 'कुम्भी' कहते हैं। इसके पत्ते १ से ४ इंच लम्बे मांसल, गोलाकार और गाढ़े नीले रंग के होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में इसके बीच में से एक डंडी निकलती है जिसमें एकलिंगी फूल गुच्छों में लगते हैं। इनका गर्भाशय भिल्ली युक्त होता है जिसमें लम्बे-लम्बे बीज निकलते हैं। यह भारत, एशिया, अफ्रीका और अमेरिका में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पंचांग।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त, मधुर रस, लघु, रुक्ष गुण, शीतवीर्य, मधुर, विपाक होता है। यह त्रिदोष शामक है। यह मृदु रेचन, शोणित स्थापन, कफ निःसारक, मूत्रल तथा ज्वरदाह नाशक है। बल्य है, यह रक्त विकार, ज्वर, मूत्र कृच्छ, दुर्बलता एवं कास-श्वास में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें सोडियम, पोटेशियम, मैगनीशियम, चूना, लोहा, सिलिकिक एसिड एवं एल्युमिनियम होता है।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

कोमान ने बताया है कि इसके पत्तों द्वारा नारियल का तैल सिद्ध कर चर्म रोगों में प्रयोग किया जाता है। उपदंश व मूत्र रोगों में लाभ होता है।

२३. मानकन्द

आयुर्वेदीय पर्याय—मानक, महापत्र।

अंग्रेजी—Great Leaved Caledium.

लैटिन—*Alocasia Indica*

विवरण—इसका पौधा जमीकन्द के जैसा होता है जिसका तना ३-८ फुट लम्बा होता है। इसके पत्ते २, ३ फुट लम्बे, हरे रंग के चमकीले होते हैं। जिनके डंठल सख्त और लम्बे होते हैं। इसके फूल यदि पुरुष जाति के हों तो सफेद रंग के होते हैं और यदि स्त्री जाति के हों तो पीले होते हैं। इसकी जड़ में एक कन्द निकलता है। यह बंगाल और बिहार में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द, काण्ड, एवम् पत्र।

मात्रा—कन्द चूर्ण १/२ से १ तोला, स्वरस, १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर रस, गुरु, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर विपाक, होता है। वातपित्त शामक, अनुलोमक, शूलप्रशमक, रक्तशोधक मूत्रल, बलवर्धक है। इसका प्रयोग वातव्याधि प्रदर रोग, अर्श, शोथ, रक्तपित्त, ग्रहणी पाण्डु में किया जाता है।

आधुनिक मत—इसके कन्द में पोटेशियम ऑक्साइड, चूना तथा स्टार्च होता है।

कर्नल चोपड़ा ने बताया है कि इसके पत्ते रक्तस्राव रोधक एवम् संकोचक होते हैं। अर्श, शोथ एवम् सन्धिवात में लाभ करता है।

इसके पत्तों को या कन्द को गर्म कर सन्धिवात, आमवात आदि स्थानों पर बांधने से शोथ एवम् शूल दूर हो जाती है। इसका स्वरस कर्णशूल, कर्णस्राव में लाभ करता है।

२४. वच

आयुर्वेदीय पर्याय—वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्धा, गोलोमी, शतपर्विका, लोमशा।

यूनानी—अगरे तुर्की।

अंग्रेजी—Sweetflag.

लैटिन—*Acoras Clammus*

विवरण—इसका पौधा ३ से ४ हाथ ऊँचा होता है। जिसमें ईख के जैसे हरे, चमकीले, नोकदार, लम्बे पत्ते लगते हैं। इस पौधे में सुगंध आती रहती है। विशेषकर जड़ में यह गंध अधिक हांती है। इसकी जड़ दूसरे साधारण पौधों की तरह सीधी नहीं होती बल्कि बहुत सी शाखाओं में चारों तरफ को फैली हुई रहती है। जड़ की मोटाई हाथ की मध्यमा उंगली के समान होती है। इसमें गांठें होती हैं जिसमें रोम लगे रहते हैं।

वच आसाम, मणिपुर, नागालैंड आदि प्रदेश में जहां पानी की अधिकत हो वहां पैदा होती है। इसकी प्रायः दो जातियां बताई जाती हैं—घोड़ा वच और दूसरी खुरासानी वच। खुरासानी वच सफ़ेद रंग लिए होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़।

मात्रा—१ से ३ मादा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु तीक्ष्ण रस गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक और मेध्य प्रभाव वाला है। यह वातकफ शामक एवम् पित्तवर्धक होता है। यह मेध्य, वेदना स्थापन, सज्ञा स्थापन, हृदयोत्तेजक, श्वासहर, कण्ठ्य, मूत्रजनन, स्वेदजनन एवम् ज्वरघ्न है। इसका विशेष प्रयोग मानस रोग, उन्माद, अपस्मार आदि को दूर करता है। कष्टातर्व एवम् कष्ट प्रसव में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ की छाल में १.५ से ३.५ प्रतिशत उड़नशील तेल होता है जिसमें मुख्यतः Asarylaldehyde, Acorin, Eugenol, Asarone और Caffeine नामक तत्व पाये जाते हैं।

इन्डियन मैडिरिया मैडिका में वच को ज्वर और मृगी को दूर करने वाला कहा गया है। यह गठिया और पक्षाघात (Paralysis) में दिया जाता है। मूत्रल होने से यह पथरी और शर्करा में लाभ करता है।



ARISTOLOCHIACEAE FAMILY ईश्वर्यादि वर्ग

पत्र—सादा, एकान्तर (Alternate), अवृन्त, उपपत्ररहित।

पुष्प—पुं केशर (Androecium)—६

स्त्रीकेशर—नलिका के नीचे चक्राकार में लगे ।

गर्भाशय—(Ovary) —६ भागों में विभक्त ।

फल—निरस—६ खंडों वाला ।

बीज—प्रत्येक खण्ड में अनेक बीज ।

२५ ईश्वरमूल

आयुर्वेदीय पर्याय—ईश्वरी नाकुली । यूनानी नाम—जरावन्द हिन्दी ।

अंग्रेजी - Indian Birth wort. लैटिन—Aristolochia Indica.

विवरण—इसकी लता होती है जिसका जड़ के पास का भाग अधिक मोटा और ऊपर का काण्ड मुलायम और नलिकाकार होता है । इसके पत्ते २ से ४ इञ्च लम्बे १ इञ्च चौड़े और ३ से ५ सिराओं वाले होते हैं । यह सिराएँ (veins) हथेली में फैली हुई लाईनों की तरह होती है । इस में हरापन लिए सफेद फूल निकलते हैं जो १ से ३ इञ्च लम्बे होते हैं । इसमें फल लगभग गोल होते हैं । जिसमें तिकोने बीज निकलते हैं । इसकी जड़ पीताभरक्त वर्ण की होती है और इसमें तेज गन्ध होती है ।

यह नेपाल, बंगाल, सिलोन और समुद्र के किनारों पर पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—जड़ और पत्ते ।

मात्रा—जड़ का चूर्ण ५ से १० रत्ती, रस पत्तों का १ से ३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—यह रस में कटु, तिक्त कषाय, गुण में लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य में उष्ण और विपाक में कटु है । यह विशेष कर कफ वात शामक है । इसका स्थानिक बाह्य प्रयोग व्रण शोधक, शोथ एवं वेदना दूर करता है । यह दीपन, अनुलोमन, संग्राही, कृमिघ्न एवं शूल प्रशमन है । हृदयोत्तेजक, शोथहर एवं रक्त शोधक है । कफ निःसारक, गर्भाशय संकोचक, मूत्रल और स्वेदजनन है । यह ज्वर एवं विषम ज्वर को भी दूर करता है ।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में एक उड़नशील तेल, रंजक द्रव्य और एक सार तत्व पाये गए हैं ।

डा० नाइकरनी का कहना है कि इसकी जड़ पुष्टाई करती, उत्तेजक, मासिक साव लाती और जोड़ों के रोगों को दूर करती है । इसकी जड़ साँप

बिच्छू और दूसरे विषैले जानवरों के विष को दूर करने वाली है। हैजा और दस्तों में इसे काली मिर्च के साथ देते हैं। इसके पत्ते पाचक और ताकतवर होते हैं।

डा० चौपड़ा ने यह भी लिखा है कि यह खूनी दस्त, आंतों को दूसरी खराबी और पेट के अफारे को दूर करने के लिए काली मिर्च और सोंठ के साथ दी जाती है।

ASCLEPIADACEAE

अर्कादि वर्ग

स्वरूप - प्रायः क्षुप अथवा लता

पत्र—अभिमुख, अखण्ड, मोटे, उपपत्र रहित

पुष्प—पुष्प बाह्य कोश एवं पुष्प आभ्यन्तर कोश के दल ५-५

पुं केशर—५

फल—बीज युक्त एवं रोम युक्त

विशेष—इस वर्ग के हरे द्रव्यों को तोड़ने से दूध निकलना।

२६. अनन्तमूल

आयुर्वेदीय पर्याय—(कृष्ण सारिवा)—सारिवा, श्यामा, गोपी, गोपवधू।

(श्वेत सारिवा)—घवला, सारिवा, गोपकन्या।

अंग्रेजी—Indian sarsaparilla,

लैटिन—(श्वेत)—Hemidesmus Indicus.

(कृष्ण)—Cryptolepis Buchanani.

विवरण—अनन्तमूल (श्वेत) की पतली-सी लता होती है जो ५-१५ फुट लम्बी होती है। इसके पत्ते अन्तार के पत्तों जैसे होते हैं। यह १ से ४ इंच लम्बे और १/४ से १ १/४ इंच चौड़े होते हैं। इनके ऊपर के पृष्ठ पर सफेद रेखाएं होती हैं और निचला पृष्ठ हलके रंग का होता है। पुष्प गुच्छों में निकलते हैं जो नीलाभ हरे होते हैं। शृगाकार फन होते हैं। जो एक साथ दो दो होते हैं इनके भीतर रुई निकलती है। इसकी जड़ तने की तरह ही ऊपर से लाल रंग की और भीतर से सफेद होती है।

काली अनन्तमूल का रंग गहरा काला होता है। इसके पत्ते जामुन के पत्तों जैसे होते हैं और तोड़ने से दूध निकलता है।

अनन्तमूल विशेषकर बिहार, बंगाल, बम्बई, लंका में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

मात्रा—फाण्ट ५-१० तोला, कल्क ३-६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस, गुरुस्निग्धगुण, शीतवीर्य एवम् मधुर विपाक है। यह त्रिदोषशामक होता है। यह रचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन तथा स्तम्भन होता है। रक्तशोधक, शोथहर है। कण्ठ-कुष्ठ-ज्वर का नाश करता है। श्वास-कास-विष नाशक है। प्रदर, अतिसार, रक्तपित्तनाशक है। दाह में एवम् शोथ में इसका लेप किया जाता है। यह शुक्रल होता है।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने पर विदित हुआ कि इसमें कोमारिन (Coumarine) होता है, दूसरा हेमिडेस्मिन (Hemidesmine) होता है। स्माइलैस्परिक एसिड (Smilasperic acid) होता है।

कर्नल चोपड़ा इसे पोषक मानते हैं। यह रक्तशोधक है। उपदंश, गठिया में लाभ करता है।

डा० क्षीरी ने रसायन, स्वेदक, मृत्रल एवम् रेचक बताया है और बताया है कि सारसापेरिला के स्थान पर प्रयोग कर सकते हैं।

यह क्षुधा वर्धक भी होता है। ऐसा पाया जाता है।

२७. गुड़मार

Gymnema Sylvestre

विवरण—इसकी लता कोमल, लम्बी, अनेक शाखाओं वाली एवम् रोमश होती है। पत्ते रोमश, अण्डाकार, अभिमुख होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं जो शिखर के स्वरूप के तथा गुच्छों में होते हैं। $1\frac{1}{2}$ -२ इंच लम्बे भाले की शकल के फूल लगते हैं। $\frac{1}{2}$ इंच लम्बे, चपटे, पक्षसहित बीज होते हैं। यह कोंकण, त्रावणकोर, गोवा और मध्यभारत में पैदा होता है। विन्ध्य प्रदेश के वनांचलों में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र-मूल-बीज।

मात्रा—पत्र १-२ माशा, बीजचूर्ण १-३ माशा ।

गुण कर्म—आयुर्वेद के प्राचीन साहित्य में सम्भवतः इसका वर्णन कहीं पर नहीं आया किन्तु चिकित्सा में आज इन द्रव्य का प्रयोग खूब कारया जाता है । इसके पत्ते को चबाने से जिह्वा की रस जानने की शक्ति नष्ट हो जाती है । वह कफवात शामक है । दीपन, ग्राही और यकृततेजक है । हृदय को उत्तेजित करती और मूत्रल होती है ।

इसका विशेष प्रयोग मधुमेह रोग में किया जाता है । महस्कर और केस ने इस पर अनुसन्धान किया । इनके चूर्ण, क्वाथ, एकस्ट्रेक्ट और इसमें पाए जाने वाले विशेष तत्व 'जिम्नेमिक एसिड' का प्रयोग खरगोश, मंडक आदि पर किया और पाया कि रक्तगत शक्कर की मात्रा कम हो गई है ।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि यह द्रव्य सीधा शक्कर को कम न करके शरीर में उत्पन्न होने वाले इन्स्युलिन के निर्माण में सहायक होता है और इन्स्युलिन के द्वारा मधुमेह में लाभ होता है ।

निश्चित रूप से यह कह पाना कि यह मधुमेह की अचूक औषध है, अभी वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते हैं । भविष्य के गर्भ में इसका फलाफल छिपा हुआ है जो अनुसन्धानों द्वारा जाना जा सकेगा ।

आयुर्वेदज्ञों ने परीक्षण कर इसमें कषाय कटु रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक बताया है ।

२८ जीवन्ती

आयुर्वेदीय पर्याय—जीवन्ती, जीवन्ती, मधुस्रावा, शाकश्रेष्ठा ।

लैटिन—*Leptadenia Reticulata*.

विवरण—यह लता जाति की वनस्पति है जो वर्षा में उत्पन्न होती है । इसके पत्ते सफेद रंग, मांसल एवं हृदयाकार होते हैं । फूल नीले, सफेद रंग के होते हैं । इसमें सींग जैसी फली लगती है जो २-४ इंच लम्बी होती है । कच्ची फलियों का शाक बनाते हैं । इसके दो भेद होते हैं—जीवन्ती, जिसकी फली में सफेद दूध निकलता है और दूसरे स्वर्ण जीवन्ती जिसमें पीला दूध होता है । यह दक्षिण भारत में होती है ।

प्रयोध्य अंग—मूल ।

मात्रा—चूर्ण १-३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, लघु-स्निग्ध गुण, शीतवीर्य एवं मधुर विपाक होता है । वातपित्ताशक है । यह रसायन, बल्य, ग्राही एवं चक्षुष्य है । वीर्यवर्धक कफनिःसारक एवं मूत्रल है ।

इसका प्रयोग रक्तपित्त, कास, ग्रहणी, ज्वर, दाह, मूत्रकृच्छ, क्षय, शोष, यक्ष्मा में किया जाता है । नेत्रों के रोगों को दूर कर तेज बढ़ाती ।

आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि शुक्रशीलता द्वारा हुई शारीरिक दुर्बलता में जीवन्ती अच्छा कार्य करती है ।



B

BERBERIDAE FAMILY

दारू हरिद्रादिवर्ग

स्वरूप— प्रायः वीरूध

पत्र— प्रायः सादे कभी २ संयुक्त

पुष्प— बाह्य कोश (Calyx) और आभ्यन्तर कोश (Corolla) के दल दो चक्रों में

बीजकोष— एक व अधःस्थित

फल— मांसल

२६. दारहल्दी

आयुर्वेदीय पर्याय—दारूहरिद्रा, दार्वी, पर्जन्या, कालीयक यूनानी—दारहल्द अंग्रेजी—Bare berry लैटिन—Berberis Aristosto

विवरण—इसका वृक्ष १० से १५ फुट तक ऊँचा होता है और सदा हरा भरा रहता है । यह कांटेदार हलके भूरे रंग की मुलायम छाल वाला होता है । इसके पत्ते २-३ इंच लम्बे अण्डे की तरह के और कंगुरेदार होते हैं । इस के फूल चमकीले, पीले रंग के होते हैं और फल अण्डे की तरह गोल गुच्छों में

लगते हैं। यूनानी हकीम इसके फल को 'जरेशक' कहते हैं। इसकी लकड़ी दार-हल्दी कही जाती है जो पीली होती। दारहल्दी की छः जातियाँ वनस्पति विशेषज्ञों ने बतलाई है। इनका उत्पत्ति स्थान हिमालय है।

दारहल्दी को दस गुने पानी में उबालें ६ हिस्से पानी बाकी रहने पर उतारे उसी के बराबर बकरी का दूध मिलाकर मन्दी आँच पर ओटाने से काला रंग लिए हुए भरे रंग की, गोंद जैसी मुलायम पानी में धुलने वाली चाटन (लेह) जैसी चीज रस रसोंत कहलाती है इसे अर्बों में 'हुजज' कहा जाता है।

ऐसा ख्याल है कि रसोंत दूसरी जाति जिसे B. Lyolum (चित्रा कहते हैं) से बनाई जाती है।

मात्रा—जड़, जड़ की छाल, लकड़ी १ से ३ माशा, रसोंत ५ से १५ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—रस में कटुतिक्त, रुक्षगुण, उष्ण वीर्य और कटुविपाक होता है। नेत्ररोग, कर्णरोग एवं मुख रोगों को दूर करने वाला होता है। वह प्रमेह, विसर्प, विष विकार, गर्भाशय के रोग एवं ज्वर के लिए हितकारक है।

रसोंत का प्रयोग ज्वर के लिए बहुत किया जाता है। यह मलेरिया और दिल्ली के रोगों को ठीक करती है। इसकी पूरी मात्रा १५ रत्ती की देने पर कभी २ रोगी को पसीना आने के बाद अधिक प्यास, जी घबराना और कमजोरी आने लगती है। खूनी बवासीर के लिए बहुत लाभदायक है। रसोंत का लेप सूजन मिटाता है।

आधुनिक मत—दारहल्दी के छिलके एवं जड़ में एक तत्व 'बरवेराइन' मिलता है। जिसके गुणों में कहा गया है कि यह पीले रंग का कड़वा विष रहित उपकार है। यह आँतों पर उत्तेजक प्रभाव करता है, रक्त की नलियों को फैलाता और ऑस्टियन्टल सोअर नामक चर्म रोग को दूर करता तथा मलेरिया के लिए हितकारक है।

कर्नल चोपड़ा ने लिखा है कि इसका प्रयोग ज्वरों में करते हैं परन्तु यह विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। उनका कहना है कि इसे कोड़, पीलिया, साँप काटने एवम् गर्भावस्था की उलटी में भी देते हैं। इसका फल (जरेशक) बच्चों के लिए हल्का दस्तावर है।

बसु और कीर्तिकार के अनुसार रसोंत को आधे ड्राम की मात्रा में ज्वर दूर करने के लिए देते हैं।

डाक्टर देसाई का कहना है कि दारूहल्दी का कार्य सिनकोना की तरह है। अन्तर यह है कि इस न सिनकोना की तरह हानि नहीं होती है।

BIXINAE FAMILY

तुवरकादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—एकान्तर (Alternate)

पुष्प—बाह्यकोश (Calyx) आभ्यन्तर कोश (Corolla) के
दल ४-५

पुं केशर—(Androceum) ५.

बीजकोष—अधःस्थित

३०. चालमोगरा

आयुर्वेदीय पर्याय—कुष्ठवैरी, तुवरक।

यूनानी—वृज मोगरा

लैटिन—Hydn Ocarpus Wightiana.

विवरण—इसका पेड़ ४० से ५० फुट ऊँचा होता है। इसमें ४ से ६ इंच लम्बे और ३ या ४ इंच चौड़े लट्टू की तरह या भाले की तरह के पत्ते होते हैं। यह पत्ते शरीफे के जैसे चिकने लेकिन चमड़े की तरह सख्त और किनारे दांत जैसे होते हैं। इसमें सफेद रंग के फूल गुच्छों की शकल में होते हैं जिसमें कई पीले रंग के बदाम जैसे बीज निकलते हैं। यह बीज ही चालमोगरा के नाम से विकते हैं और प्रयोग किये जाते हैं। यह ट्रावनकोर और लंका में बहुत पैदा होता है।

मात्रा—चूर्ण १ माशा से ३ माशा तक, तैल ५ से १० बूंद।

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त, कटु, कषाय रस, लघु तीक्ष्ण, स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ शामक होता है। बाह्य प्रयोग में कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, जन्तुघ्न, वणशोधन, व्रणरोपण और लेखन है। आन्तरिक

गुग्गुल्वादि वर्ग

६३

प्रयोग में वेदना स्थापक वामक रेचक कृमिघ्न एवम् प्रेमहृद्घ्न है। यह आम-वात, वातरक्त रोगों को दूर करने वाला है।

आधुनिक मत—सन् १८५६ ई० में पहले पहल यूरोप के वैज्ञानिकों ने इसके तैल का प्रयोग किया और फिर १८६८ ई० में ब्रिटिश फरमकोपिया के अन्दर दर्ज किया गया। इन बीजों में ४४ प्रतिशत स्थिर तैल होता है जिसमें निम्न द्रव्य पाए जाते हैं—

(१) चाल मोमरिक एसिड।

(२) हिड्नोकार्पिक एसिड।

(३) पामिटिक एसिड।

डाक्टर नाइकरनी ने लिखा है कि चालमोगरा का तैल कोढ़ और वात-रक्त (Gout) के लिए बहुत फायदा करता है। गले की गाँठें चर्म रोग और जोड़ों के दर्द को दूर करता है। क्षय के रोग में भी इसके पीने और छाती में मालिश से बहुत फायदा होता है। दाद पर अगर १ महीने तक लगातार इसका तैल लगाया जाये तो पुराने दाद भी चले जाते हैं।

चालमोगरा का तैल पचने में भारी होता है। इसलिए जिसका हाजमा कमजोर हो उसे नहीं देना चाहिए। इसको अधिक मात्रा में देने से जी मिचलाना, उलटी, चक्कर आते हैं। उस हालत में इसका देना बन्द कर देना चाहिए।

BURSERACE FAMILY

गुग्गुल्वादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—एकान्तर (Alternate) संयुक्त (Compound)

पुष्प—बाह्यकोष (Calyx) और आभ्यन्तर कोष (Corolla) के

दल (Sepals) ३-५, स्थायी

(क) पुंकेसर—दल (Sepals) के बराबर या दूने

(ख) स्त्रीकेसर—(Gynoecium) १

(ग) गर्भाशय—उर्ध्वस्थित

फल—कठिन

इस वर्ग के वृक्षों से सुगन्धित निर्यास निकलता है जो औषध या घूप के काम आता है।

३१. गूगल

आयुर्वेदीय पर्याय—गुग्गुल, देवघूष, महिषाक्ष, कौशिक यूनानी—अफलेतन
अंग्रेजी—Indian Dellingium लैटिन Balsamodendran Mukul

विवरण इसका पेड़ छोटा भाड़दार होता है। इसकी छाल हरापन लिए हुए पीली होती है और उस पर से कागज जैसे पतले चमकीले लम्बे परत उतरते हैं। इससे पत्ते अण्डे की शकल के और कंगूरेदार होते हैं। यह छोटी बड़ी शाखाओं के आखिर में लगे रहते हैं। इसमें २-३ फल एक साथ आते हैं और फल पकने पर लाल रंग के होते हैं।

इस पेड़ के गोंद को गुग्गल कहा जाता है। भाव प्रकाश ने रंग के अनुसार यह ५ तरह का बताया है जिसमें सुनहरी रंग का बढ़िया कहा है।

यह सिध, मारवाड़, काठियावाड़ में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—गोंद।

मात्रा—१ माशा से १ १/२ माशा तक।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कपाय और कटु रस युक्त, रुक्ष अधु विशद गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली, पित्त-कारक, दस्तावर, वृष्य, सूक्ष्म, स्वर को उत्तम करने वाली, रसायन, अग्नि-दीपक, बलकारक, वात, कफ, व्रण, अपच, मेदोरोग, प्रमेह, पथरी, कुष्ठ, आमवात, बवासीर, गण्डमाला और कृमि रोग नाशक है।

नवीन गूगल वर्हण एवम् पुराना लेखन गुण करता है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल, गोंद और रेजिन होते हैं। यह सिकुड़न करने वाली छूत नाशक, बलगम हटाने वाली, खून बढ़ाने वाली, सांप के काटने में फायदा करने वाली है।

डा० दामन गणेश देशाई का कहना है कि यह उत्तेजक, कीटाणु नाशक और कफ नाशक है। यह कब्ज को हटाने वाली और भूख को बढ़ाने वाली है। गठिया, सुजाक और उपदंश में फायदा करती है। यह औरतों को महिना

श्लेष्मान्तक वर्ग

६५

ठीक लाती और पीलिया रोग हटाती है। इसके लेप से जख्म साफ हो जाता और भर जाता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि गूगल पेशाब अधिक लाने वाली, पसीना लाने वाली और खून के सफेद कणों को बढ़ाती है। यह आन्तरिक अंगों की सृजन को दूर करती है।

गूगल का खास प्रयोग दर्द दूर करने के लिए भी किया है। यह वायु के कारण होने वाले दर्दों को ठीक करती है।

३२. बोल

आयुर्वेदीय पर्याय—बोल, गन्धरस, पिण्ड, गोपरस।

अंग्रेजी—Myrrh

लैटिन—Balsamodendron Myrrha

विवरण—इसका पेड़ गुग्गुलु जैसा होता है। इस पेड़ में क्षत किया जाए तो एक निर्यास निकलता है जो बीज कहलाता है। इसके चिपकने वाले छोटे छोटे दाने होते हैं जो आपस में इकट्ठे हो जाते हैं। इनका रंग रक्ताभ पीत होता है। यह पहले अफ्रीका में ही होता था। अब अरब, फारस, इरान में मिलता है।

प्रयोज्य अंग—निर्यास।

मात्रा—५-१० रस्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कटु कषाय रस, रुक्ष, लघु गुण, उष्ण वीर्य एवम् कटु विपाक है। त्रिदोष नाशक है। दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिनाशक है। रक्तशोधक, गर्भाशय शोधक है। मेध्य है ज्वर, दाह, मृगी एवम् कुष्ठ रोगों में लाभ करता है। सन्धिवात, वातरक्त, गृध्रसी में इसका लेप किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल होता है। जिसे मिरोल कहते हैं। इसमें कैल्शियम फास्फेट और कार्बोनेट होते हैं।

BORAGINACEAE FAMILY

श्लेष्मान्तक वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष, शाख खुरदरी

६६

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

पत्र—एकान्तर (Alternate) अखण्ड, मोटे, प्रायः लोमयुक्त, प्रायः
उपपत्र रहित

पुष्प—बाह्यकोष (Clayx) आभ्यन्तर कोष (Corolla) ४-८
पुंकेसर ४-८

फल=बीज १-४

३३. लिसोडा

आयुर्वेदीय पर्याय—श्लेषमान्तक, बहुवार, पिच्छिल

यूनानी—सपिस्ता

अंग्रेजी - Large sebestenplum

लैटिन—Cordia Myrra

विवरण—इसका पेड़ ३०-४० फुट ऊंचा होता है। जिसका तना टेढ़ा सा और छाल घूमल रंग की होती है। इसका पत्ता ३ से ५ इंच लम्बा और ३ से ५ धारियों वाला होता है। पत्ता अपने डंठल की तरफ हृदय जैसी शकल का होता है। इसमें सफेद रंग के छोटे फूल आते हैं। फल गोल, सुपारी की तरह, गुच्छों में लगे हुए होते हैं। कच्चा फल हरा और पका पीलापन लिए होता है। इस फल का गूदा चिपचिपा होता है और अन्दर एक गुठली निकलती है। इसके फूल बसन्त में खिलते और फल गर्मी के आखिर में आते हैं। यह सारे भारत में, मित्र, कोचीन और आस्ट्रेलिया में पैदा होता है। एक इसकी छोटी जाति होती है जिसका फल कुछ छोटा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, फूल।

मात्रा—छाल का काढ़ा ५ से १० तोला, फल का शबत १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—रस में मधुर, गुणों में स्निग्ध, गुरु पिच्छिल, शीतवीर्य, मधुर विपाक एवम् विषघ्न प्रभाव इसके फल में होता है। इसकी छाल का रस कषाय और तिक्त होता है तथा पाक में कटु होता है। इसका फल वात पित्तशामक तथा छाल कफ पित्तशामक होती है। इसका फल स्नेहन, तृष्णा-निग्रहण, रक्तपित्तशामक, कफ निःसारक, मूत्र-जनन, वृष्य एवम् ज्वरघ्न है। इसका छालसंग्राही, कृमिघ्न, विष नाशक एवम् त्वक्, दोष नाशक है।

यह वातिक कास, प्रतिश्याय, सूत्रकृच्छ, एवम् रक्तपित्त में प्रयोग होता है। इसकी छाल प्रवाहिका और कृमि रोग में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में २० प्रतिशत टैनिन प्राप्त होती है। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसका फल खांसी, मूत्रकृच्छ, बहुमूत्रता एवम् पित्त विकारों को दूर करने वाला है। इसकी छाल शक्तिप्रद और दर्द हटाने वाली है। मुंह आने पर इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करते हैं।

जावा द्वीप के लोग इसे ताकत के लिए और बुखार को दूर करने के लिए प्रयोग करते हैं। इसके फल का गूदा दाद की बढ़िया दवा माना गया है। कर्नल चोपड़ा ने इसे तिल्ली के लिए भी हितकर लिखा है।

३४. गाजबां

आयुर्वेदीय पर्याय—मोजिह्वा

यूनानी—लिसानुस्सीर

लैटिन—*Onosma Bracteatum*

विवरण—इसका पौधा छोटा-सा होता है जिसमें पत्ते मोटे, मांस वाले, गाय की जीभ जैसी खुरदरे होते हैं और इन पर साबूदाने की तरह छोटे २ निशान होते हैं। इसमें फूल गुच्छों में लगते हैं जिनका रंग नीला होता है और जो पुराने होने पर लाल हो जाते हैं। इसके पत्तों में पानी में भिगाने पर लूआब पाया जाता है। गाजबां के पौधे हिमालय प्रदेश में काश्मीर से कुमाऊँ तक, ईरान तथा अफगानिस्तान में मिलते हैं।

प्रयोज्य अंग—पत्ते और फूल।

मात्रा—पत्ते ४-६ माशा और फूल ३-६ माशा।

आधुनिक मत—पत्तियों में त्रिपचिपा पदार्थ बहुत होता है। साथ ही साथ सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम और आयरन के नमक होते हैं।

कर्नल चोपड़ा इसे एक शक्तिशाली वस्तु मानते हैं। इसे गठिया, गर्मी और कोढ़ में लाभप्रद बताया है।

डा० देसाई इसे मलेरिया, हृदय की घड़कन और मूत्र कष्टता में लाभकर मानते हैं। उपदंश और सुजाक के कारण पैदा हुई जोड़ों की सूजन को दूर करने के लिए इसे चोप चीनी के साथ देने को कहा है।

BIGNONIACEAE FAMILY

श्योनाकादि वर्ग

स्वरूप—वृक्ष

पत्र—अभिमुख, (Opposite), अखण्ड, संयुक्त

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश (Calyx)—५ दल घंटाकार

पुष्प आन्तरकोश—(Corolla)—५ दल नीचे से जुड़े हुए

पुं केशर—(Androceum)—४ (दो छोटे, दो बड़े)

फल—लम्बी, चपटी फली।

बीज—चपटे, पतले और पंखयुक्त

३५. अरलू (सोनापाठा)

आयुर्वेदीय पर्याय—श्योनाक, शोषण, टुण्डुक, शुकनास, दीर्घवृन्त।

लैटिन—*Ororylum Indicum*.

विवरण—इसका वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचा होता है इसका पत्ता संयुक्त होता है जो २ से ४ फुट लम्बा और पक्षाकार होता है। एक पत्ते में कई पत्तियाँ लगती हैं जो ५ इंच लम्बी और ३ से ४ इंच चौड़ी होती हैं गहरे कटे किनारे और कंगरेदार होते हैं। ८ से १० इंच लम्बे डंठल पर अगले हिस्से में लाल बैंगनी रंग के फल लगते हैं जो वर्षा में आते हैं। इसकी फली तलवार की तरह दो-तीन फीट लम्बी होती हैं। इममें सेम के जैमे बीज निकलते हैं जिन पर रुई लगी रहती है। भारत के सभी प्रदेशों में एवं लंका में पैदा होता है।

प्रयोज्य-अंग—छाल, जड़ व फली।**मात्रा**—१ से ३ माशा. स्वरस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कषाय रस लघु रूक्ष गुण, शीत वीर्य कटु विषाक होता है। यह त्रिदोष नाशक। दीपन, पाचन, रोचन, कर्मिघ्न एवम् स्तम्भन होता है। शोथ नाशक, वेदनास्थापक, मूत्रल, ज्वर नाशक है। कास, श्वास, अतिसार, प्रवाहिका, वस्तिशोथ में लाभ करता है। सन्निपात ज्वर से लाभ होता है। इसके क्वाथ से स्नान करने पर आमवात एवम् शोथ दूर हो जाती है। यह दशमूल का एक द्रव्य है।

स्थोनाकादि वर्ग

६६

आधुनिक मत—इसमें एक ग्लुकोसाइड आरोक्सिलिन (Oroxylin), एक तत्व पेक्टिन (Pectin) और क्रिटिक एसिड के अतिरिक्त फेट और वेक्स भी होता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि इसकी छाल द्वारा तिल तेल पका कर कान में डालने से पूय वहना बन्द हो जाता है। इसकी छाल का चूर्ण या क्वाथ अफीम के साथ मिलाकर प्रयोग कराया जाए तो डोवर्स पाउडर जितना पसीना लाता है। इसकी छाल के काढ़े से स्नान करना वात रोगियों के लिए हितकारक है।

जङ्गलनी जड़ी बूटी (गुजराती) पुस्तक में बताया गया है कि इसकी लकड़ी का एक प्याला बनवा लिया जाता है और उसमें पानी भर कर रात में रख देते हैं। उस पानी को सबेरे पीने से हर तरह का विषम ज्वर दूर हो जाता है।

३६. पाटल

आयुर्वेदीय पर्याय—पाटली, पाटला, अमोघा, कृष्णवृन्ता, ताम्रपुष्पी, अम्बुवासनी।

लैटिन—*Stereospermum Suaveolens*.

विवरण—इसके वृक्ष ३० से ६० फुट तक ऊँचे होते हैं जिसका तना मूसर होता है और उस पर काले दाग होते हैं। पत्ते अभिमुख एवं संयुक्त होते हैं। इसके फूल पीले, लाल रंग के या ताम्र वर्ण के होते हैं और सुगन्धित होते हैं। फली 1½ फुट लम्बी होती है, इस पर रूएँ होते हैं और चार सिराएँ होती हैं। इनमें १२ से ५० तक बीज निकलते हैं। इसका एक भेद और भी होता है जिसका फूल सफेद रंग का होता है। यह बंगाल, बिहार एवम् तराई के प्रान्तों में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—पुष्प, मूलत्वक्।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कषाय रस, लघु-रूक्ष-गुण, किंचित् उष्ण होता है और विपाक कटु होता है। इसके पुष्प कषाय मधुर रस व शीत वीर्य होते हैं। त्रिदोष शामक है। रुचिवर्धक, ग्राही, शोथघ्न है। सूत्रल है। इसकी छाल

१००

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

अर्श अतिसार, तृष्णा, कास, श्वास, शोथ में प्रयोग की जाती है। इसके फूल शुक्ल होते हैं, हृदय रोग, हिक्का नागक होते हैं और ज्वर एवम् दाह में लाभ करते हैं।

आधुनिक मत—इसके फूलों में अलब्युमिन, शर्करा, स्युसिलेज होता है। तथा मोम भी होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है यह थकावट दूर करता है एवम् सूत्रल होता है। ग्रहणी, ज्वर, कास, शोथ आदि में लाभ करता है। इसके फूल का चूर्ण शहद के साथ खाने से कठिन हिचकी भी मिट जाती है।

३७. रोहेड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—रोहितक, रोहिष, दाडिमपुष्पक

लैटिन—*Tecomella undulata*.

विवरण—इसके पेड़ १५ से २० फुट ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते एक डंठल में ४ से ८ जोड़ होते हैं और एक अग्रभाग में अकेला रहता है। नीचे के जोड़ों में पत्ते छोटे और ऊपर वाले बड़े होते हैं। इसमें छोटे २ फूलों के बड़े गुच्छे लगते हैं जो बिना डंठल के होते हैं और शाखाओं के अग्रभाग में लगे होते हैं। लगभग २ इञ्च लम्बी-पतली टेढ़ी सी फली लगती है जिसमें सप्स बीज निकलते हैं। यह राजपूताना, पंजाब, कच्छ आदि में होता है।

प्रयोज्य अंग - छाल।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा, क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक गुण—कटु तिक्त, कफघ्न, रक्त, उदु, शीत विष, कटु विपाक व भेदन प्रभाव होता है। कफ पित्त नाशक, दीपक, भेदक, कृमि-नाशक है। सारक एवम् रक्तशोधक है। यह प्लोहा रोग, रक्त विकार, प्रमेह मेद रोग, श्वेत प्रदर में उपयोगी है। कृमि रोग तथा नेत्र रोगों में लाभ करता है। व्रणों में इसका स्वरस लगाते हैं।

आधुनिक मत—इसमें दो तरह के पीले गोंद (Reeins) स्टार्च, टैटिन और लवण पाए गए हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसकी छाल रसायन संकीचक

व. बल्य है। यकृत-प्लोहा वृद्धि एवम् स्थूलता में प्रयोग करते हैं। यह दुर्बलता नाशक है।

C

CANNABINACEAE FAMILY

भांग वर्ग

स्वरूप प्रायः क्षुप

पत्र—एकान्तर, उपपत्र सहित

पुष्प - गुच्छों में,

फल—गोल, दानेदार

३८. भांग

आयुर्वेदीय पर्याय—भांग, मातुलानी, विजया, गज्जा यूनानी—किनव
अंग्रेजी—Indian hemp लैटिन—Cannabis Sativa

विवरण—इसका पौधा हर साल पैदा होने वाला होता है जो आठ फुट तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ पतली और मुलायम होती हैं। इसके पत्ते नीम के पत्तों की तरह एक डंठल में तीन से सात तक लगे होते हैं। फूल गुच्छों में छोटे २ सफेद रंग के होते हैं। फल छोटे, गोल और दानेदार होते हैं। पौधे की राल युक्त फूल मंजरी को 'गांजा' कहते हैं। शाखाओं और पत्तों पर चिपके हुए पदार्थ को 'चरस' कहा जाता है। यह हिन्दुस्तान, ईरान, ईराक और मिश्र में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—भांग, गांजा और चरस।

मात्रा—भांग १ से २ रत्ती, गांजा $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती, चरस $\frac{1}{4}$ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु, तीक्ष्ण एवं रुक्ष गुण, ऊष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। इसका प्रभाव मादक होता है। यह वात कफ नाशक, दीपन, पाचन, रोचन, ग्राही और शूल प्रशमन है। मूत्र की मात्रा बढ़ाने वाली, शुक्र स्तम्भक और गर्भाशय संकोचक है। यह आरम्भिक अवस्था में सोमनस्य-

जनन. हृदय उत्तेजक, नाड़ी एवं श्वसन को तीव्र करने वाली है किन्तु वाद में प्रलापजनन एवं नाड़ी की गति को मन्द करती है। यह वेदना स्थापन है। बवासीर में इसका लेप और घूनी की जाती है। काली खंसी, सांस, दस्त, पेचिश, पेट दर्द और संग्रहणी में लाभ करती है। इसका व्यवहार और विकाशी गुण शरीर की सभी धातुओं को और ओज का सुखाने वाले होते हैं।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल, वसा, शर्करा, मोम और राल होते हैं। Potassium Nitrate और Cannobinane नामक क्षार तत्व पाया जाता है। डाक्टर आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि भांग सुजाक और अग्नि मंदता में लाभ करती है। इसके पत्ते का क्वाथ विसर्प और वात नाड़ियों के दर्द को दूर करने के लिए उन स्थानों पर डाला जाता है। इसका लेप बवासीर के दर्द को और सिर दर्द को दूर करता है।

डा० डिमक ने लिखा है कि भांग के ऊपर बहुत से यूरोपियन डाक्टरों ने खोज की है। उनका कहना है कि डाक्टर ओशनशी ने Tetanus (घुनु स्तम्भ) Hydrophobia (जल संत्रास), Rheumatism (ग्रामवात), Convulsions of Children (बच्चों के आक्षेप) और Cholera (हैजा) में भांग का अच्छा लाभ बताया है।

विष लक्षण—अधिक मात्रा में लेने से पहले पहल चक्कर, बिना सोचे बोलना, भुनभुनी, त्वचा में सुन्नता, पेशियों में दुर्बलता और बेहोशी हो जाती है। बेहोशी के बाद दूसरी अवस्था आती है जिसमें गहरी नींद आ जाती है। कभी २ सांस रुक जाने से मौत भी हो जाती है। विष के लक्षण होने पर अमाशय प्रच्छन्न कर चिकनी चीजें देनी चाहिए। कुचले के सत्त का अन्तःक्षेप किया जाता है।

लगातार खाने से इसकी आदत पड़ जाती है जिससे भूख बन्द हो जाती है, नींद नहीं आती, स्मृति नाश होती है। कम्पन रहता है और पागलपन सा हो जाता है।

CAPPARIDACEAE FAMILY

वरूणादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप अथवा वृक्ष

पत्र—एकाकी या संयुक्त, एकान्तर

पुष्प—बाह्यकोश के दल—४

पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल—४

बीज कोष—अधःस्थ

३६. बरूना

आयुर्वेदीय पर्याय—वरूण, सेतु, कुमारक, तिक्तशाक ।

अंग्रेजी—Three Leaved Caper

लैटिन—Crataeva Religiosa

विवरण—इसके वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचे होते हैं जिसके तने की छाल का रंग घूमर होता है । एक डंठल में तीन-तीन पत्ते एक साथ लगे रहते हैं, प्रत्येक पत्ता अण्डाकार होता है और अगला हिस्सा नोकीला होता है । वसन्त में नीलाभ श्वेत रंग के सुगन्धित पुष्प आते हैं । फल नीम्बू के जैसे गोल होते हैं जिसमें छोटे २ बीज निकलते हैं । यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है विशेषकर मध्य भारत, बंगाल, आसाम एवं मालाबार में होता है ।

प्रयोज्य अंग—जड़, छाल, पत्ते ।

मात्रा—स्वर्ग १ से २ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला ।

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य कटु विपाक होता है : इसका प्रभाव भेदन होता है । यह वात कफ शामक एवं पित्त वर्धक होता है । दीपन, भेदन, कृमिघ्न है । रक्त शोधक, मूत्रल, ज्वरघ्न होता है ।

यह अग्निमान्द्य, विबन्ध, शूल, मण्डमाला, अश्वरी, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, विद्रधि, रक्तज रोग एवं साधारण दुर्बलता में प्रयोग कराया जाता है ।

व्रण शोथ, विद्रधि व मण्डमाला में इसकी छाल का लेप लगाने से लाभ होता है ।

आधुनिक मत—इसकी छाल में सैपोनिन पाया जाता है । बल्य, मृदु-रेचक, अश्वरी नाशक है । क्षुधावर्धक, पित्तनिःसारक एवं मूत्र कारक होने से

१०४

आयुर्वेदीयद्रव्य गुण-विज्ञान

इसकी जड़ की छाल का काढ़ा मूत्र रोग एवं शश्मरी में प्रयोग कराया जाता है। शोथ पर इसके पत्तों का लेप लाभ करता है।

४०. हुलहुल

आयुर्वेदीय पर्याय—अजगन्धा, उग्रगन्धा, तिलपर्णी।

अंग्रेजी—Dogmustard.

लैटिन—(सफेद फूल वाली) *Gynandropsis Pentaphylla*,
(पीले फूल वाली) *Cleome Viscosa*.

विवरण—इसका वर्षायु पौधा १ से ३ फुट तक होता है जिनके तने और शाखाओं पर रोम रहते हैं, इसके पत्ते के एक डंडल में कई पत्तियां होती हैं। पत्तियों को मसलने से तेज गन्ध आती है। फूल का रंग जाति पर निर्भर करता है, श्वेत या पित्त वर्ण के होते हैं। फली दो इंच लम्बी होती है, उनमें सरसों जैसे काले रंग के बीज निकलते हैं। हुलहुल वर्षा में पैदा होती है और भारत के गर्म प्रदेशों में पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, पत्ते, जड़।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा, स्वरस १/२ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मूल—कटु रस, रुक्ष लघु तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक होती है। यह वातकफ शामक है। दीपन, पाचन, अनुलोमन, शूल-प्रशमन एवं कृमि नाशक है। यह स्वेद जनन एवं ज्वर नाशक है। यह विशेष रूप से गुल्म, उदर रोग, ज्वर, कृमि में लाभ करती है।

यदि यह ज्यादा प्रयोग कराई जाए तो पित्त प्रकुपित हो जाता है और रोग उत्पन्न करती है। उसमें पित्त शामक उपचार करना पड़ता है।

आधुनिक मत—डॉ० आर० एन० क्षौरी ने बताया है कि एक वायु शामक पदार्थ है। उदराध्मान, अतिसार एवम् वृत्तकृमि नाशक है। इसके बीजों का क्वाथ क्षत रोपण एवम् कीट नाशन के लिए उपयोगी है। कान के बहने में इसके पत्तों के रस में सैधा नमक डालकर बूंद-बूंद डालते हैं। इसके पत्ते या बीज के लेप से त्वचा लाल हो जाती है एवम् छाला पड़ जाता है।

CELASTRACEAE FAMILY ज्योतिष्मत्यादि वर्ग

स्वरूप प्रायः लता जाति

पत्र—एकान्तर वक्चित अभिमुख एकाकी, उपपत्र प्रायः नहीं

पुष्प पुष्प ब्राह्मकोश एवं पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४—५

पुंकेसर - ३—५, दो कोशयुक्त, अण्डाकार या गोलाकार

४१. मालकांगनी

आयुर्वेदीय पर्याय - ज्योतिष्मती, कटभी, परावतपदी यूनानी—तलान

अंग्रेजी - Staff tree

लैटिन—*Celastrus Pannicclata*

विवरण—यह एक प्रकार की वृक्षारोही लता है जिसका तना सूत्रमय एवम् मृदु होता है इसके पत्ते अण्डाकार नोकीले और दन्तुवार होते हैं। गर्मियों में ३-४ अंगुल लम्बे डंठल पर गुच्छों में फूल लगते हैं जिनमें मीठी सी सुगंध आती है और वह रंग में नीलाभ पीत होता है। चने या मटर के जैसे गोल फल वर्षा में लगते हैं जो कच्चे रहने पर हरे रंग के और पक जाने पर पीले रंग के हो जाते हैं। इनमें तीन खण्ड होते हैं, हरे खण्ड में एक तिकोना बीज निकलता है, जिसका रंग केसरिया होता है। इन फलों में से तैल निकलता है। यह भारत में पंजाब, काश्मीर आदि स्थानों पर होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, तैल एवम् पत्ते।

मात्रा बीज ५-१५ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, तीक्ष्ण स्निग्ध-रस गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक एवम् प्रभाव में मेध्य होती है। यह वात कफ शामक है। वामक, अग्नि वर्धक होती है। यह बुद्धि एवम् स्मृतिवर्धक है। इसके पत्तों का शाक प्रयोग में लाया जाए तो वह स्त्रियों के मासिक-स्त्राव को साफ करता है। यह वाजीकरण भी है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में एक तरह का तिक्त तैल होता है। गोंद व टैनिन का कुछ भाग होता है। इसके बीजों का तैल दो प्रकार से निकालते हैं (१) कोल्हू में पीसकर—जिससे तैल का रंग पीला होता है। और (२) डिस्टिलेशन से—जिसमें तैल का रंग काला होता है। दूसरी विधि के तैल में 'क्रियोजोट' की मात्रा होती है।

१०६

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि मालकांगनी के बीज रसायन, नाड़ियों को बलदायक एवम् उत्तेजक होते हैं। अन्य सुगन्धित औषधियों के साथ यह आमवात, वातरक्त, वातव्याधि एवम् कुष्ठ रोगों में प्रयोग किये जाते हैं। १ हिस्सा मालकांगनी का तेल और ७ भाग मक्खन मिलाकर पोमेटम बनाते हैं जो दिमाग के लिए ताकत देती है। इसका काले रंग का तेल बेरी २ के लिए उत्तम औषध है। तेल के प्रयोग से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।

CHENOPODIACEAE FAMILY वास्तूकादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप जाति के

पत्र एकान्तर (Alternate) कभी २ अभिमुख, उपपत्र रहित।

पुष्प—छोटे, हरे रंग के

पुं केशर—५

बीज कोष—अण्डाकार या गोलाकार, एक कोष्ठीय

४२. पालक

आयुर्वेदीय पर्याय—पलक्या, वास्तुकाकारा, छुरिका, चीरितच्छदा।

यूनानी नाम—स्पंज

अंग्रेजी—Spinage

लैटिन—Spinasia Oleraceae

विवरण—पालक भारतवर्ष में पैदा होने वाला एक प्रसिद्ध शाक है। जिसका पौधा करीब एक फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते मोटे, राँसल और तिकोनाकृति के होते हैं। पत्तों के डंठल लम्बे २ होते हैं।

प्रयोज्य अंग—पत्ते।

आयुर्वेदिक मत—मधुर किञ्चित् कटु रस, शीत एवम् गुरु गुण, शीत वीर्य एवम् मधुर विपाक होता है। यह वातवर्धक एवम् कफकारक होता है। भेदक, विष्टम्भी एवम् विषघ्न होता है। यह श्वास, कास, मेद, पित्त एवम् रक्त के रोगों को दूर करता है।

आधुनिक मत—पालक में एक तरह का क्षार पाया जाता है जो सोडा बाई कार्ब के समान कार्य करता है। इसमें विटामिन सी. ए. और आयरन होता है। यह खून को साफ करता है और बल देता है।

वास्तूकादि वर्ग

१०७

इसका हरा पौधा मूत्राशय की पथरी को दूर करता और जिगर की सूजन और पीलिया में लाभ करता है। कच्चे पालक को दही के साथ खाना बहुत लाभ करता है। इसके पत्तों को उबालकर गरमी के दर्द, गठिया और गर्मी की सूजन पर बांधते हैं इसे ततैया के काटने के स्थान पर भी बांधते हैं।

४३. पोई

आयुर्वेदीय पर्याय—पोतकी, उपोदिका, मालवा, अमृत वल्लरी।

अंग्रेजी—Red Malabar Night Shade, लैटिन—Basella Rubra

विवरण—यह एक लता जाति की वनस्पति है। जिसका रक्त वर्ण होता है। इसके पत्ते मोटे होते हैं और नए पत्तों का रंग परा होता है जबकि पुराने पत्ते लाल निशानों में भरे होते हैं। इसमें गोल गोत्र फल लगते हैं जो मटर के दाने के समान होते हैं। यह पकने पर काले रंग के हो जाते हैं और रसदार हो जाते हैं। तोड़ने पर इनमें लाल रंग का रस निकलता है। यह जलीय प्रान्त में ज्यादातर पाया जाता है। वर्षा एवं शिशिर में इसकी उत्पत्ति होती है।

प्रयोज्य अंग—विशेषकर पत्ते, पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु-स्निग्ध, पिच्छिल गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह वात पित्त शामक एवम् कफवर्धक होता है। यह रुचिकारक, दाहशामक, अनुलोमन, रक्त पित्त शामक, मूत्रल एवम् शुक्ल होता है। यह वृंहण एवम् बल्य होता है।

विद्रधि, विस्फोट, शीतपित्त तथा अग्निदग्ध पर इसकी पत्तियों का लेप करते हैं।

आधुनिक मत—इसमें प्रचुर परिमाण में पिच्छिल द्रव्य एवम् लोह पाया जाता है।

इसका प्रयोग मस्तिष्क दुर्बलता एवम् अनेद्रा में किया जाता है।

४४. बथुआ

आयुर्वेदीय पर्याय—वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र, शाकराट्।

अंग्रेजी—Gocse Foot

लैटिन—Chenopodium Album

विवरण—इसका क्षप १-३ फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते कटे हुए स्थूत्र, स्निग्ध एवम् हरे होते हैं। इसमें हरे रंग के छोटे २ फूल शीत काल में लगते हैं। इनमें काले रंग के बीज निकलते हैं। यह गेहूँ के खेतों में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—पंचांग, बीज।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, बीज चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर रस, लघु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य एवं कटु विपाक है। यह त्रिदोषहर है। यह रेचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक कृमिनाशक है। मूत्रल, शुक्रल एवं बल्य है। ज्वर नाशक है।

रक्तपित्त, जीर्ण कास, श्वास, मूत्रकृच्छ, कामला, अर्श, विबन्ध, अग्नि-मांद्य में प्रयोग कराया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें सुगन्धित तैल, खनिज द्रव्य विशेषकर पोटाश, एवं अलव्युमिनाइड होते हैं।

इसके पत्तों एवं बीजों का शोथ एवम् चर्म रोगों को दूर करता है।

COMBRETACEAE FAMILY **हरीतक्यादि वर्ग**

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—एकान्तर या अभिमुख, सादे (Simple) अखण्ड

पुष्प—छोटे, बाह्यकोप (Calyx) के दल ४, ५ नीचे जुड़े हुए

अभ्यान्तरकोष—(Corolla) ४, ५ अथवा सर्वथा नहीं

पुं केशर—(Androceum) ४, ५ या ८, १०

मर्शशिय—(Ovary) अधःस्थ, एक खण्ड वाला

फल—अविदारी एवं एक बीज वाला

४५. अर्जुन

आयुर्वेदीय पर्याय—धवल, वीरवृक्ष, नदीसर्ज।

ग्रंथेजी—Arjuna

लैटिन—Terminalia Arjuna

विवरण—इसके पेड़ ६०-८० फुट तक ऊँचे होते हैं जिसका तना सीधा

होता है और छाल ऊपर से सफेद और चिकनी तथा भीतर से लाल रंग की होती है। पत्ता संयुक्त होता है और उसकी पत्तियाँ जिह्वाकार होती हैं इसकी पत्तियाँ १०-१५ जोड़ों में होती हैं और एक पत्ती शीर्ष भाग में होती है। फूल सफेद या पीले डंठल के चारों तरफ लगे रहते हैं। कमरख की शकल का छोटा फल होता है जिसमें ५-७ नोकदार हिस्से होते हैं। यह हिमालय की तराई, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश एवं वर्मा में प्राप्त होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा, क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य एवम् कटु विपाक होता है, इसका प्रभाव हृद्य है। यह पित्त कफ शामक, स्तम्भन, हृद्य, ज्वरघ्न होता है यह रक्तातिसार, रक्ताशं, शोथ, हृदय रोग, प्रमेह, पूयमेह, रक्तप्रदर एवम् मेद रोग में प्रयोग किया जाता है। यह जीर्ण ज्वर में उपयोगी होता है। इसकी छाल का चूर्ण व्रण का रोपण करता है। रक्त के बहाव को बन्द करता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में कैल्शियम कार्बोनेट ३४% होता है। टैनिन होती है। अल्युमिनियम, मँगनीशियम होता है।

यह हृदय का पोषक है, जिसके हृदय की पेशी में ताकत आती है। हृदय की घड़कन मजबूत होती है और गिनती भी कम होती है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों में सिकुड़न होती है जिससे रक्तभार बढ़ता है। इससे हृदय में उत्तेजना होती है और शक्तिशाली भी होता है।

४६. बहेड़ा

आयुर्वेदिक पर्याय—विभीतक, अक्ष, कर्षफल, भूतवास यूनानी—बलीलज अंग्रेजी—Bedda Nuts लैटिन—Terminalia Belerica

विवरण—इसका पेड़ लगभग ५० से १०० फीट ऊँचा होता है। जो सीधा लम्बा और गोल होता है। इसकी छाल आधा इंच मोटी घुघले सफेद रंग की और उबड़-खाबड़ रहती है, इसके पत्ते बड़े के पत्तों से मिलते-जुलते ३ से ६ इंच लम्बे होते हैं। फल छोटे, पीले रंग के होते हैं जो गर्मियों में आते

११०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

है। इसका फल गोलाई लिए हुए घुंघले रंग का होता है। फल शीतकाल में आते हैं। यह प्रायः सारे भारत में खास कर पहाड़ी प्रान्तों में और बर्मा में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा—१ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—विभीतक कषाय रस, रूक्ष एवम् लघु गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह क्रिदोष नाशक है। विशेषकर कफ का शमन करता है। इसका बाहरी लेप शोथ एवम् दर्द को दूर करता है और रक्त स्तम्भन है त्वचा का रंग काला करता है।

बहेड़ा दीपन, अनुलोमन और कृमिघ्न है। यह तृष्णानिग्रहण एवं छर्दि निग्रहण है। ज्वरघ्न है। इसका आघा पका फल हलका दस्तावर और पका हुआ सूखा फल संग्राही होता है। यह चक्षुष्य है और घातुबन्धक है।

इसकी मज्जा मादक है, वेदनास्थापन एवं बाजीकरण होती है।

आधुनिक मत—इसके फल में गैलोटैनिक एसिड, राल और एक रंगने वाला द्रव्य पाया गया है। जिसके बीजों में हरियाली लिए हुए पीले रंग का तेल २५% पाया जाता है।

इसे ताकतवर, विषैला और संकोचक कहा गया है। बुखार हटाने वाला, बवासीर, सूजन, अतिसार, कोढ़, पित्त के विकार दूर करता है। प्लीहा वृद्धि को दूर करता है।

डा० क्षीरी का कहना है कि इसे घी में भून कर चूपने से गल के घाव अच्छे हो जाते हैं। कफ रोग और आवाज बैठ जाने पर इसका प्रयोग लाभ करता है।

४७. हरड़

आयुर्वेदीय पर्याय—हरीतकी, अभया, अमृता, शिवा यूनानी—हलीलज
अंग्रेजी—Chebulic Myrobalan लैटिन—Terminalia Chebula

विवरण—हरड़ का पेड़ ८० से १०० फीट ऊँचा होता है। जिसका तना मचबूत और सख्त होता है। इसमें ३ से ८ इंच लम्बे २ से ४ इंच चौड़े पत्ते

हरीतक्यादि वर्ग

१११

होते हैं जो नोकीले और ६ से ८ जोड़ी धारियों वाले होते हैं। बसन्त में इसमें फूल आते हैं और सर्दियों में मंजरी आती है जिसमें तेज गन्ध होती है और कार्तिक में फल दीख पड़ते हैं और बैसाख में फल काम के योग्य हो जाते हैं। यह फल १ से १॥ इञ्च लम्बे होते हैं जिसमें रेखाएँ होती हैं। यह फल कच्चे रहने पर हरे और पकने पर पीले धुंधले रंग के होते हैं। इनमें एक गुठली निकलती है। यह भारत में सभी तरफ पहाड़ी प्रदेशों में ५ हजार फुट की ऊँचाई पर होते हैं।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा रेचनार्थ ३ से ६ माशा, रसायनार्थ १ माशा।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद में हरीतकी सर्व प्रसिद्ध द्रव्य है। शास्त्रों में इसकी सात जातियों का वर्णन किया है जिसका नाम एवम् रूप आदि निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट हो रहा है।

जाति	स्वरूप	प्रयोग	उत्पत्ति स्थान
१. विजया	अलावुवृत्ता	सर्वरोग नाशक	विन्ध्य
२. रोहिणी	वृत्त	वृणरोपण	भांसी
३. पूतना	सूक्ष्म अस्थिमय	प्रलेपनार्थ	सिन्ध
४. अमृता	मांसल	शोधक	मध्य प्रदेश
५. अभया	पंचरेखा युक्त	नेत्र रोग नाशक	चम्पारन
६. जीवन्ती	स्वर्णवर्ण	सर्वरोग नाशक	सौराष्ट्र
७. चेतकी	त्रिरेखा युक्त	रेचनार्थ	हिमालय

हरीतकी के गुण कर्म बताते हुए कहा गया है कि यह पांच रस वाली लवण रहित होती है। इनमें कषाय रस प्रधान होता है। रुक्ष एवम् लघु गुण उष्ण वीर्य, मयुर विपाक होती है। प्रभाव त्रिदोष नाशक है। विशेष कर वातशामक है।

हरीतकी का बाह्य लेप सूजन एवं दर्द को दूर करता है व्रण को साफ करता एवं भरता है। मुँह और गले के रोगों में इसके काढ़े के कुल्ले किए जाते हैं।

हरीतकी बल्य, मेध्य, चक्षुष्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन, मृदुरेचन, कृमि-

घ्न, हृद्य, शोणितस्थापन, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न एवम् रसायन है ।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें चैबुलिनिक एसिड निकलता है जो जल में उबलने पर टैनिक एसिड और गैलिक एसिड में बंट जाता है । टैनिक एसिड ४५% होता है । डा० आर० एन० श्वेरी का कहना है कि हरड़ दस्तावर, कषाय रस और रसायन है । डा० ग्रन्सली ने लिखा है कि वह मुख और कण्ठ की श्लेष्मधरा कला के जंख को दूर करती है । डिजीजेज आफ बंगाल में इसे आमातिमार और रक्तातिमार के लिए लाभदायक कहा है ।

COMPOSITAE FAMILY

भृंगराजादि वर्ग

पत्र—एकान्तर (Alternate) कहीं २ अभिमुख (Opposite)

उपपत्र रहित

पुष्प—स्वरूप में कंदुकाकार या प्यालाकार

(क) आभ्यन्तर कोष (Corolla) में दल ४-५

(ख) पुंकेसर (Androceum) ४-५

(ग) स्त्रीकेशर (Gynoceum) १

फल—शुष्क, अविदारी

बीज—लम्बे, पतली त्वचा वाले

४८. अकरकरा

आयुर्वेदीय पर्याय—आकारकरभः, अकल्लक

यूनानी—आकरकरहा

अंग्रेजी—Pellitory

लैटिन—Anacyclus Pyrethrum

विवरण— इसके छोटे २ पौधे बरसात में पैदा होते हैं इसके तने पर दूर-दूर पर गांठे होती हैं और रूपंदार घुंघले रंग की छाल होती है । इसमें पतले कंगूरेदार १ से २ इंच तक लम्बे पत्त लगते हैं । डाली के ऊपर गेंदा के फूल की तरह फूल निकलता है जिसकी पंखड़ियाँ सफेद गुलाबी और बीच में पीले रंग की होती है । फूल गर्मियों में आते हैं । इसमें चपटे और लम्बे फल लगते हैं । इसकी जड़ २ इंच से ४ इंच तक लम्बी और आधे से पौन इंच तक

भृंगराजादि वर्ग

११३

मोटी बजनदार होती है। जड़ की छाल मोटी भूरी और भुरीदार होती है। अन्य वनस्पतियों के गुण १ वर्ष में खत्म हो जाया करते हैं परन्तु इसकी जड़ में ७ वर्ष तक ज्यों के त्यों गुण पाए जाते हैं।

प्राचीन चरक आदि आयुर्वेदिक संहिताओं में इसका वर्णन नहीं मिलता। अतः अनुमान है कि भाव प्रकाश आदि ने यूनानी हकीमों से इसका ज्ञान प्राप्त किया। यह अफ्रीका, अरब और सीरिया में पैदा होता है। भारत के बंगाल प्रान्त में होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़।

मात्रा—४ से ८ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटुरस, रूक्ष, एव तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक है। कफवातशामक; नाड़ियों के लिए बल्य और उत्तेजक, लालाप्रसेकजनन, तीव्र उत्तेजक, रक्तशोधक, शोथहर, कफघ्न कण्ठ्य और वाजीकरण है। यह प्रमेह नाशक है।

इसका बाह्य प्रयोग उत्तेजक, वेदनास्थापन शोथहर और जन्तुघ्न है।

आधुनिक मत—इसमें एक उड़नशील तैल तथा पाइरेथ्रिन (Pyrethrin) नामक एल्कलाइड पाया जाता है। इसमें रेजिन या राल जैसा तत्व पाया जाता है।

इसके प्रयोग से जलन पैदा होती है, लालास्राव अधिक निकलता है, मज्जातन्तुओं को ताकत देता है, कामोत्तेजक और वातनाशक है।

इससे टिचर आफ पाइरीथ्रम बनाया जाता है जो दांतों के दर्द, बढ़िया, अपस्मार, पक्षाघात, तोतलापन को दूर करता है।

४६. अफसन्तीन

अंग्रेजी—Mugwort

लैटिन—Artemisia Absinthium

विवरण—इसका छोटा-सा पौधा होता है। जिसका तना सीधा और झाखाओं वाला होता है। शाखाएँ मुलायम और सफेद रोमयुक्त होती हैं और बहुत सी पत्तियों से ढकी रहती हैं। इसके पत्ते १ से २ इंच लम्बे सफेद और सफेद रूंगड़े वाले होते हैं। पीले रंग के छोटे फूल आते हैं जिन में बीज

निकलते हैं। इस पौधे में तेज गन्ध आती है और बहुत तीखा स्वाद होता है। यह अफ्रीका, अमेरिका, साइबेरिया, खुरासान, नेपाल और भारत में काश्मीर में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग ।

मात्रा—२ से ४ माशे ।

डा० नाइकर्णी ने लिखा है कि यह बुखार, अजीर्ण को दूर करती, पसीना लाती और कीड़ों का नाश करती है। यह दिमाग को ताकत देती है। छोटे बच्चों को चेचक में इसका काढ़ा दिया जाता है। यह मासिकस्राव को साफ करती है।

कर्नल कीर्तिकार और वसु का कहना है कि यह पाचन क्रिया की कमजोरी और कृमि रोगों को दूर करती और विषम ज्वरों पर अच्छा काम करती है।

आधुनिक चिकित्सक “टिचर एब्सिन्थिल” और “वाइनम एरोमेटिकम एब्सिन्थियम” नामक दो योग प्रयोग में लाते हैं जो अफसन्तीन से बनाए जाते हैं।

५०. आयापान

Eupatorium Ayapaue

विवरण—इसका क्षुप २-४ फुट तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ सादी, लाल रंग की और किञ्चित् रोमश होती हैं। इसके पत्ते लाल रंग के मुलायम होते हैं। इनमें तीन स्पष्ट सिराएँ होती हैं। अगर पत्तों को ममला जाए तो तेज गंध निकलती है। इसमें बैंगनी रंग के फूल लगते हैं। यह बंगाल में ज्यादा होता है, वैसे इसका मूल निवास अमेरिका कहा जाता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग ।

मात्रा—स्वरस २-४ तोला, चूर्ण २-४ माशा ।

गुण-कर्म—आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका कहीं वर्णन उपलब्ध नहीं होता। इसको उष्ण पदार्थ माना जाता है, यह कफपित्त शामक होता है। वामक एवं रेचक है। कफनिःसारक है। हृदय को उत्तेजित करता एवं रक्त को शुद्ध करता है। यह स्वेदजनन एवं विषघ्न है।

इसके रस का सेवन करने से रक्तातिसार, रक्ताशं, रक्तप्रहर एवं ग्रन्थ

भृंगराजादि वर्ग

११५

कहीं से भी बहने वाला रक्त बन्द हो जाता है। इसका लेप व्रणरोपक एवं रक्तरोधक होता है।

इसमें एक सुगन्धित उड़नशील तैल एवं आयापानिन नामक एक स्फटिकीय तत्व होता है। इनके अतिरिक्त प्रचुर कषाय द्रव्य होता है।

५१. ककरौंधा

आयुर्वेदीय पर्याय—कुकुन्दर

यूनानी—करबसें रूमी

अंग्रेजी—Blume.

लैटिन—Blumealacera.

विवरण—इसका पौधा १ से २ फुट ऊँचा होता है जिसके पत्ते कासनी के पत्तों जैसे, कटे, फटे, मोटे रूएदार और तेज गन्ध वाले होते हैं। इसमें छोटे, पीले रंग के रोएँदार फल आते हैं। इसके बीज छोटे और काले रंग के होते हैं। इस पौधे का ऊपरी हिस्सा ताम्बे के रंग का होता है। यह पौधा बरसात में पैदा होता है और गर्मियों में सूख जाता है। यह नम और ऊँची जमीन पर भारत के सभी हिस्सों में पाए जाता है। इसकी और भी कई जातियाँ हैं।

प्रयोज्य अंग—जड़ और पत्ते।

मात्रा—रस १ तोला, चटनी १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कषाय, तिक्त, कटु रस, लघु रुक्ष एवम् तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक, दीपन, अनुलोमन कृमिघ्न है। शोणितस्थापन, शोथहर, ज्वरघ्न और विषघ्न है। इसका रस सूंघने से जुकाम, सिर दर्द दूर होता है। इसके पत्तों को गरम कर बांधने से सूजन दूर होती है। जल्मों पर इसे लगाया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें एक उड़ने वाला तैल होता है और एक तरह का कपूर होता है जो भीमसेनी कपूर के जैसा होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह दवा पसीना लाती है, पेट का अप्फारा दूर करती है और बलगम बहार फेंकती है।

इसका स्वाद कड़वा होता है और यह दुष्गन्ध को दूर करता है। इसके पत्तों का रस पेट के कीड़े मारता है। पेक्षादक होता है।

११६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

५२. कुसुमा (कसूमा)

आयुर्वेदीय पर्याय—कुसुम्भ

यूनानी—कर्तम

अंग्रेजी—The Saofflower

लैटिन—*Carthamus Tinctorius*

विवरण—इसका पौधा ३-४ फुट ऊँचा होता है। पत्ते लम्बे किनारों पर कटे हुए, नुकीले और कांटेदार होते हैं। इसकी डंडियाँ सफेद होती हैं। इसमें सुपारी की तरह नोकदार कांटे वाली डोडियाँ लगती हैं जो पीले, नारंगी, लाल रंग के केसरिया फूल बनाती हैं। इसमें सफेद रंग के बीज निकलते हैं जिन्हें यूनानी हकीम 'हब्बुल कर्तम' कह कर प्रयोग करते हैं। बीज में मींगी निकलती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, पुष्प, पत्ते।

मात्रा—१॥ माशा से ३ माशा बीज, १ से २ तोले पत्तों का रस और फूलों का काढ़ा ५ से १० तोला तक।

आयुर्वेदिक मत—गालिग्राम निघंटु में इसके भिन्न २ अंगों के गुण अलग-अलग बताए हैं। इसके फूल मधुर, त्रिदोष नाशक, भेदक, रुक्ष उष्ण, पित्त कारक केशरंजक, कफनाशक और लघु होते हैं।

कुसुमा के बीज मधुर, स्निग्ध, शीतल, कषाय, गुरु, कफ-वात और रक्त-पित्त का नाश करने वाले होते हैं।

इसके पत्तों का रस मधुर, चक्षुष्य, उष्ण, कटु, अग्निदीपक, रुचिकारक, रुक्ष, गुरु, सारक, पित्तजनक, अम्ल, गुदा के रोगों को उत्पन्न करने वाला कफ, मल-मूत्र और चर्बी को दूर करने वाला है।

इसका तैल गरम, पाक में कटु, गुरु, दाहजनक और त्रिदोष का प्रकोष करने वाला है।

आधुनिक मत—फूलों में लाल रंग का द्रव्य Carthamin पाया जाता है। Albumin Silies manganese Iron होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि इसके बीज दस्तावर होते हैं। यह गठिया के लिए मुफीद हैं। इसके फूल पीलिया दूर करने वाले होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि कुसुम का बीज रेचक होता है।

भृंगराजादि वर्ग

११७

तिल तैल को कुसुम के रस में पका कर वायु रोग, सूजन और दर्द वाले जोड़, अर्वांग और जख्मों पर लगाने से फायदा होता है। इसके सूखे हुए फूल पीलिया को दूर करते हैं।

५३. कासनी

अंग्रेजी—Endive

लैटिन—*Cichorium intybus*

विवरण—इसका पौधा ३ से ६ फीट ऊँचा होता है, शाखाएँ कोमल होती हैं, पत्ते चौड़े होते हैं और पालक के पत्तों की तरह होते हैं जिनका स्वाद तीखा होता है। नीले रंग के फूल आते हैं जिसमें सफेद धुंधले रंग के हलके बीज आते हैं। इसकी जड़ गाय की पूँछ के आकार की बाहर से धुंधली और भीतर से सफेद होती है।

इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक क्य और दूसरी ग्राम्य। ग्राम्य को *Oichorium ondivia* कहते हैं काश्मीर, पंजाब, ईरान और यूरोप में होती हैं।

प्रयोज्य अंग—पत्ते, जड़ और बीज।

मात्रा—पत्ते का रस १ से २ तोला, जड़ या बीज का चूर्ण ३ से ६ माशा

गुण-कर्म—इसको बिना पानी में घोए प्रयोग करना चाहिए क्योंकि पानी में घोने से प्रभाव समाप्त हो जाता है। यह खून की गर्मी पित्त की गर्मी को दूर करती है। आम्रमाशय, जिगर और मसाने की सूजन और गर्मी को दूर करती है। गर्मी के सिर दर्द में कासनी के रस में चन्दन पीसकर लेप करते हैं। शर्बत शहतूत के साथ गले की सूजन में गरारे कराते हैं। इससे पेशाब अधिक आता है। गर्मी की वजह से जिनको पागलपन हुआ हो उनको लाभ पहुँचाती है। खांसी के लिए हानिकारक है।

इसकी जड़ पेशाब और मासिक स्राव साफ लाती है, कफज रोगों को दूर करती और सूजन को दूर करती है। यह गठिया में फायदा पहुँचाती है, यह मतली पैदा करती, इसके लिए शहद में देना चाहिए।

इसके बीज सिर दर्द, दिल की धड़कन, जिगर की गर्मी, प्यास, पीलिया, गुर्दे और तिल्ली की बीमारी में लाभ पहुँचाते हैं।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में पोटाश सल्फेट और नाइट्रेट, एन्युलिन

होता है। फूलों में साइकोरिन, लैक्ट्युसिन और इण्टिबिन पाए जाते हैं। इस के बीजों में एक मृदु तैल होता है।

हक्सबूलर का कहना है कि दस्तों में और पित्त की खराबी में कासनी लाभ करती है।

कर्नल चौपड़ा का कहना है कि इसकी सूखी जड़ काफी के साथ मिलाकर जिगर के रोगों में दी जाती है। इसके पिसे हुए बीज महावारी की खराबी को ठीक करते हैं।

५४. काहू

लैटिन—*Lactuca Scariola*.

विवरण—इसके पौधे आधा गज से एक गज तक ऊँचे होते हैं जिसमें चौड़े पत्ते लगते हैं और शाखाएँ पतली होती हैं। इसमें सफेद रंग का फूल लगता है इसकी डोडी में बीज आने के समय में दूध निकलता है, जो शाखाओं एवं तने में भी पाया जाता है। चीरा देकर दूध निकालकर सूख जाने पर 'काहू की अफीम' कहलाता है। इसके बीज बारीक और सफेद होते हैं।

यह दो तरह का होता है। एक जंगली और दूसरा बाग का। बाग में बोया हुआ काहू पत्तों की शकल में साग के काम आता है। यह हिंदुस्तान और फारस में हर जगह पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग - पत्ते, बीज और दूध।

मात्रा—पत्तों का रस १ से ५ तोला, अफीम १ से ३ रत्ती, बीज ३ से ६ माशा।

गुण-कर्म—पत्ते खून की तेजी और पित्त की गर्मी को दूर करते हैं। खून साफ करता है, प्यास मिटाता और पेशाब साफ लाता है, औरतों को दूध बढ़ाता है। यह आहार की तरह प्रयोग होता है। पोलिया और सुजाक को ठीक करता है। नींद लाता है, भूख बढ़ाता और पेट दर्द दूर करता है।

इसके बीजों से रोगन भी बनाया जाता है। यह नींद लाने और बालों को ताकत देने के लिए सिर में लगाया जाता है, गर्मी से हुआ सिर दर्द भी मिट जाता है। यह दिमागी रोगों, गर्मी के बुखारों में दूसरी दवा के साथ मिलाकर दिया जाता है।

काहू की अफीम खसखस की अफीम की तरह नींद और नशा करती है लेकिन उसकी तरह इससे हाजमा खराब नहीं होता और न वज्ज होती है। इसके खाने खाने के बाद सुस्ती और कमजोरी का दौर भी नहीं आता है।

आधुनिक मत—इसमें लेक्ट्रिन नामक तत्व पाया जाता है। यह ठन्डा, शान्ति देने वाला, पेशाब ज्यादा लाने वाला, नींद लाने वाला और कफ को बाहर निकालने वाला होता है।

५५. किरमानी अजवायन

आयुर्वेदीय पर्याय — चोहार, कीटमारी यवानी यूनानी—दिरमना तुर्की
अंग्रेजी - Worm Seed लैटिन—*Artemisia Maritima*

विवरण—इसका पौधा सोए के पौधे के बराबर ऊँचा होता है। पत्ते छोटे-छोटे नाजुक, स्वाद में तीखे और तेज खुशबूदार होते हैं। इसके फूल अफसंतीन रूमी की तरह होते हैं जिनमें कसूम के बीजों जैसे बीज लगते हैं जो उनसे कुछ बड़े होते हैं। यह बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, फारस, तिब्बत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, सत (सैन्टोनिन)।

मात्रा—पञ्चांग चूर्ण ३ से ६ माशा, सत $1/2$ रत्ती से $2\frac{1}{2}$ रत्ती।

गुण-कर्म—यह सूजन मिटाती, घावों को खुश्क करती, पेट के कीड़ों को मारती, दस्त साफ लाती और पेशाब तथा मासिक स्राव को साफ करती है। यह वायु को खत्म करती और पुराने बुखारों को दूर करती है। इसे जलाकर जैतून के तैल में मिलाकर लगाने से बाल उगने लगते हैं। इसका जौशांदा बनाकर देने से पेट के कीड़े मर जाते हैं और मल मार्ग से निकल जाते हैं। यह आमाशय और मस्तिष्क को हानि पहुंचाती है, इसके लिए मस्तगी देनी चाहिए।

आधुनिक मत—इसमें १.७५% Santonin फूलों में पाई जाती है। जो आज कृमिनाशक श्रेष्ठ औषध मानी जा रही है। सैन्टोनिन प्रायः रशिया से मंगाई जाती है जब कि इस दवा की खोज कर काश्मीर के कुछ भागों में इसे पाया गया और उससे सैन्टोनिन तैयार किया गया। यद्यपि यह मात्रा में कम निकला तो भी यह पना लग गया कि यह रशियन सैन्टोनिन से किसी तरह भी कम नहीं है, बल्कि कुछ अधिक ही कार्य करती है।

१२०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

५६ कूठ

आयुर्वेदीय पर्याय—कुष्ठ, वाप्य, काश्मीर

यूनानी—कुरस्ते हिन्दी

अंग्रेजी—Costus.

लैटिन—Saussurea Lappa.

विवरण—इसका पौधा ६-८ फुट तक ऊँचा होता है। जिसका तना छोटी ऊँगली के बराबर मोटा और मजबूत होता है इसमें दिलवी आकृति के बड़े पत्ते लगते हैं जिनके डंठल २-३ फुट लम्बे होते हैं। इसके फूल गोल गेन्दा की तरह के बैंगनी रंग के होते हैं। फल दबा हुआ, टेढ़ा-सा होता है। फूल और फल सर्दी में आते हैं।

इसकी जड़ बरसों तक रह सकती है और उसी से हर साल नए पौधे निकल आते हैं। यह ३ से इञ्च लम्बी और $\frac{1}{2}$ से $1\frac{1}{2}$ इञ्च मोटी गाजर जैसी एक तरफ फटी हुई-सी और तोड़ने से अन्दर सफेद रंग की होती है। यह बाहर से घुँघली और खड़ी धारियों वाली होती है जिसमें से तेज सुगन्ध निकलती है। कूठ काश्मीर में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—जड़।

मात्रा—२ से १० रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कूठ शब्द से कड़वे कूठ को ही ग्रहण किया है। यूनानी की तरह मोठा कूठ करके कोई भेद नहीं बताया गया तो भी कोई २ मोठे कूठ की जगह पोहकरमूल का प्रयोग करते हैं।

कूठ तिक्त, बटु, मधुर रस, लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक कहा गया है। यह कफ वात शामक, अक्षेपहारक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, ग्राही, रक्तशोधक, शोथहर, श्वासहर, आतर्वजनन, स्तन्यजनन, मूत्रल, वृष्य, शुक्रशोधन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न और रसायन गुणों वाला है।

इसका लेप अथवा घूपन करने से पुराने जर्जर, सिर दर्द, दाँत दर्द, सन्धिशोथ, गठिया और गंजापन दूर हो जाते हैं।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में (Saussurin) नामक क्षारतत्व, सुगन्धित तैल, टैनिन, इन्स्युलिन, (Insulin) पोटाशियम नाइट्रेट और चीनी होती है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि कूठ गरम होता है। यह सांस हैजा और बदहजमी को दूर करता है। पुराने त्वचा के रोगों के लिए हितकारक है।

कर्नल चौपड़ा ने कूठ का परीक्षण दमे के रोगियों पर किया और ६० रोगियों के उपचार से उन्हें पता चला कि यह सांस की नलिकाओं को फैलाता, वलगम को आसानी से बाहर फेकता और दोरे को मिटाता है।

डा० वामन गणेश देसाई ने त्वचा के रोगों के लिए इसे उत्तम माना है। इनका कहना है कि गठिया में एरण्डी के तैल के साथ इसका चूर्ण पिलाना और उसी का लेप करना लाभ करता है।

५७ गोरखमुण्डी

आयुर्वेदीय पर्याय—मुण्डी, श्रावणी, तपोघना

यूनानी—कमबुरियुस

लैटिन—*Sphaeranthus Indicus*.

विवरण—इसका पौधा लगभग एक फुट तक ऊँचा होता है और खेतों में फैला रहता है। इसका तना गोल होता है और शुरू से ही शाखायें निकली रहती हैं। इस पर सफेद सा रूआं आया होता है। इसके पत्ते आधा से २ इंच तक लम्बे होते हैं और किनारे पर दांतों की तरह कटाव होता है। इस का रंग फीका हरा होता है। फूलों की डंडी ५ से ७ इंच तक लम्बी होती है और सर्दियों में बैंगनी रंग के फूलों के गुच्छे आते हैं। यह वदम्ब के फूलों से मिलते-जुलते होते हैं, यह ५ हजार फुट की ऊँचाई तक सारे भारत में होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़ सहित पूरा पौधा।

मात्रा—रस $\frac{1}{2}$ से २ तोला, काढ़ा ५ १० तोला, चूर्ण $\frac{1}{2}$ से १ माश।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कटु और मधुर रस, लघु और रुक्ष गुण, उष्ण बौर्य और कटु विपाक होती है। यह त्रिदोषशामक, मेध्य नाडीवर्धक, वेदना-स्थापन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, शोध-नाशक, वृष्य, मूत्रल रसायन है। इसका लेप करने से सूजन और वेदना शान्त होती है। कुष्ठ रोग नाशक है। इसकी जड़ का तैल वाजीकरण होता है।

आधुनिक मत—इसमें ये एक तीखा सा क्षार प्राप्त होता है जिसे *Sphaeranthus* कहा जाता है। एक सुगन्धित तैल भी पाया गया है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि यह सिफलिस, गठिया और फोड़े फुन्सी ठीक करती है। इसका लेप करने से बवासीर के मस्ते और गण्डमाला ठीक हो जाती है।

वर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह एक उत्तेजक औषध है। यह पथरी पोलियाँ और गाँठों की सूजन को दूर करती है।

कौमान ने इसे पेशाब के रोगों के लिए उत्तम बताया है।

कहा जाता है कि गोरखमुण्डी को छाया में सुखाकर पीस कर उसका हलवा बनाकर खाया जाए तो जवानी बनी रहनी है।

मुफर्रेदाद इमाम (यूनानी ग्रन्थ) में इसे गण्डमाला की बढ़िया दवा बताता है। तालीफ शरीफ (रूनानी ग्रन्थ) में इसे बुद्धि बढ़ाने वाला कहा गया है।

अरवेहयात (यूनानी ग्रन्थ) में लिखा है कि चैत्र के महीने में ५-७ गोरखमुण्डी के ताजे फल थोड़े दाँत से चबा कर पानी से पी लेने पर आँखों की शक्ति और रोशनी सदा बनी रहती है।

५८. पोहकरमूल

आयुर्वेदीय पर्याय — पुष्करमूल, पद्मपत्र, काश्मार।

अंग्रेजी Iris Root

लैटिन—Inula Racemosa

विवरण—इसका पौधा कूठ से मिलता-जुलता होता है। जिसके पत्ते ज्यादा लम्बे और कम चौड़े होते हैं। इसमें सफेद नीले या ऐसे ही रंग के फूल आते हैं। इसकी जड़ मिट्टी के रंग की सख्त और गाँठदार होती है। इसे तोड़ने पर अन्दर से गुलाबी निकलती है और तैल गन्ध और तीखे एवं कड़वे स्वाद वाली होती है। यह ईरान और काश्मीर में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

मात्रा—२ से १० रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कटु रस, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह वातकफशामक, मस्तिष्क तथा नाड़ी उत्तेजक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, कासहर, हिक्का निग्रहण मूत्रजनन, वाजीकरण स्वेदजनन होता है। इसका स्थानिक प्रयोग सूजन और दर्द को दूर करता है।

वर्द पसली में इसका लेप किया जाता है। यह साधारण कमजोरी को दूर करता है। इस Cardiac Asthma में, प्लुरिमी में और दूसरी, स्वासयन्त्र की रोगावस्थाओं में देते हैं।

आधुनिक मत—इसमें एक उडनगोल नैल, एक तिक्त सत और बेंजोइक एसिड होता है। कर्नल चौपड़ा आदि के मत में यह दवा कफ सरलता से निकालती, पाचन क्रिया ठीक करती और बल देने वाली होती है।

५६. ब्रह्मदण्डी

Tricholepsis Glaberrima

विवरण—यह ऊँट कटारे की किस्म की एक वृत्ती है जो कि आधा गज तक लम्बी होनी है। इसकी रंगत हरी सफेदी लिए हुए होती है। इसकी शाखाएँ बारीक होती हैं। फूल पहने गोल निकलता है जो बाद में कटोरीनुमा सुर्खी लिए हुए नीला हो जाता है। इसके चारों तरफ बारीक और नाजुक काँटे होते हैं। यह मध्य भारत, पंजाब, आरूपर्वत और राजपूताना में होती है। बम्बई राज्य में पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—पूरा पौधा।

मात्रा—४ मासे से १० मासे तक।

गुण—यह शरीर और स्मरण शक्ति को बढ़ाती है। खून साफ करती और व्रणों का रोपण करती है। यह त्वचा के रोगों को, फाड़े-फुन्सी को साफ करती और चेहरे का रंग निखारती है। कहा गया है कि एक तोला ब्रह्मदण्डी को सात मिर्च काली के साथ पीसकर छानकर चालीस दिन तक लगातार पीने और केवल चने की रोटी खाने से कोई अच्छा हो जाता है। यह मनुष्य की कामशक्ति और स्तम्भन शक्ति बढ़ाती है। सृजन और वायु के रोगों को भी दूर करती है।

कुछ का कहना है कि ब्रह्मदण्डी को पानी में भिगोकर छान कर पीने से पेशाव में खून आना बन्द हो जाता है। यह औषधि गर्मी और खुश्की करती है। इसके लिए शुद्ध शहद का प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक मत—कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह ल्युकोड्रमा और दूसरी

त्वचा की बीमारियों में लाभ करती हैं। नसों (Nerves) को ताकत देती हैं और वीर्य की कमजोरी को दूर करती हैं।

६०. बहमन

लैटिन—Centaurea Behen

विवरण—यह फारस, सीरिया, अरमानिया से आता है। यह पौधों की जड़ें होती हैं जो दो तरह की होती हैं। एक सफेद बहमन जो सूखी, भूरे रंग की, भुर्रीदार, बाहर से सफेदी लिए और पेंचदार होती है। इसे पानी में भिगोया जाये तो यह लुआबदार हो जाती है। वहमन लाल गाजर की तरह ज्यादा भुर्रीदार होता है। यह सफेद की अपेक्षा ज्यादा कड़ा और भारी होता है, टूटने में भी सख्त होता है। यह बाहर से कथई रंग का या गहरे लाल रंग का होता है।

मात्रा—६ माशा।

गुण-कर्म—इसका विशेष प्रयोग ताकत बढ़ाने, कामशक्ति बढ़ाने और दिल को मजबूत करने के लिए किया जाता है। इससे घातु की कमजोरी, नपुंसकता तथा वीर्य की कमी दूर होती है। प्रायः इसका चूर्ण दूध के साथ पिलाया जाता है। हृदय के रोगों को दूर करता है। इससे शरीर में बसा बढ़ जाती है जिससे कमजोर आदमी मोटा हो जाता है। इससे गुर्दे और मसाने के रोग दूर हो जाते हैं। पत्थरी और खून के रोग को दूर करता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में एक तीखा दानेदार पदार्थ पाया जाता है, जिसे 'लेक्टोन बहनिन' कहा जाता है।

कनैल चौपड़ा आदि ने लिखा है कि इसकी जड़ नपुंसकता को दूर करती पीलिया मिटाती और पत्थरी को दूर करने वाली होती है।

६१. भांगरा

आयुर्वेदीय पर्याय—भृङ्गराज, भृङ्गर, केशराज, केशरंजन।

लैटिन—Wedelia Galendulacea.

विवरण—यह भूमि पर फैलने वाला क्षुप है। इसकी मुख्यतः तीन जातियां होती हैं—(१) श्वेतपुष्प वाला, (२) पीत पुष्प वाला, (३) नीलपुष्प

वाला : इनमें नील पुष्प प्राप्त करना दुर्लभ है। श्वेत पुष्प को लैटिन *Eclipta Alba* कहा जाता है। यह बंगाल, आसाम और बम्बई में पाया जाता है। पीत पुष्प विशेषतः उत्तर भारत में होता है।

इसके पत्ते ३-४ इंच लम्बे, लोमश और कर्कश होते हैं। एक लम्बे, टढ़े डंठल में शिरोभाग से पीतवर्ण का पुष्प निकलता है। इसमें कालीजीरी के बराबर, लम्बे, छोटे बीज निकलते हैं जो एक फूल में करीब २० होते हैं।

भृङ्गराज सारे भारत में विशेषतः जल प्रधान स्थानों में होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, बीज।

मात्रा—स्वरस ६ माशा से १ तोला, बीज चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्ततरस, रूक्ष-लघु-गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। कफवातशामक है। केश्य, त्वच्य, दन्त्य, रसायन, चक्षुष्य, विषघ्न है। यह वाजीकरण, मूत्रल, रक्तवर्धक एवं कुष्ठ नाशक है। इसका प्रयोग दृष्टि-मान्द्य, शिरःशूल, अजीर्ण, यकृत-प्लीहा वृद्धि, पाण्डु, शोथ, कास, श्वास-मूत्रदाह एवं चर्मरोगों में किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें अधिक भाग 'रेजिन' होता है और एक क्षार तत्व पाया जाता है जिसे 'इक्लिप्टिन' कहा जाता है।

डा० आर. एन. क्षीरी ने लिखा है कि यह पित्त निःसारक होता है। बल्य एवं रसायन है। अजवायन के साथ प्लीहा यकृत के रोग, कास, श्वास एवम् प्रतिश्याय में लाभ करता है। इसका प्रलेप, ग्रंथिशोथ, श्लीपद एवं विविध चर्म रोगों में लाभ करता है। एरण्ड तैल के साथ देने से यह पेट के कीड़ों को बाहर निकाल देता है। कर्णशूल में इसका रस टपकाना चाहिए।

भांगरा 'टेरेक्सेकम' की तरह पित्त को शुद्ध करता, बालों को बढ़ाता और आयु को दीर्घ करता है।

६२. सहदेई

आयुर्वेदिक मत—सहदेवी, महाबला

अंग्रेजी—Fleabane

लैटिन—*Vernonia Gineria*

विवरण—इसका मुलायम सा पौधा होता है जो ३ फुट तक ऊँचा होता

१२६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

है। इसका तना पतला होता है और शाखाएँ रोमश होती हैं। पत्ते रोमश, अनेक आकार के होते हैं। जाति भेद से इसमें दो तरह के फूल मिलते हैं श्वेत अथवा नील। इसमें कालीजीरी के समान बीज निकलते हैं। यह बरसात में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, मूल।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, रुक्ष, लघु गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक और ज्वरघ्न प्रभाव है। यह कफवातशामक, निद्राकारक, कुष्ठ नाशक, रक्तशोधक है। इसका आम्यान्तर प्रयोग अथवा बाह्य प्रयोग ज्वर को दूर करता है। इसकी पिण्डी बनाकर फोड़े-फुन्सियों पर बाँधते हैं, जिससे वह ठीक हो जाते हैं।

आधुनिक मत—सहदेवी की उपमा फेनसिटिन से दी जा सकती है, जो दर्द मिटाती, पसीना लाती और ज्वर दूरकर देती है। इसके बीज विष नाशक एवं कृमिनाशक माने जाते हैं।

डा० देसाई का कहना है कि सहदेवी का स्वरस पिलाने से जा गरीर पर लगाने से ज्वर दूर हो जाता है। इसको देने से पसीना आता है और पेशाब की जलन दूर हो जाती है। बवासीर में इसका रस लाभ करता है। इसके फूल नेत्र रोगों के लिए हितकारक है।

डा० कोमान का कहना है कि मलेरिया में जब कि केवल कुनैन से काम न चले तो कुनैन की कम मात्रा में सहदेवी का रस मिलाकर दिया जाय तो अच्छा लाभ होता है।

CONVOLVULACEAE FAMILY त्रिवृतादि वंश

पत्र—एकान्तर (Alternate) हृदयाकृति (Cardiae) उपपत्ररहित

पुष्प—पत्रकोणोद्भूत, फल के आकार का

पुष्पबाह्यकोश स्थायी, पुंकेसर-५

बीज—बीजकोष—द्विकोष्ठी, बीज-४

६३. आकाश बैल

आयुर्वेदीय नाम—अमरवल्ली, आकाशवल्ली यूनानी नाम—अफतीमूनहिन्दी

भृंगराजादि वर्ग

१२७

अंग्रेजी—Dadder

लैटिन—Cuscutareflexa

विवरण— इसकी बेल बबूल, बेर, पीपल, गूलर आदि पेड़ों पर फैली रहती है जिसमें घागे से फैलते रहते हैं जो पीले रंग के मुलायम और बिना पत्तों के होते हैं। यह बिना जड़ की बेल होती है। पेड़ों के तनों पर ही यह जम जाती है। और वही से अपना आहार लेती है। बसन्त में सफेद रंग के गुच्छेदार और खुशबूदार फूल निकलते हैं और गर्मियों में मटर के आकार के फल लगते हैं। जिनमें काले रंग के बीज होते हैं। यह बात ध्यान रखने की है कि इसके बीज बोने से भी बेल पैदा हो जाती है लेकिन ज्यों ही बेल पेड़ों पर चढ़ जाती है फिर उसकी जमीन की जड़ सूख जाती है। बेल का कोई टुकड़ा किसी पेड़ पर डाल दो तो वो फैल जाता है। यह सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बेल, बीज।**मात्रा** बेल का रस १ से २ तोला, बीज चूर्ण १ से ३ माशे।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कषाय रस, लघु, रुक्ष, पिच्छिल गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होती है। कफ पित्तहर, दीपन, पाचन, ग्राही, यकृत उत्तेजक कृमिघ्न, ज्वरघ्न, हृद्य, मूत्रल और स्वेदजनन कर्म करती है।

आधुनिक मत—इसमें Queroetin और Cuxutine नामक तत्व पाये गए हैं। वातरोग नाशक और रक्त शोधक माना है।

६४ कालादाना

आयुर्वेदीय पर्याय—कृष्णबीज

यूनानी—हब्बुन्नील

अंग्रेजी—Pharbitis Seeds लैटिन—Impom Oea Hedera C E A

विवरण— इसकी बेल दूसरे पेड़ों के सहारे बढ़ती है। इसका तना पतला होता है और उस पर पीछे की तरफ मुड़े हुए घने और लम्बे रोम होते हैं। इसके पत्ते ३ से ५ इंच लम्बे सुपारी के आवार के तीन भागों में बंटे हुए रोम होते हैं। नील या गुलाबी रंग के फूल प्रायः एक साथ १ से ५ होते हैं। बीज काले और तिकोने होते हैं। बीज के छिलके को हटाने पर भीतर सफेद रंग का गूदा निकलता है। इसकी उत्पत्ति सारे भारत में होती है। कहा जाता है कि सबसे पहले यह अमेरिका में ही पैदा होता था।

प्रयोज्य अंग—बीज ।

मात्रा—१ से ३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी इसका वर्णन नहीं है । भावमिश्र के समय से इसका प्रयोग होने लगा है । यह मधुर कटु रस, लघु रूक्ष-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है । यह कफ पित्तहर तीव्र रेचक, रक्तशोधक, मूत्रल, आतर्वजनन है । बाह्य प्रयोग में लेखन कर्म करता है ।

आधुनिक मत—इसमें *Pharbitisin* नामक मुख्य तत्व ८% होता है जो जलापा के मुख्य तत्व *Convolvulin* के जैसा काम करता है । इसके विषय में डा० क्षौरी ने लिखा है कि कालादाना दस्तावर, चिकना, सूजन और पेट की विमारियों को दूर करता है । यह बुखार, पेट का अफारा, सिर दर्द और कफ के रोगों में प्रयोग होता है ।

६५. जलापा

Ipomoea purga.

विवरण—यह एक वृटी की जड़ है जो वेढवी कठोर और भारी होती है । इसका आकार हरड़ से मिलता है । इसका रंग बाहर से श्याम और अन्दर से रक्ताभ-सा होता है । इस पर भुर्रियाँ पड़ी होती हैं और कहीं-कहीं दाग भी होते हैं इसका स्वाद पहले कुछ मीठा सा लगता है बाद में वेमजा हो जाता है । यह अमेरिका की पैदावार है और यूनानी तिब्ब में अब प्रयोग की जाती है ।

प्रयोज्य अंग—जड़ ।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ माशा से १॥ माशा तक ।

गुण कर्म—यह कफ आदि दोषों को पतला कर बाहर निकाल देता है । यह एक दस्तावर दवा है । यह अर्दित, एकांग, कब्ज, नजला, जुकाम को दूर करता है । इसे बारीक पीस कर गुलकन्द के साथ खाते हैं और ऊपर से अर्क सौंफ पीते हैं । यह पित्तज स्वभाव वालों को हानि पहुँचाता है ।

आयुर्वेदिक मत—इसमें जलापा रेसिन ६ से १८% तक होता है । इसलिए यह दस्तावर होता है ।

६६ निशोथ

आयुर्वेदीय पर्याय—त्रिवृत, त्रिपुटा, सरल, रेचनी

यूनानी—तुबुंद

त्रिवृतादि वर्ग

१२६

अंग्रेजी—Turpeth

लैटिन—Opercuina Terpethum

विवरण—इसकी वृक्षों पर चढ़ने वाली लता होती है, जिसका तना सीधा तिकोना, रोमवाला होता है और उसके तोड़ने पर दूध जैसी चीज निकलती है। पत्ते कई तरह के होते हैं कुछ अण्डे की शकल के होते हैं तो कुछ कलमी शाक की तरह तिकोने। फूल सफेद रंग के और फल एक इञ्च लम्बे, गोल या अण्डे की शकल के होते हैं। बीज काले रंग के और प्रत्येक फल में चार बीज होते हैं। फूल बरसात में और फल सर्दियों में होते हैं। इसकी जड़ मोटी रक्ताभश्चेत होती है। इसे तोड़ने पर दूध निकलता है। एक निशोथ होती है। जो काली होती है। निशोथ सारे भारत में पंदा होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़ की छाल।

मात्रा—१ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—इसमें कटु, तिक्त, मधुर एवं कषाय रस होते हैं। लघु रुक्ष, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफपित्त शामक है और वातवर्धक है। यह भेदन, रेचन, शोथहर, ज्वरघ्न, लेखन कर्म करता है। विशेषकर कब्ज बवासीर, पीलिया, कास-श्वाम, ज्वर एवं अति-स्थूलता में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में Terpethin नामक एक ग्लुकोसाइड होता है जो रेचक होता है। इसके अलावा इसमें लिगेनिन, अलब्युमिन, लौह और स्टार्च होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि निशोथमूत्र विरेचक है। अकेले या दूसरी दवाओं के साथ दस्त लाने के लिए दी जाती है। हरड़ के साथ निशोथ दी जाए तो गठिया, अर्वाण-मानसिक रोग कुष्ठ को भी लाभ करती है। जलापा की अपेक्षा इसमें दस्तावर गुण अधिक होता है।

६७ विधारा

आयुर्वेदीय पर्याय—वृद्धदारु

यूनानी—शारफ

लैटिन—Argyresia Speciosa.

विवरण—इसकी लता वृक्षों पर चढ़ी होती है। तना सख्त, अंगूठे जितना।

१३०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

मोटा और रुई जैसे सफेद रोम से भरा होता है। पत्ते पान जैसे ४ से १२ इंच लम्बे होते हैं। इसका ऊपरी भाग चिकना और नीचे का रोम वाला होता है। फूल घंटाकार होते हैं और उनकी बाहरी पंखड़ी सफेद और अन्दर की बैंगनी होती है। फल एक इञ्च लम्बा, गोल-सा, कच्चे पर हरा और पकने पर पीला होता है। पकने पर स्वयं फूट जाता है और तीन घार वाले सफेद भूरे रंग के बीज निकलते हैं। यह सब जगह बागों में लगाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, तना और बीज।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा, बीज चूर्ण ५-१० रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त, कषाय रस, लघु-स्निग्ध-गुण, उष्ण वीर्य, और मधुर विपाक है। यह कफवात शामक, मेध्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन, रेचन, हृद्य, कण्ठ्य, शुक्रजनन, प्रमेहघ्न, बल्य और रसायन है। शुक्र दुर्बलता श्वेत प्रदर, क्षय, प्रमेह में लाभ करता है। वातव्याधि में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें अम्ल राल और कषैला द्रव्य होता है। यह ताकत-वर है। गठिया और नर्वस सिस्टम के रोगों को दूर करता है।

६८. मूषाकर्णी

आयुर्वेदीय पर्याय—आखुकर्णी

यूनानी—आजानुलफार

लैटिन—*Ipomea Reniformis*.

विवरण—इसके पौधे जमीन पर फँले हुए होते हैं। वर्षा तथा शरदऋतु में अधिक पैदा होते हैं। इसका तना पतला लाल रंग का गांठों वाला होता है। गांठों की जगह से जड़े निकलती हैं। इसके पत्ते चूहे के कान के आकार के होते हैं। यह दो तरह की होती है, एक खड़ी रहती है और दूसरी बेल की तरह फँली रहती है। यह सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पूरा पौधा।

मात्रा—चूर्ण $\frac{1}{2}$ से २ माशा, रस १ से २ तोला, काढ़ा ५-६ तोला।

आधुनिक मत—डिमक ने लिखा है कि चूहे का विष नाश करती है। कान के व्रण में टपकाई जाती है। यह ज्यादा मात्रा में लेने से विरेचक होती है।

त्रिवृतादि वर्ग

१३१

६६. शंखाहुली

आयुर्वेदीय पर्याय—शंखपुष्पी, क्षीरपुष्पी, मांगल्य, कुसुमा
लैटिन—Coxbolvulus Pluricanlis.

विवरण — इसकी बहुवर्षीय, अनेक शाखा वाली वनस्पति होती है, जिसका तना कुछ चौकोर होता है। इसके पत्ते पतले, लम्बे तीन सिराओं से युक्त, अवृन्त, सूक्ष्मरोम वाले होते हैं। इसमें फूल सफेद रंग के आते हैं और शंख की आकृति के होते हैं। छोटे २ फल शाखाओं के अग्र प्रदेश में लगते हैं। इसकी जड़ सूत्रवत् होती है जो सफेद हरे रंग की होती है। पुष्प भेद से इसकी रक्त और नील दो जातियाँ और होती हैं। यह समस्त भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

म त्रा — स्वरस २-४ तोला, चूर्ण ३-६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कषाय कटु तिक्त रस, स्निग्ध, पिच्छिल-गुरु-सर गुण, शीतवीर्य, मधुर विपाक एवम् मेध्य प्रभाव होता है। यह त्रिदोष नाशक है, विशेषकर वातपित्तशामक है।

यह मेध्य, स्वरहितकारक, सारक, रसायन एवं कांतिदायक है। आयु वर्धक, बलवर्धक, अग्निवर्धक एवं वीर्यवर्धक है। उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, कृमि, उध्वंशकृत्पित्त, अर्दित का नाश करती है। यह दाह, दाह प्रधान ज्वर एवं पित्त के विकारों को दूर करती है। इसके प्रयोग से मूत्र की मात्रा बढ़ती है और पूयप्रमेह एवं मूत्रकृच्छ में लाभ होता है।

आधुनिक मत—डा० आर एन० क्षीरी का कहना है कि यह मृदु रेचक, रसायन, वात नाड़ियों को बलदायक होती है। इसका ताजा रस उन्माद, दुर्बलता, गण्डमाला और ग्रहणी में लाभ करता है।

यह रक्त स्तम्भक द्रव्य है। रक्तवमन को रोकने के लिए इसे उत्तम औषधि कहा जाता है। यह शुक्र की दुर्बलता एवं गर्भाशय की दुर्बलता दूर करने वाला है।

१३२

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

CONIFERAE FAMILY

देवदारवादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—सरस, पतले नोकदार, संयुक्तकोश

७०. चिलगोजा

आयुर्वेदीय पर्याय—निकोचक

यूनानी नाम—हब्ब, सनोबार किवर

अंग्रेजी—Edible Pine

लैटिन—Pinus Gerardiana

विवरण—यह एक प्रकार के स्त्री जाति के देवदारु वृक्ष का फल है जो लगभग एक इंच लम्बा, लम्बगोल, एक तरफ से कुछ चपटा और घूसर वर्ण का होता है। ऊपर का छिलका पतला और भंगुर होता है। इसके अन्दर सफेद चिकनी-सी गिरी निकलती है। यह रोम, ईरान, अफगानिस्तान एवम् हिमालय प्रदेश में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फल की गिरी।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर रस, गुरु-स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह वृष्य, वृंहण, वल्य एवं रक्त प्रसादन है। यह धातुओं की वृद्धि करता है। यह वातशामक एवं कफपित्तवर्धक कहा गया है। यह स्नेहन करता एवं स्तन्यजनन होता है।

शीतकाल में साधारण रूप से इसे शक्ति के लिए सेवन किया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी गिरी में आघे के लगभग तैल होता है। इसके अतिरिक्त स्टार्च, अलब्युमिनॉयड पाया जाता है।

७१ चीड़

आयुर्वेदीय पर्याय—सरल, पीतवृक्षां, सुरभिदारुका, धूप वृक्ष

अंग्रेजी—Long Leaved Pine.

लैटिन—Pinus Longi Folia

विवरण—इसके पेड़ एकदम सीधे और १००-१२५ फुट ऊँचे होते हैं। इसकी त्वचा १-२ इंच मोटी, ऊपर से घूसर वर्ण की और अन्दर से रक्त वर्ण की होती है। इसकी लकड़ी पीत रक्त मिश्रित होती है और उसमें सुगन्ध आती है। इसके पत्तों का गुच्छा होता है जो नीचे को झुका हुआ होता है

देवदार्वदि वर्ग

१३३

और ५-१२ इंच लम्बा होता है। इसमें पत्र सूच्याकार होते हैं। फूल $\frac{1}{2}$ इंच लम्बे होते हैं। फल पत्तों के गुच्छे के मध्य में रहता है। जो काष्ठमय, गोलाकार होता है। बीज $\frac{1}{2}$ से १ इंच लम्बा होता है। यह हिमालय प्रदेश में ३-६ हजार फुट की ऊँचाई तक ज्यादा पैदा होता है।

चीड़ के तने पर क्षत कर देने से एक निर्यास निकलता है जो गंधाबिरोजा कहलाता है। गन्धा बिरोजा से परिस्रवण विधि के द्वारा तैल निकाला जाता है जो 'तारपीन का तैल' कहलाता है।

प्रयोज्य अंग—काष्ठ, गन्धाबिरोजा और तैल।

मात्रा—चूर्ण १-३ माशा, गंधाबिरोजा ६-१२ रत्ती, तैल ३-१० रत्ती।

आयुर्वेदिक मात्रा—कटु तिक्त, मधुर रस, लघु तीक्ष्ण, स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक है। वातकफशामक है। मस्तिष्क तथा नाड़ियों को उत्तेजना देता है। यह दीपन, अनुलोमन, कृमिघ्न एवं रक्तरोधक होता है। यह कफनिःसारक, मूत्रजनन एवं श्लेष्मपूतिहर है। त्वचा के रोगों को दूर करता है। शोथ, कण्डू, ब्रण, कृमि, कुष्ठ में लाभ करता है। यह कर्ण, कण्ठ अक्षि रोगों का नाश करता है। दाह, कास एवं मूर्च्छा में लाभ करता है।

आधुनिक मत—गंधाबिरोजा में २० प्रतिशत तैल प्राप्त होता है। इसमें Pinene Limonene Carene Longifolene नामक तत्व होते हैं।

डा० देसाई ने बताया है कि गन्धाबिरोजा खाने के पश्चात् मुंह में पानी छूटता है, पेट में कुछ विशेषानुभूति होती है, उद्गार आते हैं और वाता-नुलोमन होता है। नाड़ी भरपूर चलने लगती है, श्वासोच्छ्वास बढ़ता है, शरीर में उष्णता बढ़ती है। मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। यदि अधिक मात्रा में गन्धाबिरोजा खा लिया जाए तो वमन एवं रेचन होता है नाड़ी क्षीणता, जी घबराना, शरीर का शीत होना, मूत्र में जलन होना एवं रक्तस्राव होना एवं शरीर का शिथिल होना होता है।

इसके तैल का एनिमा एवं पेट पर मालिश करना बहुत लाभ करता है। थोड़ी शक्कर और पानी के साथ इसका तैल दिया जाए तो आंतों के कृमि, आंतों से रक्तस्राव एवम् रक्तातिसार ठीक हो जाता है।

श्वास संस्थान के रोगों में तैल की मालिश, सूँघना एवं मुख द्वारा सेवन करना लाभ करता है।

मूत्र मार्ग के लिए यह एक शोधक द्रव्य है। त्वचा के रोगों को दूर करता है।

७२. तालीसपत्र

आयुर्वेदीय पर्याय—तालीस, पत्राढ्य, घात्रीपत्र

अंग्रेजी—Silver Fir.

लैटिन—Adies Webbiana

विवरण—तालीस पत्र के विषय में अभी तक एक मत नहीं है। ऊपर जो लैटिन नाम दिया है वह बंगाल में प्रयोग होने वाले तालीस पत्र का है। इसके अतिरिक्त, नेपाल में प्रसिद्ध तालीस पत्र का प्रयोग होता है, उसे रायली ने Rhododendron Lepidotum कहा है। मध्यप्रदेश में प्रयोग होने वाले तालीस पत्र को डिमक ने Taxus Baccate कहा है। इसे 'धुनेर' कहते हैं। यह विषाक्त होता है।

बंगाल के तालीस पत्र के वृक्ष १५०-२०० फुट तक ऊँचे होते हैं। यह हरा रहता है। नई शाखाएँ नीचे को झुकी रहती हैं। इसके पत्ते १-२ इंच लम्बे होते हैं। यह रेखाकार और नताग्र होते हैं। अग्रभाग पर दो तीक्ष्ण और कठोर नोकें होती हैं। इसका फल बैंगनी या नीले रंग का होता है। यह ६ इंच लम्बा होता है और लम्बगोल होता है। बीज १/२ से १ इंच लम्बे और पक्षयुक्त होते हैं।

तालीसपत्र, भूटान, कुमाऊँ, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्ते।

मात्रा—चूर्ण ४ से ८ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। वातकफशामक है। रेचन, दीपन, अनुमोलन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न और बलवर्धक है। यह अग्निमान्द्य, गुल्म, अरूचि, कास, हिकका, श्वास एवं क्षय में लाभ करता है। छर्दि में इसका प्रयोग कराया जाता है। सुश्रुत संहिता में इसे शिरोविरेचन की उत्तम दवा कहा गया है।

आधुनिक मत— इसके पत्तों में एक स्फटिकीय क्षारतत्व टैक्सिन (Taxine) होता है। इसके अलावा उड़नशील तैल होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने बताया है कि तालीसपत्र आक्षेप निवारक है। यह श्वास, रक्तपित्त, अपस्मार एवं अन्याय आक्षेपमूलक पीड़ाओं में प्रयोग होता है।

यह द्रव्य ज्वर में विशेष कार्य करता है। वातकफज्वर के लिए उत्तम है। इसका लेप करने से सिर का दर्द मिट जाता है।

७३ देवदारु

आयुर्वेदीय पर्याय— देवदारु, भद्रदारु, सुरभुरूह **यूनानी**— शजर तुलजीन

अंग्रेजी— Deodar

लैटिन— Cedrus Deodara

विवरण— इसका वृक्ष बहुत ऊँचा, लगभग २५० फुट ऊँचा होता है। तना सीधा मोटा और लगभग ३६ इंच के व्यास का होता है। इसकी शाखाएँ नीचे की तरफ झुकी हुई होती हैं। इसकी छाल मोटी और फटी सी होती है, इसमें हरे रंग के, नौकीले गोलाई लिए हुए लम्बे पत्ते होते हैं। प्रत्येक में १/४ इंच लम्बा बीज निकलता है। यह जाति भारी और चिकनी होती है तथा घूप के नाम से बाजार में बिकती है। यह हिमालय में ७ से ६ हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

प्रयोज्य अंग— लकड़ी और तैल

मात्रा— चूर्ण १ से ३ माशा, तैल २ से ४० बूँद

आयुर्वेदिक मत तिक्त, कटु रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। वातकफ नाशक, दीपन, पाचन, अनुलोमन और कृमिघ्न है। हृदयोत्तेजक, शोथनाशक, सूत्रजनन स्वेदजनन स्तन्यशोधन, लेखन एवं हिक्का निग्रहण है। सन्धि वात एवं दूसरे रोगों में इसका लेप लगाते हैं और इसका तैल त्रणों को भरता है। विशेष कर वात रोगों को दूर करता है।

आधुनिक मत— इसमें एक गाढ़े रंग का तैल एवं एक विशेष अम्ल राल पाया जाता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह वातनाशक, पसीना लाने वाला और

१३६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

अधिक मूत्र लाने वाला है। यह बुखार, अफारा, सूजन, पत्थरी को दूर करता है। हल्दी और गुग्गल के साथ इसका लेप सूजन मिटाता है इसका तैल पुराने चर्म रोग एवं कुष्ठ में प्रयोग किया जाता है। यह व्रणों को भरता है।

७४. हाऊबेर

आयुर्वेदीय पर्याय—हवुषा

यूनानी—अबदल

अंग्रेजी—Juniper

लैटिन—Juniperus Communeis

विवरण—इसका पौधा लगभग ४ फुट ऊंचा होता है। इसके पत्ते भांग के पत्तों की तरह होते हैं जो रंग में लाल होते हैं। इसमें भूरे लाल रंग का गोल और छोटे बेर के बराबर सुगन्धित फल लगता है। एक फल में ३ या उससे ज्यादा बीज निकलते हैं। हाऊबेर की दो जातियाँ बताई गई हैं। एक छोटा और दूसरे बड़ा। बड़े हाऊबेर के पत्ते और फल छोटे से कुछ बड़े होते हैं। बड़े हाऊबेर का लैटिन नाम Juniperus Marcropoda है। यह नेपाल, भूटान, ईरान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा—३ से ५ मासे।

गुण—कटु, तिक्त रस, मुरु, रुध्र, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक होता है।

नाड़ी संस्थान का उत्तेजक है। पक्षाघात आदि वायु के रोगों में प्रयोग करते हैं। दीपन, अनुलोमन और कृमिनाशक है। दिलकी कमजोरी में, खांसी और स्वास में लाभ करता है। इसका लेप करने से सूजन, दर्द, त्वचा के रोग और व्रणों का नाश होता है। यह आर्तवजनन और मूत्रजनन होता है। ज्यादा मात्रा से प्रयोग करने से गर्भपात हो जाता है। और पेशाब में लून आने लगता है। यह औरतों के लिकोरिया की बिमारी में लाभ करता है।

आधुनिक मत— इसके फल में उड़नशील तैल, Dextroes ५०%, राल १०% और वसा, मोम, Acetic Acid होते हैं। इसमें Juniperin नामक एक विशेष तत्व पाया जाता है।

CORNACEAE FAMILY

अंकोटादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—पत्रदण्ड के दोनों ओर पत्रक जोड़ों में, अग्रभाग में एक पत्रक

पुष्प—गुच्छों में, पीत-श्वेतवर्ण के

पुष्पवाह्यकोश (Calyx) एवं पुष्पाभ्यन्तर कोश
(Corolla) के दल ५-१०, पुंकेसर २०-३०

फल—कवचयुक्त

बीज—तैलयुक्त

७५. अंकोल

आयुर्वेदीय पर्याय—अंकोट, दीर्घकील, रेची, गन्धपुष्प, पीतसार ताम्रपल ।

अंग्रेजी—Alangy

लैटिन—Alangium Lamarckii

विवरण—१०-२० फुट ऊंचा वृक्ष होता है जो जंगलों में बिना प्रयत्न के ही हो जाता है । इसकी छाल $\frac{1}{2}$ इंच मोटी और घूसर रंग की होती है । शाखाएं सफेद रंग की और अग्रभाग में तीक्ष्ण होती हैं । पत्ते ३ से ६ इंच लम्बे और १ से २ इंच चौड़े होते हैं । पत्ते के डंठल के दोनों तरफ पत्तियां होती हैं और अग्रभाग में केवल एक पत्ती होती है । गुच्छों में पीले-सफेद रंग के सुगन्धित पुष्प निकलते हैं जो बसन्त में निकलते हैं । लीची के समान फल होते हैं जो चिकने होते हैं । इन में लाल रंग के बीज निकलते हैं । इनमें तैल होता है ।

अंकोल पहाड़ी इलाकों में पाया जाता है । कोंकण देश में, चीन, मलाया लंका और फिलिपाइन्स में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—बीज, मूलत्वक् ।

मात्रा—३ से ५ रस्ती वसनार्थ ३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त-कषाय रस, लघु स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर गुण, ज्वरघ्न, कटु विपाक एवम् विषघ्न प्रभाव होता है । वातकफ शामक होता है । यह रेवक, कृमिनाशक एवम् शूल शामक होता है । यह जन्तु विष नाशक होता है । बलकारक, शोथ, विसर्प, रुधिर विकार, आमदोष, ग्रह दोषों को

दूर करता है। मूषा के विष एवम् सर्प विष की उत्तम औषध है। अधिक मात्रा में प्रयोग कराने से वामक होता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में 'एलेञ्जीन' नामक क्षार तत्व होता है।

डा० मुडीन शरीफ ने लिखा है कि इसकी छाल को पचास ग्रेन की मात्रा में दिया जाए तो यह एक उत्तम वामक औषध जैसा कार्य करती है। अल्प मात्रा में अरोचक एवम् ज्वरघ्न है। चर्म रोगों पर कर्म करती है। लगातार प्रयोग करने से इसका प्रभाव चर्म रोगों पर आक से अच्छा होता है।

यह इपिकाकुआना की उत्तम प्रतिनिधि है। यह उसके जितने ही गुण करती है। किन्तु ग्रामातिसार में लाभप्रद नहीं। ५-१० ग्रेन की मात्रा में इसकी छाल का चूर्ण ज्वर में पसीना लाकर लाभ करता है।

ऐसा देखा गया है कि इसमें प्राप्त होने वाले विशेष तत्व ऐलेञ्जिन सल-फेट' का सिरा में अन्तःक्षेप करने से रक्तभार कम हो जाता है किन्तु यह थोड़े समय के लिये होता है।

इसके तेल की ५ बूंद शक्कर में मिलाकर दूध में दी जाए तो यह बल बढ़ाता है। प्रमेह-निर्वलता, भ्रम में लाभ करता है।

CRUCIFERAE FAMILY

राजिकादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—प्रायः मूलोद्भूत एवं एकान्तर

पुष्प—पुष्पवाह्य कोश (Calyx) के दल—४

पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) के दल ४

इसकी व्यवस्था X निशान जैसी)

बीज—बीजकोश अधःस्थ

७६. खूबकलां

अंग्रेजी—Hedge Mustard

लैटिन—Sisymbrium Irio

विवरण—यह गेहूं आदि के खेतों में पैदा हो जाती है। इसका पौधा सरसों के पौधे से मिलता-जुलता होता है। इसके बीज सुखे पीले रंग के और

खसखस की तरह छोटे होते हैं। इन बीजों को पानी में भिगोने से लेस हो जाता है।

प्रयोज्य अंग—बीज।

मात्रा—३ से ६ माशा।

गुण—यह भूख बढ़ाती, कामेन्द्रिय को ताकत देती, सूजन मिटाती और वातनाशक होती है। आमाशय को ताकत देती है। और वर्ण को निखारती है। इसका लेप गठिया की सूजन, औरतों के स्तनों की सूजन और आदमियों के श्रृङ्खकोषों की सूजन को मिटाता है।

यह फेफड़े के रोग पुरानी खांसी और बुखार में लाभ करती है। चेचक मोतीजीरा और खसरा में प्रयोग करते हैं।

आधुनिक मत—कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह उत्तेजक कफ निकासने वाली और ताकत देने वाली है।

डा० वामन देसाई भी इसे खांसी और श्वास में लाभकारी बताते हैं।

७७. चनसूर

आयुर्वेदीय नाम—चन्द्रशूर, चन्द्रिका, वासपुष्पा

यूनानी—हरूफ

अंग्रेजी—Common Cress

लैटिन—*Lepidium Sativum*

विवरण—इसका पौधा १ से २ फुट ऊँचा होता है। पत्ते कटे-फटे घनिए के पत्तों जैसे होते हैं। इसमें छोटे और सफेद रंग के फूल आते हैं। इसके बीज लाल रंग के नौकाकार होते हैं जिनको पानी में भिगोने से लेस बन जाता है। यह भारत और तिब्बत में पैदा होते हैं।

प्रयोज्य अंग—बीज।

मात्रा—१ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु, स्निग्ध पिच्छिल गुण, कटु विपाक उष्ण वीर्य होते हैं। वातकफ शामक हैं। दीपन, अनुलोमन, ग्राही, शूलप्रशमन रक्तशोधक, हिक्का निग्रहण, कफ निःसारक, मूत्रल, वृष्य, बल्य है। आतर्वजनन एवम् स्तन्यजनन होते हैं। वातव्याधि में लाभदायक होता है। इसका लेप कटिशूल, पाश्चिशूल व सन्धि वात में लाभ करता है।

१४०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

आधुनिक मत—इसके बीजों में उड़नशील सुगन्धित तैल होता है। पाञ्चांग में आयोडिन, लौह, फास्फेट, पोटैश, गन्धक होता है।

७८. तोदरी

अंग्रेजी—Pepper Grass

लैटिन—*Lepidium Iberis*

विवरण—इसका काँटे वाला छोटा पौधा होता है। इसके पत्ते लम्बे और फूल बैंगनी लाल रंग के होते हैं। इसमें छोटी २ फलियाँ लगती हैं जिन में मसूर के दाने के बराबर लेकिन उससे कुछ छोटे और चपटे बीज होते हैं। इनको पानी में भिगोया जाए तो लेस हो जाता है। रंग भेद से यह तीन प्रकार की बताई गई है—(१) सफेद, (२) पीली, (३) लाल। इनमें पीली तोदरी ज्यादा लाभ करती है। यह साइबेरिया, योरोप और ईरान में पैदा होने वाली चीज है। अब पंजाब में भी पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला।

गुण-कर्म—यह काम शक्ति बढ़ाती, वीर्य बढ़ाती, औरतों का दूध बढ़ाती, आमाशय को ताकत देती, शरीर को मोटा करती, कफ को बाहर निकालती और सूजन को मिटाती है। इसको चूर्ण कर दूसरी दवाओं के साथ मिला दूध से पिलाते हैं। इसकी चटनी (अबलेह) खांसी, स्वास में लाभ करती है। फुफसुस और आंतों को साफ करती है। यह शोथ को दूर करने के लिए प्रयोग की जाती है। यह घबराहट पदा कर सकती है। इसके लिए इसको उबाला देना चाहिए।

आधुनिक मत—इसके बीजों में उड़नशील तैल, तिक्त सत्व और गन्धक होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह बीज कामशक्ति बढ़ाते, कफ निकालते उत्तेजना देते और विष का नाश करते हैं।

७९. मूली

आयुर्वेदिक नाम—मूलक,

यूनानी—फुजल,

अंग्रेजी—Radish.

लैटिन—*Raphanus Sativus*.

विवरण—इसका पौधा छोटी सरसों जैसा होता है। पत्ते लम्बे, किनारे

राजिकादि वर्ग

१४१

कटे हुए और पत्ते की लकीरें लाल या बैंगनी रंग की होती हैं। फूल सफ़ेद या पीले आते हैं और फल सरसों जैसा $\frac{1}{2}$ से २ इंच लम्बी फली जैसा होता है। इसके बीज सरसों से बड़े और बेडौल होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़ और बीज।

मात्रा—रस २ से ४ तोला, बीज का चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—यह कटु रस, लघु-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। रेचन, दीपन, पाचन अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, भेदन होती है। कफनिस्सारक, मूत्रल, आतर्वजनन और अश्मरी भेदन तथा ज्वरघ्न है। इससे सिद्ध तैल आ अभ्यंग अथवा इसके उपनाह से सूजन मिटती है।

आधुनिक मत—इसमें एक स्थिर तेल, एक सुगन्धित तेल, एक उड़नशील तेल होता है। तेल, में गन्धक पाया जाता है।

८०. राई

आयुर्वेदीय पर्याय—राजिका, आसुरी, तीक्ष्ण गन्धा।

यूनानी—सरदल

अंग्रेजी—Brownmustard

लैटिन—Brassica Juncea

विवरण—इसका पौधा सरसों के पौधे की तरह २ से ३ फुट ऊँचा होता है। पत्ते लम्बे, फूल गुच्छों में पीले रंग के, बीज भूरे रंग के सरसों से कुछ छोटे होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होती है। कफवात शामक, दीपन, पाचन, शूलहर, कृमिघ्न, स्वेदजनन है। चर्म रोगों पर लेप करते हैं और उष्णता एवम् उत्तेजना पहुँचाने के लिए इसे लेप के रूप में प्रयोग करते हैं ज्यादा मात्रा से दाह, प्यास करती है और वमन हो जाती है।

आधुनिक मत—बीजों में २० से २५ प्रतिशत स्थिर तैल होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि इसका बाह्य प्रयोग पुल्टिश के रूप में बहुत लाभ करता है। दर्द-सूजन मिट जाती है। विष को नष्ट करने के लिए इसको ज्यादा मात्रा में खिलाकर वमन कराते हैं।

१४२

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

८१. सरसों

आयुर्वेदीय पर्याय—सर्षप, कटु स्नेह, तन्तुभ

यूनानी—सर्षफ

अंग्रेजी—Rape

लैटिन—Brassica Alba

विवरण—इसका वर्षायु क्षुप १ से ३ फुट ऊँचा होता है, जिसका तना सीधा और पत्तियाँ एक से डेढ़ फुट लम्बी होनी हैं। फूल गुच्छों में पीले रंग के आते हैं। फल छोटे, गोल होते हैं जिनमें से पीले या लाल रंग के अनेक बीज निकलते हैं। यह सारे भारत में होती है। लाल दाने वाली सरसों को Brassica Nigra कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—बीज।

मात्रा—३ से ५ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, स्निग्ध गुण (शाक का गुण तीक्ष्ण-रूक्ष है) उष्ण वीर्य व कटु विपाक है। यह कफ वात नाशक एवम् पित्त वर्द्धक है। दीपन, विदाही एवं कृमिघ्न है। यह मूत्रजनन, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, और गर्भाशयोत्तेजक है, कुष्ठघ्न है। दर्द, शोथ, कण्डु, कुष्ठ तथा साधारण दुर्बलता में इसके तैल का अभ्यंग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें २३ से २५ प्रतिशत स्थिर तैल होता है। इसमें सिनाल्बिन, सिनापिन, लेसिथिन, माइरोसिन होते हैं। इसमें पोटेशियम, मैग्नेशियम और कैल्शियम के नमक पाए गए हैं।

CUCURBITACEAE FAMILY कोशातक्यादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः लता जाति, काण्ड—गोल या कोणयुक्त**पत्र**—एकान्तर (Alternate) प्रायः खर, हृदयाकृति (Cardiac)

दन्तुर (Dentate)

पुष्प—एकलिंगी, पीत अथवा श्वेत।

पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश (Calyx and Corolla) के

दल—५ परस्पर मिले हुए

पुं केशर—३ परस्पर मिले हुए

फल—मांसल,

कोशातक्यादि वर्ग

१४३

द२. इन्द्रायण

आयुर्वेदीय पर्याय—इन्द्रवारुणी, ऐन्द्री, ग्वाक्षी, चित्र
 अंग्रेजी—Colocyuth लैटिन—Citrullus Colocynthis

विवरण—इसकी लता रोमश और कठोर होती है पत्त कटे-फटे, तरबूज के पत्तों की तरह के, २ से ३ इञ्च लम्बे होते हैं। पत्ते के डंठल के पास से फूल और घागा सा निकलता है। फूल पीले रंग के होते हैं। गोल फल होता है जो चिकना होता है और कच्चे का रंग हरा और पकने पर पीला रंग हो जाता है फूल और फल सर्दियों में आते हैं। फल में काले रंग के बीज निकलते हैं। यह सारे भारत में एवं द्रावनकोर में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, फूल।

मात्रा—फल चूर्ण १ से ४ रत्ती जड़ चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु-रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त हर है। रेचन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोध-हर है। इसकी जड़ विशेषकर प्रमेहघ्न, ज्वरघ्न, तीव्र गर्भाशय संकोचक है। मूल को योनि में रखने से मासिक स्राव होता और गर्भपात हो जाता है। उदररोग, गुल्म, कामला, आमवात में लाभ करता है, फल का छिलका वामक और कफ निःसारक है।

आधुनिक मत—इसमें Colocynthin नामक तत्व विशेष रूप से पाया जाता है। Pectin भी होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि इसके चूर्ण को सूँघने से छींके आती हैं। वात रोग और बालकों के जिगर तिल्ली में इसकी जड़ देते हैं। वायु के दर्द को मिटाती और कुचले के साथ लेप करने से फाड़े को पका देती है।

द३. कड़वी तोरई

आयुर्वेदीय पर्याय—इक्ष्वाकु, कटुतुम्बी, महाफला,
 अंग्रेजी—Bitter Gourd लैटिन—Lagenaria Vulgaris

विवरण—इसकी बेल खेतों में फैली रहती है। इसके पत्ते पांच कोण वाले होते हैं और ६ इञ्च व्यास के होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल आते

१४४

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

हैं। यह फूल ६ इंच लम्बे डंठल में लगे रहते हैं। इसमें तोरई के जैसा फल लगता है। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, बीज, पत्र

मात्रा—स्वरस $\frac{1}{2}$ व १ तोला, बीज चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु-तिक्त रस, लघु-रूक्ष, तीक्ष्ण गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक होती है। यह त्रिदोषनाशक होती है। यह तीव्र धामक एवं विरेचक होती है। कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न एवं विषघ्न है। कास, श्वास, ज्वर, छदि, विष, मूर्च्छा में लाभ करती है। कुष्ठ एवं शोथ में लाभ करती है। कृमिनाशक एवं कुष्ठ व्रण का शोधन करती है।

आधुनिक मत—इसके फल में सैपोनिन, अलब्युमिनायड और कार्बोहाइड्रेट होता है।

अनुसन्धानों से पता चला है कि यह मलेरिया में लाभ करती है। मलेरिया के कारण उत्पन्न यकृत प्लीहा वृद्धि, कामला, शोथ, जलोदर में यह लाभ करती है।

इसकी तुलना 'इपिकाक' से की जाती है। इसके बीज ५ से १० ग्रैन की मात्रा में कफनिःसारक होते हैं और २० से ३० ग्रैन की मात्रा में वामक होते हैं।

केमान का मत है कि इसका क्वाथ श्वास के रोगियों को बहुत लाभ करता है। चर्म रोगों में लाभ करता है।

८४. करेला

आयुर्वेदीय पर्याय—कारवैल्लक, कटिल्ला मुषवी, कंटफला

यूनानी—उलाहिभार

अंग्रेजी—Bitter Gourd

लैटिन—Mormordia Charantia

विवरण—इसकी वर्षायु लता होती है। इसके पत्ते गोलाकार, १-३ इंच व्यास के, रोमश, अनेक असमान भागों में विभक्त होते हैं। पीले रंग के फूल आते हैं। इसका फल हरे रंग का, ६ इंच लम्बा होता है जिस पर उभार होते हैं। इसमें $\frac{1}{2}$ इंच लम्बे चपटे बीज होते हैं। यह सारे भारत में पैदा

कोशातक्यादि वर्ग

१४५

होता है। इसकी एक और जाति होती है जो करेन्डी कही जाती है, उसका लैटिन नाम *Momrodia Muricata* होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस १ से ३ तोला।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु रूक्ष, गुण, उष्णवीर्य, कटु विपाक होता है। यह त्रिदोषनाशक है। रोचक, दीपन, पाचन, भेदन, कृमिनाशक है। रक्त शोधक, शोथहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, विषघ्न एवम् कुष्ठघ्न होता है।

रक्तपित्त, पाण्डु, श्वास, कास, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, अर्श, कृमि, व्रण एवं मेदरोग नाशक होता है।

आधुनिक मत—इसके शुष्क फल में विलेय कार्बोहाइड्रेट होता है। साथ में अलव्युमिनाइड एवं भस्म होती है।

कर्नल चोपड़ा के अनुसार यह वमनकारक एवं विरेचक है। वमनार्थ १० तोला रस देना चाहिए।

यह वाजीकरण है एवं सुजात में लाभ करता है।

८५. खरबूजा

Cucumis malo

विवरण—इसकी लता होती है। यह एक प्रसिद्ध द्रव्य है जिसको सब जानते हैं। सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, बीज।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक है। मूत्रल, रेचक, वृष्य, वातपित्त शामक होता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में तैल होता है उस तैल में Fatty acids होते हैं।

इसके बीज शीतल, ताकतवर और पेशाब साफ लाने वाले होते हैं। इसका गुद्दा पेशाब साफ लाता और पुराने एग्जिमा में लाभ करता है।

८६. खोरा

आयुर्वेदीय पर्याय—कंठवीफल, सुधावार, त्रपुष

अंग्रेजी—Common cucumber

लैटिन—Cuchmis Satiba

विवरण—इसकी वर्षायुलता रोम वाली होती है। २-३ इञ्च लम्बे डंठल में पंचकोण गोल पत्ते लगे होते हैं जिनका व्यास ३ से ६ इञ्च लम्बा होता है। फूल पीले रंग का और फल हरे पीले रंग के ४ से १२ इञ्च लम्बे और १ से १॥ इञ्च चौड़े होते हैं। इसमें सफेद रंग के लम्बे चपटे बीज होते हैं। सारे भारत में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल, बीज।

मात्रा—रस २ से ५ तोला, बीज का चूर्ण १ से ३ माशा।

अयुर्वेदिक मत—मधुर रस, लघु, रुक्ष गुण, शीत बीर्य और मधुर विपाक होता है। पित्तशामक है। वातकफवर्धक है। मूत्रल है, दाहप्रशामक है और वलकारक है। अनिद्रा, शिरशूल में बीजों का तैल लगाते हैं। रक्त-पित्त मूत्रकृच्छ में दिया जाता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में स्थिर तैल, स्टार्च, राल और शर्करा होती है। पथरी के लिए बहुत उत्तम द्रव्य है।

८७. तोरई

आयुर्वेदीय पर्याय—कोशातकी, मृदंग फल।

अंग्रेजी—Ribbed luffa

लैटिन—Lnffa amara

विवरण—इसकी लता होती है जिसके पत्ते हलके हरे रंग के और पाँच कोने वाले होते हैं। फूल हलके पीले रंग के होते हैं। फल लम्बा, मुलायम होता है। गुदा सफेद रंग का होता है और बीज घूसर वर्ण के होते हैं।

तोरई की दो जातियाँ होती हैं—कड़वी और मीठी। मीठी शाक में काम आती है—कड़वी दवा में प्रयोग की जाती है। कड़वी जंगलों में पाई जाती है, विशेषकर बंगाल में पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—फल, पुष्प, पत्र।

मात्रा—स्वरस ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तोरई तिक्त कटु रस, लघु-रुक्ष-तीक्ष्ण गुण, उष्ण बीर्य और कटु विपाक होती है।

इसके बीज वामक एवं विरेचक होते हैं। दीपन, हृद्य एवं कुष्ठण है।

कोशातक्यादि वर्ग

१४७

कास, श्वाम, ज्वर, कृमि, रक्तपित्त, प्रमेह, कुष्ठ में प्रयोग होते हैं। शिरोरोग नाशक है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में 'लूफिन' नामक कटु तत्व होता है। कर्नल चौपड़ा इसे वमनकारक, विरेचक, मूत्रल एवं कफनिःसारक बताते हैं।

डा० देसाई का कहना है कि इसके पत्तों का मरहम व्रणरोपण होता है। पत्तों को पीसकर बवासीर पर लगाया जाता है।

८८. परवल

आयुर्वेदीय पर्याय—पटोल, कूलक, कर्कशच्छद, राजीफल।

लैटिन—*Trichosanthes Cucumerina*.

विवरण—इसकी लम्बी सी लता होती है पत्ते हृदयाकार होते हैं और नौकदार एवं कर्कश होते हैं। सफेद रंग के फूल आते हैं फल लम्बे गोल होते हैं जिन पर सफेद रंग की धारियां होती हैं। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत तिक्त रस, लघु-रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक होता है। त्रिदोष नाशक है। रोचक, दीपन, पाचन, रेचन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, विषघ्न होता है।

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कामला, अर्श, कृमि रोग, कास, रक्तपित्त, कुष्ठ, कण्डू एवम् ज्वर नाशक होता है। यह वर्ण के लिए हितकारक होता है।

विशेष गुण बताते हुए कहा गया है कि पटोल पत्र पित्त नाशक, उसकी नाड़ी कफ नाशक एवम् मूत्र विरेचक होता है।

इसके बाह्य प्रयोग से व्रण रोपण एवम् व्रण का शोधन होता है। बालों के लिए हितकारक है।

८९. पेठा

आयुर्वेदीय पर्याय—कूष्माण्ड, पुष्प फल, वृहत् फल, सोमका

यूनानी—महदवा

अंग्रेजी—White Pumpkin

लैटिन—*Benincasa Hispida*

१४८

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

विवरण—इसकी वर्षायु लता होती है। इसके पत्ते लम्बे डंठल में लगे हुए सफेद रंग के, सख्त और ४, ६ इञ्च घेरे के होते हैं। इसमें फूल बड़े डंठल में लगते हैं और फिर बड़े २ सफेद रंग के फल लगते हैं जिसमें सफेद रंग के चपटे बीज निकलते हैं सारे भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल और बीज का तैल।

मात्रा—फल १ से २ तोला, बीज तैल १ से २ तोला (बाहरी प्रयोग)

आयुर्वेदिक मूल—मधुर रस, लघु, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर विपाक और मध्य प्रभाव वाला होता है। यह वातपित्तशामक, निद्राजनन, अनुलोमन, तृष्णा-निग्रहण, रक्त पित्त शामक है। मूत्र जलन, दाह-संताप नाशक एवम् बृंहण है। इसके बीज कृमि नाशक हैं। यह उन्माद, उरक्षत, राजयक्ष्मा, कास, मूत्राघात, अश्मरी और दाह में प्रयोग होता है।

आधुनिक मूल—इसमें स्टार्च, कुर्बिटोन, मायोसिन, वाइटेलिन आदि तत्व होते हैं। बीजों में तैल होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि इसका ताजा रस शक्कर और केसर के साथ देने पर उन्माद, मृगी, मधुमेह और वायु दर्द में लाभ होता है।

डिमक ने मधुमेह की श्रेष्ठ औषध माना है।

६०. बन्दाल

आयुर्वेदीय पर्याय—जीगूतक, देवदाली।

अंग्रेजी—Bristly Luffa.

लैटिन—Luffa Echinata

विवरण—इसकी फैलने वाली बेल होती है जिसका पतला सा तना होता है और पञ्चकोण होती है। इसके पत्ते १ से २ इञ्च लम्बे और रोमश होते हैं। छोटे २ फूल सफेद रंग के होते हैं। फल छोटे, गोल, पीले रंग के होते हैं जिन पर कांटे होते हैं। इनमें छोटे २ बीज निकलते हैं। यह गुजरात, बम्बई, सिन्ध और बंगाल में होती है। इसकी पीले फूल वाली एक और जाति होती है।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा—५ से १० रस्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक होता है। त्रिदोष नाशक है। यह दीपन, वामक, रेचक, ज्वरघ्न एवम् कुष्ठघ्न है।

ज्वर, श्वास, हिक्का, कास, पाण्डु, शोथ, कामला, कृमि, कुष्ठ एवम् विष का नाश करती है।

वमन—विरेचनार्थ इसकी मात्रा १ से २ माशा होती है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में एक तैल होता है। पञ्चांग में एक तिक्त तत्व कोलोसिन्थिन के समान गुण करने वाला है।

इसके फल को पीस कर बवासीर के मस्सों पर लगाने से लाभ होता है। कामला, पीनस, अपस्मार, कफज शिरो रोगों में इसका नस्य देते हैं।



CUPULIFERAE FAMILY

मायाफलादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष क्वाचित क्षुप

पत्र—एकान्तर, पक्षाकार

पुष्प—पुं केशर—५-१०

बीजकोश—अधःस्थ

फल—कवचयुक्त

बीज—१-२

६१ भोजपत्र

आयुर्वेदीय पर्याय—भूर्जपत्र; भूर्जचर्मा; बहुवल्कल; बहुपुट; चित्रपत्र।

अंग्रेजी—Jacquemontia

लैटिन—Betula Bhojapattra

विवरण—पहाड़ी प्रदेशों में लगभग ४०-५० फुट ऊंचा वृक्ष होता है, जिसकी छाल कोमल, चमकीली कागज की जैसी पतली होती है। इसका रंग रक्ताभ श्वेत होता है। इस पर अनुप्रस्थ रेखाएँ पड़ी रहती हैं। इस वृक्ष में लटवाकार पत्ते होते हैं, जो दन्तुघार होते हैं। इसमें ४-१२ जोड़े पत्रसिराएँ होती हैं। इसके बीज पक्षयुक्त होते हैं। यह हिमालय में ५ हजार फुट से ऊपर पाया जाता है। सिक्किम और भूटान में विशेष कर होता है।

१५०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

प्रयोज्य अंग—छाल

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, कटु विषाक है। भूतनाशक प्रभाव होता है। त्रिदोष शामक, मेध्य, रक्तपिक्त शामक, रक्तरोधक, मेदघ्न एवं विषघ्न होता है।

कर्ण रोग, कुष्ठ, रक्त रोग, आक्षेप एवं अतिसार, प्रवाहिका में प्रयोग किया जाता है। कास में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसमें वेटुलिन् नामक क्षार तत्व होता है और एक उड़नशील तैल होता है।

इसकी छाल को हिप्टेरिया नाशक एवं शान्तिदायक माना जाता है। इस में कुछ सुगन्धित एवं कृमिनाशक तत्व होते हैं।

मलाया में इसकी छाल का काढ़ा पित्तज्वर एवं पीलिया में प्रयोग किया जाता है।

इसका बाह्य प्रयोग पूतिहर एवं कीटाणु नाशक होता है।



CYPERACEAE FAMILY

मुस्तादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप-तृण सदृश, काण्ड-त्रिकोण, पर्वरहित,

पत्र—अवृन्त,

पुष्प—छोटे, हरे, काण्डाग्र में गुच्छों में लगे हुए,

६२. कसेरू

आयुर्वेदीय पर्याय—कशेरूक

अंग्रेजी—Water Chestnut

लैटिन—Scirpus Grossus

विवरण—इसका वर्षायु पीछा ४-६ फुट ऊंचा होता है जिसका तना अंगुली जितना मोटा होता है और छोटे २ पत्ते होते हैं। लगभग ३ फुट लम्बी फूलों की मंजरी होती है। फल घूसर अथवा कृष्ण वर्ण के छोटे २ होते हैं। इसकी जड़ में कन्द निकलता है जो जायफल के बराबर गोल होता है। यह रोमश होता है। ऊपर से काला और अन्दर से सफेद रंग का होता है। इसमें सुगन्ध आती है और मीठा होता है, इसे चिचोड़ भी कहा जाता है। इसका एक और भी

मुस्तादि वर्ग

१५१

भेद होता है जिसका कन्द इससे कुछ बड़ा होता है, इसे बड़ा कसेरू या राज कसेरू कहा जाता है। इसका लैटिन नाम *Scirpus Tuberosus* है।

कसेरू भारत के उष्ण प्रदेशों में या आर्द्र भूमि में पैदा होता है। चीन में भी पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर-कषाय रस, गुरु-रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं मधुर विपाक होता है। यह पित्त शूलक-कफ वात वर्धक है। यह संग्राही, रक्त-स्तम्भन स्तन्य जनन, शुक्ल, कृमिकारी होता है।

दाह, रक्तज्वरोग नेत्ररोग, प्रमेह, तृष्णा, कामला एवं दुर्बलता में प्रयोग किया जाता है। यह गर्भस्थापक औषधि मानी जाती है। हृदय को बल देती है।

आधुनिक मत—इसके कन्द में स्टार्च ६३% होती है। प्रोटीन ७% एवम् गोंद होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि इसका कन्द वमन को बन्द करता एवम् रक्तातिसार में लाभ करता है।

यूनानी ग्रन्थकारों ने इसे उत्तम विषघ्न कहा है। उनका कहना है कि विष चाहे किसी जन्तु के काटने से पैदा हुआ हो अथवा कोई विषाक्त द्रव्य भक्षण से दोनों ही अवस्थाओं में लाभ होता है।

६३. नागरमोथा

आयुर्वेदीय पर्याय - मुस्तक, वारिद

यूनानी—साअद्

लैटिन - *Cyparus Scariosus*.

विवरण - इसका पौधा १ से ३ फुट ऊंचा होता है। पत्ते लम्बे घास की तरह होते हैं। फल का डंठल पौधे के अग्रभाग से निकलता है। जिसमें ऊपर तरफ १० से २० तक शाखाएं होती हैं। फल लम्बे होते हैं। इसकी जड़ $\frac{1}{2}$ से १ इंच मोटी, काले रंग की और सुगन्धित होती है। यह भारत के आर्द्र भागों में उत्पन्न होता है।

आयुर्वेद में इसकी मुख्यतः तीन जातियाँ होती हैं जो नागरमोथा के अलावा भद्रमुस्तक और कैवर्त्तमुस्तक हैं।

प्रयोज्य अंग—१ से ३ माशा

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु, तिक्त-कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक है। यह मेध्य और नाड़ियों के लिये बलकारक होता है। यह दीपन, पाचन, ग्राही, कृमिघ्न, कफघ्न, मूत्रल, स्तन्यजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, वल्य और विषघ्न है।

यह अपस्मार आदि मानसिक रोग, अरुचि वमन, कृमिरोग, संग्रहणी में योग होता है। कास, श्वास, मूत्र रोग, ज्वर, रजोरोध एवं त्वचा के रोगों को दूर करता और स्तनों पर लेप करने से स्तनवृद्धि करता है। आंखों में अंजन लगाया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें चर्बी, शर्करा, कार्बोहाइड्रेट, अलव्युमिन तथा क्षार होता है। इसमें उड़नशील तैल होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह पाचक, हृदय और आमाशय को ताकत देने वाला, पसीना लाने वाला, पेशाब लाने वाला और संकोचक है। यह दस्तों को ठीक करता है। इसका क्वाथ उनोरिया और सिफलिस में दिया जाता है। यह बाल घोने के काम में लिया जाता है।

D

DIOSCORIACEAE FAMILY वाराहीकन्द वर्ग

स्वरूप—प्रायः आरोही, लम्बेक्षुप

पत्र—एकान्तर अभिमुख साधारण अथवा संयुक्त

पुष्प—छोटे, एकलिंगी पुं केशर-६, बीजकोश-त्रिकोष्ठीय

मूल—बड़े, स्थूल, कन्दाकार (Bulbous Root)

६४. वाराहीकन्द

आयुर्वेदीय पर्याय—नाराही, वरदा, गृष्ठी, वाराहवदना

लैटिन—*Discorea Buebifara*.

विवरण—इसकी सुहावनी लता होती है जो वर्षा आरम्भ होने पर बढ़नी आरम्भ होती है। इसका तना चिकना होता है और पत्रकोण में एक उभार होता है। पत्ते एकान्तर लगे हुए, और तीक्ष्णाग्र होते हैं। वर्षान्तकाल में फूल मंजरी में लगते हैं। इनका रंग पीत अथवा श्वेत होता है। रात्री में इनमें से बहुत मधुर गन्ध आती है। इसके फलों में बीज निकलता है। इसका कन्द छोटा होता है जिसका आकार शूकर के मुख जैसा, एक तरफ मोटा और दूसरी तरफ पतला लोम युक्त होता है। ऊपर से यह भूरे रंग का होता है और काटने पर अन्दर से पीलापन लिए हुए श्वेत होता है। कुछ अन्य लता जाति की वनस्पतियों के कन्द को भी वाराहीकन्द मानते हैं। वाराहीकन्द हिमालय प्रदेश में ५ हजार की फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत—कटु-तिक्त मधुर रस, लघु-स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाक होता है। कफ नाशक, पित्त वर्धक होता है। दीपन, रसायन, वृष्य, आयुष्य, बल्य होता है।

यह कुष्ठ, कृमि, प्रमेह में बहुत लाभ करता है। रक्त-विकार, दुर्बलता में प्रयोग किया जाता है। स्वर तथा वर्ण को निखारने वाला है।

आधुनिक मत—इसके कन्द में स्टार्च काफी मात्रा में होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक इसे उत्तम पोषक द्रव्य मानते हैं और इसके रसायन तथा वृष्य गुण को स्वीकार करते हैं।



DIPTEROCARPEAE FAMILY

शालादि वर्ग

स्वरूप—बड़े वृक्ष, सपुष्प

पत्र—एकान्तर (Alternate) सादे (Simple) सिराएँ (Veins) समानान्तर एवं स्पष्ट

पुष्प—गुच्छों में, शाखाग्र या पत्रकोण (Apical or Axillary)

उद्भूतः

पुष्प बाह्यकोष (Calyx) के दल ५ स्थायी

पुष्प आभ्यन्तर कोश (Coroila) के दल-५
विशेष—इन वृक्षों से राल अथवा सार तैल निकलता है।

६५. कपूर भीमसेनी

आयुर्वेदीय पर्याय—कपूर, हिमवालुक, सिताभ्र, हिमाहृत यूनानी—काफूर
अंग्रेजी—Camphor लैटिन—Dryobalanops Arcmatics

विवरण—कपूर के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सदा हरे रहते हैं। इनकी छाल ऊपर से खुरदरी और अन्दर से चिकनी होती है। इसके पत्ते तेजपात के जैसे होते हैं। फूल हरे, पीले मंजरियों में होते हैं। फल मटर की तरह गुच्छों में होते हैं। इस वृक्ष के तने में खोखली जगह होती है जिसमें पेड़ का निर्यास एकत्रित हो जाता है यही कपूर होता है। यह पानी में डूब जाता है।

उत्पत्ति भेद से दूसरा कपूर जापानी कपूर कहलाता है जिसका पौधा Latin में Cinnamomum Camphora कहलाता है और Lauraceae Family का होता है। तीसरी तरह का कपूर हिन्दुस्तानी कपूर होता है जो Labiatae Family के वृक्ष Ocimum Kilimandscharicnm का निर्यास है।

भीमसेनी कपूर के पौधे बोर्नियो और सुमात्रा में ज्यादा होते हैं और भारतीय देहरादून आदि में होता है।

यूनानी हकीमों ने तीन तरह के कपूर का वर्णन किया है—१. स्याही (सुखं श्वेत) २. कैसुरी (श्वेत) इसे 'फार्मोमा कैम्फर' कहते हैं। ३. काफूर मोती (नकली) जो 'ब्लूमिया कैम्फर' कहा जाता है।

प्रयोज्य अंग—निर्यास।

मात्रा—१ से ३ रत्ती।

आयुर्वेदिक भूत—तिक्त, कटु, मधुर रस, लघु तीक्ष्ण गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है, त्रिदोषनाशक, अल्पमात्रा में मेध्य एवम् वेदना स्थापन है। मुख-शोधक, रुचिकारक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृदय को उत्तेजना देने वाला, कफनिःसारक, मूत्रल, विषघ्न, स्वेदजनन कर्म करता है। अल्प मात्रा में वाजीकरण है किन्तु अधिक मात्रा में कामावसादक है। इसको

तल में मिलाकर या मरहम आदि में मिलाकर दर्द, सूजन, ज्वर तथा त्वचा रोगों पर लगाते हैं। यह अतिसार, हैजा, कास, श्वास, हृदय रोग, मूत्रकृच्छ्र, वातव्याधि, कम्पन, आक्षेप में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—डा० देसाई ने लिखा है कि कपूर की क्रियाएँ उसकी मात्रा के अनुसार होती हैं। जब साधारण मात्रा में लिया गया हो तो पहले सर्वव्यापी उत्तेजन करता है किन्तु कुछ देर बाद अवसादक, वेदना नाशक और संकोच-प्रसार नियामक गुण दिखाता है। ज्यादा मात्रा में दाह पैदा करता, नशा करता और विष प्रभाव दिखाता है। इसका कहना है कि कपूर वातकफ नाशक, दीपन, पसीना लाने वाला, ज्वर मिटाने वाला, दाह दूर करने वाला और दिल को ताकत देने वाला होता है।

६६ साल

आयुर्वेदीय पर्याय—शाल, शक्रदु, धूपवृक्ष

अंग्रेजी—Saltree

लैटिन—Shorea Robusta

विवरण—इसका वृक्ष बड़ा, लम्बा सीधा और कम छाया देने वाला होता है। इसका तना सख्त एवम् रक्तभ होता है। जब तक पेड़ छोटा होता है। छाल मुलायम होती है, बड़ा होने पर ऊबड़-खाबड़ और सख्त हो जाती है। पत्र ६ से १० इञ्च लम्बे और ४ से ६ इञ्च चौड़े चमकदार होते हैं। इसमें फूल श्वेत पीत, मुलायम, गुच्छेदार होते हैं। फल १/२ इञ्च लम्बा, सफेद रंग का मुलायम होता है। इस वृक्ष में से एक निर्यास निकलता है जो 'राल' कहलाता है। इसी जाति का दूसरा पेड़ होता है जो सर्ज कहलाता है। उसे Vateria Inpica कहते हैं। इसके गुण एवम् रूप शाल जैसे होते हैं। शाल हिमालय की तराइयों में होता है। काँगड़ा से आसाम तक पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, निर्यास (राल)।

मात्रा—छाल का काढ़ा ५ से १० तोला, राल चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—(वृक्ष की छाल) कपाय, कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य, कटु विषाक, कफपित्त शामक है। रक्त स्तम्भन, कफघ्न, मूत्र संग्रहणीय, वाजीकरण, कुष्ठघ्न है। वेदना, शोथयुक्त स्थानों पर लेप करते

हैं। चोट-व्रण अथवा अन्य कारण से हुए दर्द में इसका क्वाथ पिलाते हैं। प्रदर में लाभ करता है।

(राल) कषाय मधुर रस, लघुरूक्ष गुण, उष्ण वीर्य कटु विपाक तथा त्रिदोषनाशक है। यह विशेषकर दीपन, पाचन, कफनिःसारक, कफदुर्गन्धहर, मूत्रगत जीवाणु नाशक, प्रदर कुष्ठ मेद रोग नाशक है। इसको मरहम के रूप में प्रयोग करते हैं। फोड़े, फुन्सी, दाद, दग्ध स्थान और दूसरे चर्मरोग ठीक हो जाते हैं। राल का अञ्जन आंखों की रोशनी बढ़ाता है और कान के रोगों में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में कषाय द्रव्य होता है। जो पानी में उवा-लने पर कथे के जैसा हो जाता है। इसमें Resin होती है जिसमें ६२% एण-५ल आयल होता है। संकोचक है, पेचिश के लिए फायदा करता है हाजमा ठीक करता है और सुजाक में फायदा करने वाला कहा गया है।



E

EUPHORBIACEAE FAMILY

एरण्डादि वर्ग

पत्र—एकान्तर (Alternate) अथवा अभिमुख (Opposite) उपपत्र-युक्त अथवा उपपत्ररहित प्रायः सादे (Simple) क्वचित् खंडित (Compound)

पुष्प—छोटे, बीजकोश, ऊर्ध्वस्थ, तीन कोष्ठ वाला

बीज—चिकने, चमकीले, चित्रित व लम्बगोल

विशेष—पौधे तोड़ने से दूध निकलता है

६७. आवला

आयुर्वेदीय पर्याय—आमलकी, वयस्या, वृष्ट्या, शिवा, घात्रीफल, अमृता

यूनानी—आम्लज

अंग्रेजी—Emblie myrabalan

लैटिन—Phyllanthus Emblica

एरण्डादि वर्ग

१५७

विवरण—इसका वृक्ष २०-२५ फुट लम्बः और पतले तने का होता है। लम्बे डंठल में इमली की पत्तियों की सी लेकिन उनसे कुछ छोटी पत्तियां लगी होती हैं। सर्दियों में पीले रंग के छोटे २ फूल लगते हैं। फल अण्डे जैसे पीले, हरे रंग के होते हैं और छः हिस्सों में अलग हो सकते हैं, जिनके निशान ऊपर दिखाई देते हैं। यह सारे भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल।

मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—अम्ल प्रधान लवण रोहत पांच रस, लघु, रुक्ष, शीत गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक है। यह त्रिदोषहर विशेषकर पित्तशामक है। मेध्य, बल्य, रोचक, दीपन, यकृतोत्तेजक, हृद्य, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल प्रमेहघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न और रसायन है, दाह पित्तिक सिर शूल तथा सूत्रावरोध में इसका लेप करते हैं। नेत्र रोगों में इसका स्वरस डालते हैं। खालित्य और पालित्य आँवले से सिर बोते हैं। आयुर्वेद की प्रसिद्ध दवा-च्यवनप्राश इससे ही बनती है।

आधुनिक मत—इसके फल में गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, शर्करा, अम्ल व्युमिन, कैल्शियम और विटामिन 'सी' होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि ताजा फल चिकना, पेशाब साफ लाने वाला और हलका दस्तावर होता है। सूखा फल शीतल, पाचक और उत्तेजक होता है। अंगूर का रस और शहद के साथ आँवले का शर्वत ज्वर और अतिसार को मिटाता है।

६८. अरण्ड

आयुर्वेदीय पर्याय—एरण्ड, वातारि, रूबुक,
लैटिन—*Ricinus Communis*.

यूनानी—वेद अंजीर

विवरण—इसका पौधा ५ से १० फुट तक होता है। पत्ते हरे रंग के, चौड़े, कटे-फटे और ४ से १२ इंच लम्बे डंठल में लगे होते हैं। लाल या बैंगनी रंग के फूल आते हैं और इनमें ही गूच्छों के आकार में फल लगते हैं। फलों के ऊपर हरे रंग का आवरण रहता है जिनमें मुलायम कांटे होते हैं। फल में दो

१५८

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

कोष्ठ होते हैं और उनमें बीज निकलते हैं जो लम्बे चिकने, काले और चित्त-कबरे होते हैं। रंग भेद से अरण्ड दो तरह का है, लाल और सफेद। यह समस्त भारत में विशेषकर मद्रास, बंगाल और बम्बई में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, पत्ते, बीज, तेल।

मात्रा—तेल २ से ५ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर कटु कषाय रस, गुरु स्निग्ध तीक्ष्ण सूक्ष्म गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक है। यह कफ वात शामक है। मेध्य, वेदना स्थापन, दीपन, भेदन, स्नेहन और कृमिनाशक है।

हृदय को बल देता है। शोथ हटाता है और मूत्र साफ करता है। वृष्य स्तन्यजनन, शुक्रशोधन और यर्भाशय शोधन करता है। यह बल देता, विष का नाश करता, पसीना लाता और कुष्ठ व ज्वर को मिटाता है। इसके तेल की मालिश या पत्तों को गर्म करके बाँधने से सूजन और दर्द दूर हो जाता है। कटिशूल, गृध्रसि, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात, सन्धिशोथ एवम् चर्म रोगों में इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। पक्षाघात, अर्दित, अशं और यकृत रोगों में उपयोगी है।

आधुनिक मत—इसमें स्थिर तेल ४५% होता है। पिच्छिल द्रव्य, शर्करा, और क्षार होते हैं। इसके बीजों में एक विषाक्त द्रव्य Ricin होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि अरण्ड के तेल को छोड़ कर जितने और विरेचक पदार्थ होते हैं वह अति विरेचक होते हैं। अरण्ड का तेल उत्तेजक नहीं है। ना ही यह यकृत को उत्तेजक करता है। ग्रहणी में जाकर वह Pancreatic Juice से मिलता है और एक तरह का अम्ल बनाता है जिससे आंतों में स्थित ग्रन्थियां उत्तेजित हो जाती हैं और विरेचक क्रिया होती है। अरण्ड बीज का लेप करने से फोड़े पक जाते हैं। अरण्ड के पत्ते गर्म करके पेड़ प्रदेश पर रखने से मासिक स्राव साफ हो जाता है।

६६. कबीला

आयुर्वेदिक पर्याय—काम्पिलक, कर्कश, रक्तांग, रेचन यूनानी—कम्बील
अंग्रेजी—Kamala Dye लैटिन—Mallotus Philippensis

एरण्डादि वर्ग

१५६

विवरण—इसका हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचा होता है जिसमें गुलर के जैसे तीन से छः इञ्च लम्बे पत्ते लगते हैं। पत्ते के डंठल के पास दो गाँठें होती हैं और पत्ते के निचले भाग में तीन लाल रंग की धारियाँ होती हैं। गहरे लाल रंग के डंठल में छोटे छोटे फूल लगते हैं। इसमें छोटे वेर जैसे फल गुच्छे में लगते हैं। पके हुए फल लाल रंग की धूल से ढके रहते हैं जिनको मसलने पर लाल रंग का चूर्ण इकट्ठा हो जाता है। इसे कबीला कहा जाता है। शाखाओं से भी यह चूर्ण इकट्ठा किया जाता है जो पीले रंग का और खराब होता है। फल में गोल चिकने और काले रंग के बीज निकलते हैं। असली कबीले में कोई स्वाद और गन्ध नहीं होती और बहुत हल्का होता है। यह भारत, लंका, बम्बई, मलाया, चीन, अफ्रीका और सिंगापुर में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल के ऊपर की धूलि

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण गुण, ऊष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह वात, कफ शामक, रेचक, कृमिनाशक, रक्तशोधक, पथरी, विष, गुल्म, उदर रोग, प्रमेह एवम् व्रणनाशक है।

आधुनिक मत—इसमें राल ४०% होती है जिसमें Rotllerin नामक द्रव्य पाया जाता है। इसके अतिरिक्त Dsorotleri भी होता है। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि 'कबीला विरेचक और कृमिनाशक है। पित्त को बाहर निकालता और शूल मिटाता है। कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि कुछ समय पहले ब्रिटिश फर्माकोपिया में कृमिनाशक औषधि के रूप में इसे मानते थे किन्तु अब विश्वास कम हो गया है।

१००. थूहर

आयुर्वेदीय पर्याय—स्नुही, गुड़ा, सुघा, सेटुण्ड, वज्जी, समन्तदुग्धा

यूनानी—जकूम।

अंग्रेजी—Common Milk Hedge **लैटिन**—Euphorbia Nerifolia

विवरण—इसका पौधा छोटा और सीधा होता है जो गोल और कांटों से भरा होता है। इसके पत्ते ६ से १२ इञ्च लम्बे और मोटे होते हैं। फूल

१६०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

पीले रंग के होते हैं। बीज चपटे और रूएंदार होते हैं। यह समस्त भारत सिक्किम और भूटान में पैदा होती है। इसको गोदने से दूध निकलता है। इसकी एक जाति तीन धार वाली है जो कि *E. Antiquorum* कहलाती है। पाँच धार वाली जाति को *E. Ligularia* कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, दुग्ध।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती, चूर्ण २ से ४ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु स्निग्ध, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह कफवातहर, रेचक, रक्तशोधक, शोथनाशक और कफनिःसारक है। यह त्वग्दोषनाशक और विषनाशक है। गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, कास श्वास का नाश करता है। पत्तों को गरम कर शोथ वेदनायुक्त स्थान पर बांधते हैं।

आधुनिक मत—इसमें Euphorbon राल, रवड़ और Calcium Mallate होता है

डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह विरेचक और कफनिःसारक है। इसे त्वचा पर लगाने से फोड़े पड़ जाते हैं। काली खांसी, सांस, शोथ, प्लीहा, यकृत ग्रहणी, पीलिया, शूल नाश के लिए इसका रस नमक के साथ देते हैं। इसकी जड़ सर्प दंष्ट्र वाले के लिए हितकारक है।

१०१. जमाल गोटा

आयुर्वेदीय पर्याय—जयपाल, जेपाल, दन्तिबीज यूनानी—हब्बुस्सलातीन
अंग्रेजी—Croton लैटिन—Croton Tiglium

विवरण—इसका पौधा हमेशा हरा रहता है। इसके पत्ते २ से ४ इञ्च चौकने तथा दन्तवत कटे किनारों के होते हैं। फूल रंग में हरे पीले, मंजरी के रूप में लगे होते हैं। फल लगभग १ इञ्च लम्बा तिकोना होता है। जिसमें बादामी रंग का बीज निकलता है। यह भारत लंका, चीन में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, बीज तैल

मात्रा— $\frac{1}{4}$ से १ रत्ती बीज

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, गुरु, स्निग्ध तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, और कटु विपाक होता है। यह कफवातहर, तीव्र रेचक, कृमिनाशक, शोथहर, ज्वरघ्न

और विषनाशक है। कब्ज, कृमि, जलोदर, ज्वर में दिया जाता और घ्वजमंग में शिश्न पर लगाया जाना है और चर्म रोगों में भी लेप करते हैं।

आधुनिक मत—बीजों में एक स्थिर तेल, Tiglic acid, Crotonic acid और Croton oil होता है। Croton oil में निम्न तत्व होते हैं।

(1) Croton oleic acid, (2) Tiglic acid, (3) Crotonol, (4) Volatile oils (5) Fatty acids.

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह पागलपन, मृगी, आक्षेप इत्यादि रोगों में लाभ करता है, जिनमें रक्तभार बढ़ गया हो; उनके लिये हितकर है। इसका तेल सन्धिवात, पक्षाघात और अन्य प्रकार के जोड़ों के दर्द में उपयोगी है।

१०२. दन्ती

आयुर्वेदीय पर्याय—दन्ती, उदुम्बरपर्णी, एरण्ड फला, शीघ्रा घुनाप्रिया।

लैटिन—*Baliospermum montanum*.

विवरण—इसका पौधा ३ से ६ फुट ऊँचा होता है। पत्तियाँ ऊपर से नीचे तक छोटी-बड़ी होती हैं। ऊपरी पत्तियाँ २ से ३ इंच लम्बी और नीचे की पत्तियाँ ६ से १२ इंच लम्बी होती हैं। फूल हरे रंग के और फल १/२ से १ इंच लम्बा और तीन भूरे रंग के बीज वाला होता है।

इसकी एक जाति बड़ी दन्ती कहलाती है। जो इससे बड़ी होती है। उस के पत्ते और बीज भी बड़े होते हैं। आयुर्वेद में उसे 'द्रवन्ती' और Latin में *Croton Polyandrum* कहा जाता है।

दन्ती बंगाल, विहार, दक्षिण भारत और बर्मा में ज्यादातर होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़, पत्ते और बीज।

मात्रा—जड़ चूर्ण १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटुरस गुरु-तीक्ष्ण, रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफपित्तहर, दीपक विरेचक, पित्तसारक, कृमिनाशक रक्तशोधक, अश्वमरी नाशक ज्वर, कुष्ठ और विषनाशक है। जड़ और बीज का लेप शोथ एवं वेदना दूर करता है।

आधुनिक मत—जड़ में राल और स्टार्च होता है। बीजों में तेल होता है।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि इसकी जड़ और बीज विरेचक होते हैं । सर्प-विष में उपयोगी माने जाते हैं ।

इसके बीज जमाल गोटे की तरह तीव्र रेचक कहे गए हैं ।

१०३. कनोचा

Phyllanthus Maderaspatensis

विवरण—यह एक फिसलने वाले तने की वनस्पति है । इसके पत्ते गोल, मुनायम और फैले हुए होते हैं । इसमें गोल और दबी हुई फलियां लगती हैं । जिनमें वादामी रंग के रक्ताभ बीज निकलते हैं । यह वनस्पति भारत के गर्म प्रदेशों, सीलोन, चीन, अफ्रीका, जावा और अरब में पैदा होती है ।

प्रयोज्य अंग—बीज ।

मात्रा ५ से ७ माशा ।

गुण कर्म—औरत के दूध में बीजों को मिलाकर कान में टपकाते हैं जिससे दर्द मिट जाता है । खिलाने से आम'शय और आंतों को ताकत देता है । यह खूनी दस्तों और पेचिश को ठीक करता है । सूजन और फोड़े- फुन्सियों पर यह लगाते या इसकी पुल्टिस बांधते हैं । यह हवा को खारिज करता है ।

इसके बीज तिल्ली के लिए हानिकारक हैं ।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह वस्तु लुआबदार होती है । अतः इसके गुण भी दूसरी लुआबदार दवाओं की तरह होते हैं ।

१०४. दूधी

आयुर्वेदीय पर्याय—दूधिका, स्वादुपर्णी, विक्षीरिणी ।

यूनानी शीरक

विवरण—इसकी मुख्यतः दो जातियां होती हैं ।—१. बड़ी जिसका पौधा १-२ फुट का होता है । इसे E. Pilulifera कहते हैं । २. छोटी दूधी दो तरह की होती है—रक्त और श्वेत । लाल दूधी में फूल बारहों महीने रहते हैं । इसे E. Thymifolia कहते हैं ।

सफेद दूधी E. Microphylla कहलानी है । यह जमीन पर फैली रहती है, छोटे-पत्तों और फूलों से भरी रहती है । इसका काण्ड रूढ़दार होता है ।

एरण्डादि वर्ग

१६३

भारत के उष्ण प्रदेशों में होती है ।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग ।

मात्रा—५ से ७ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त मधुर रस, गुरु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है । कफ पित्तहर, अनुलोमन, भेदन, कृमिनाशक रक्तशोधक मूत्रन, वृष्य, कुष्ठघ्न, विषघ्न है चर्मरोगों पर लेप करते हैं । उपदंश, फिरंग भूत्र कृच्छ, पूयमेह शुक्रमेह में लाभ करती है ।

आधुनिक मत—इसमें गैलिक एसिड, कर्सेटिन और फिनेलिक तत्व प्राप्त हुआ है ।

डा० क्षौरी इसे कृमिनाशक, कफ निःसारक, रेचक और रक्तशोधक बताते हैं ।

१०५ पुत्रजीवक

आयुर्वेदीय पर्याय—पुत्रजीव, गभकर, यष्टिपुष्प, अर्थसाधक ।

लैटिन—Purrajiva Roxburghii.

विवरण—इसका वृक्ष काफी ऊँचा होता है जो सदैव हरा रहता है । इस का तना लगभग सीधा रहता है । छाल का रंग फीका होता है । इसके पत्ते अण्डाकार चमकीले होते हैं । वसन्त में पीताभ-श्वेत वर्ण के पुष्प लगते हैं । शीतकाल में फल लगते हैं जो लम्बा-गोल और कुछ तीखी नोक वाले होते हैं, इसका बीज कठोर होता है । यह जंगलों में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—छाल पत्ते, बीज ।

मात्रा—६ माशा से १ तोला ।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर रस, रुक्ष, गुरु, गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक है । यह रेचक, वीर्यवर्धक, गर्भदायक, कफवात नाशक एवं मल-मूत्र प्रकर्तक होता है । इसका विशेष प्रयोग गर्भस्थापनार्थ किया जाता है ।

यह आस, जलन, विसर्प, श्लीपद और नेत्र रोगों में प्रयुक्त करता है । इसके फल की गुठली ज्वर का नाश करने वाली कही जाती है ।

आधुनिक मत—जंगलानी जड़ी बूटी (Forest Tree) के श्री नाम-
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१६४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

बासजी गोर ने इस पर क्रियात्मक अनुसंधान किया और यह पाया कि इसके प्रयोग से गर्भाशय के रोग दूर हो जाते हैं और गर्भाधान हो जाता है। गर्भावस्था में प्रयोग करने से गर्भपात या गर्भस्राव का डर नहीं रहता और संतान उत्पन्न होती है।

रस रत्नाकर में इसके फल की गुठली को ४ माशा की मात्रा में ठंडे पानी से देने पर स्थावर-जंगम सब प्रकार के विष को नष्ट करने वाला लिखा है किंतु केस और महस्कर का मत है कि ओषध सर्पविष पर कुछ कार्य नहीं करती।

१०६. भूमी आंवला

आयुर्वेदीय पर्याय—भूम्यामलकी, भूधात्री, तामलकी, बहुपत्रा, लहुफला।

लैटिन—(श्वेत) *Phyllanthus Niruri*.

(रक्त) *Phyllanthus Urinaria*.

विवरण—इसका वर्षायु पौधा १/२ से १ फुट तक ऊँचा होता है जिसमें आंवले के समान पत्ते लगते हैं किन्तु चौड़ाई में कुछ कम होते हैं और लम्ब-गोल होते हैं। पीले रंग के फूल आते हैं जो शरदऋतु में खिलते हैं। फल सरसों के बराबर छोटा होता है किन्तु आंवले की तरह तीन भागों में बंटा हुआ रहता है। बीज सफेद और मुलायम होते हैं। यह आसाम, बंगाल, बिहार में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कषाय, मधुर रस, लघु रूक्ष गुण, शीत वीर्य एवं मधुर विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक है एवं वातवर्धक है। दीपन पाचन, अनुलोमन, स्तम्भन आदि कर्म करता है। यह मूत्रल, बल्य एवं विषघ्न है इसके बीज स्त्री रोगनाशक होते हैं।

इसका प्रयोग पिपासा, कास, श्वास, हिक्का, पाण्डु, कुष्ठ, मूत्ररोग, दाह, विष एवम् पित्तज प्रमेह में किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें एक कार्य करने वाला तत्व पाया जाता है जिसे *Phyllanthin* कहा जाता है।

डा० देसाई ने इस पर अपने विचार लिखते हुए बताया है कि यह द्रौपदी, पाचन, मूत्रल, दाहशामक, शोथनाशक, पार्यायिक ज्वरों को रोकने वाला है। इसकी कोमल डालियों का फांट बना कर आम्रातिसार में दिया जाता है। कामला में इसकी जड़ पीसकर १ तोला की मात्रा में प्रातः सायं दूध से दी जाती है। इसके पंचांग का क्वाथ मलेरिया में अच्छा लाभ करता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है और उसकी जलन भी मिट जाती है। अतः यह सुजाक्र में लाभ करता है। अत्यातर्व में इसकी जड़ों को पीसकर उसका निर्यास बना कर देते हैं।

शोथ एवं व्रण पर इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है।

F

FUMARIACEAE FAMILY

पर्पटादि वर्ग

स्वरूप—छोटे क्षुप

पुष्प—पुष्प बाह्यकोष के दल २

पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ४ (दो छोटे और दो बड़े)

पुं केशर—(Androceum)—६ (३-३ के जोड़े)

स्त्रीकेशर—(Gynoceum) १ बीज कोष—अघःस्थ

१०७. पित्त पापड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—पर्पट, वरतिकत, रेणु, सूक्ष्म पत्र।

यूनानी—शाहतरा

लैटिन—*Fumaria Parviflora*.

विवरण—इसका पौधा $1/2$ से १ फुट ऊँचा होता है। जो सदियों में जो गेहूँ के खेतों में बहुत पंदा हो जाता है। इसके पत्ते गाजर के पत्तों जैसे छोटे और कटे हुए होते हैं। फूल छोटे, सफेद या गुलाबी रंग के और अग्र भाग में बैंगनी रंग के होते हैं। फल छोटे और गोल होते हैं। यह गंगा किनारे के खेतों में, हिमालय की तराई और नीलगिरि में होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, मात्रा—चूर्ण ४ से ६ माशा, क्वाथ ५ से १० तोला ।

आयुर्वेदिक मूल—तिक्त रस, लघु गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक है । यह कफ पित्त शामक, संग्राहक, तृष्णाशामक, रक्तशोधक, मूत्रल, दाहप्रशमन ज्वरनाशक, भ्रमनाशक और कुष्ठनाशक है ।

आधुनिक मत—इसमें Fumaric acid और Fumartne पाया जाता है इसका पित्तशामक गुण इसमें पाए जाने वाले Salts पर निर्भर करता है ।

पेशाव ज्यादा लाता, आमाशय को ताकत देता, भुख लगाता, पुराने बुखारों को दूर करता है । इसका प्रयोग आतशक (Syphlis), खारिश, दाद और फोड़े-फुन्सियों में किया जाता है ।



G

GENTIACEAE FAMILY

भूनिम्बादि वंश

स्वरूप—कांड प्रायः चतुष्कोण

पत्र—अभिमुख (Opposite) सादे (Simple) अखण्ड, उपपत्ररहित

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५-५

पुंकेसर ५

फल—नीरस

बीज—अनेक छोटे

१०८. चिरायता

आयुर्वेदीय पर्याय—किराततिक्त, भूनिम्ब

दूनानी—कसपुजजरीरा

अंग्रेजी—Chiretta

लैटिन—Swertia Chirata

विवरण—इसका पौधा २ से ३ फुट ऊँचा होता है जिसका तना मोटा गोल और ऊपर की तरफ चौकोर होता है । पत्ते आमन-सामने लगे हुए २ से ३ इंच लम्बे $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच चौड़े नौकदार होते हैं । इसमें हरे-पीले रंग के

छोटे २ फूल लगने हैं। इसके बीज बहुत छोटे होते हैं, फूल आने पर ही इन को इकट्ठा किया जाता है।

इसकी कई जातियाँ बताई गई हैं जिनमें दो मुख्य हैं। कड़वा (पूरा तिक्त) और दूसरा मीठा (आघातिक्त)। चिरायता हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ४ हजार से १० हजार फीट तक की ऊँचाई तक होता है। नेपाल में बहुत होता है।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। कफपित्त नाशक और मलनिःसारक है। सन्निपात ज्वर, का, श्वास, रक्त विकार, सूजन, तृष्णा, कुष्ठ, व्रण और कृमि रोग नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें Ophelie acid और Chiratin मुख्य रूप से होते हैं। डा० क्षीरी का कहना है कि यह ताकत देने वाला, बुखार, त्वचा के रोग, पेट के कीड़े, शरीर की उष्णता, गर्भवती स्त्री की वमन को ठीक करता है। यह मल निःसारक है।

१०६. त्रायमाणा

आयुर्वेदीय पथ्याय—त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिसानुजा, बलभद्रा।

यूनानी—गाफिस।

अंग्रेजी—Indian Gentian

लैटिन—Gentiana Kurroa

विवरण—इसका छोटा पौधा जो ६-७ अंगुल ऊँचा होता है। पहाड़ के चट्टानों के बीच २ गड्ढों में होता है। इसकी जड़ पीले रंग की चौकोर ४ से ६ अंगुल गहरी होती है। इसमें ३ से ४ पत्ते लगते हैं। इसमें नीले रंग के फूल आते हैं। यह हिमालय में ५ से १० हजार फुट की ऊँचाई पर होता है। इस की एक जाति ईरान में पैदा होती है जिसे G. Dahareca कहा जाता है।

प्रयोज्य अंग—पूरा पौधा।

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफ वात शामक तथा पित्त संशोधक है। यह रेचक है ज्वर, हृदय रोग, गुल्म, बवासीर, शूल, भ्रम और विष नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें Centiopicrin, Gentiagic acid और Picrin मुख्य रूप से होते हैं।

१६८

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह ताकत देने वाला, रसायन, वेदनाहर, मूत्र कारक और कीट नाशक है। यह जिगर और तिल्लो के बढ़ने, कामला और शोथ में दिया जाता है। नीम्बु के रस के साथ देने से यह चर्म रोगों का नाश करता है। बालों के साथ पुल्टिस लगाया जाय तो यह फोड़े, फुन्सी पका देता है।

GERANIADAEAE FAMILY

चांगेर्यादि वर्ग

पत्र—अभिमुख (Opposite) अथवा एकान्तर (Alternate)

एकाकी (Simple) अथवा संयुक्त (Compound)

पुष्प—उभयलिङ्गी, पुष्पबाह्यकोश (Calyx) और पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) के दल ५-५

पुंकेसर—(Androceum) ५-१०

गर्भाशय—(Ovary) ५ कोष्ठयुक्त

बीज कोष—विभक्त दल

११०. कमरख

आयुर्वेदीय पर्याय—कमरंग, पीतफल, शिराल, धाराफल

अंग्रेजी—Chinese Goosebery

लैटिन—Averrhoa Carambola

विवरण—इसके वृक्ष गहरे छायाकार एवं २५ से ३० फुट ऊँचे होते हैं। पत्ते गोल होते हैं। वर्षान्त में फूल गुच्छों में निकलते हैं। यह रक्ताभ होते हैं और एक गुच्छे में १० से १५ फल लगे रहते हैं। फल ५, रेखान्वित धारदार होते हैं। यह कच्चे रहने पर हरे और पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। फलों में लम्बे चपटे बीज निकलते हैं। यह सारे भारत में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर-अम्ल-कषाय रस, लघु रुक्ष गुण होता है। कच्चा फल उष्ण वीर्य एवं पका फल शीत वीर्य होता है। पाक में मधुर है, इससे वातकफ का शमन होता है। पित्तकारक है। बलकारक, पुष्टिकारक एवं रुचि कारक होता है। यह संग्राहक है अतः ग्रहणी, रक्तपित्त में लाभ करता है।

चांगेर्यादि वर्ग

१६६

आधुनिक मत—पके फल में 'आंक्जेलिक एसिड' होता है। डा० क्षीरी ने इसे स्कर्वी के लिए उत्तम औषध माना है।

ऐसा कहा जाता है कि स्त्री एवं पुरुष दोनों की जननेन्द्रिय पर यह औषध उत्तेजक कर्म करती है। यह दुग्धवर्धक, मासिक स्राव साफ लाने वाली और गर्भस्रावक भी होती है।

रक्तार्श के लिए इसे अच्छा द्रव्य कहा गया है। इससे रक्तस्राव बन्द होता है।

१११. चांगेरी

आयुर्वेदीय पर्याय—अम्लपत्रिका

अंग्रेजी—Indian Sorrel

लैटिन—*Oxalis Corniculata*

विवरण—यह जमीन पर फैलने वाली वनस्पति है, जिसके एक डंठल में ३, ३ पत्ते लगते हैं। शरद ऋतु में पीले रंग के छोटे २ फूल लगते हैं और बाद में फल लगते हैं जिनमें कई बीज होते हैं। यह सारे भारत में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत—अम्ल-कषाय रस, लघु-रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक है। यह वातकफ नाशक, रोचक, दीपक एवं संग्राहक होती है। इसका प्रयोग ग्रहणी, अर्श अतिसार में किया जाता है। कृष्ठ रोग में भी इसका प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक मत—इसमें पोटेशियम और आंक्जेलिक एसिड होता है।

कनल चौपड़ा के मतानुसार यह ज्वर शामक एवं अग्नि वर्धक द्रव्य है। पुरानी पेचिश में इसके पत्तों को छाछ या दूध के साथ उबाल कर दिन में २-२ बार देने से लाभ होता है।

११२. लक्ष्मणा

आयुर्वेदीय पर्याय—पुत्रजननी

लैटिन—*Ipomaea Sepiaria*

विवरण—यह एक सँदिग्ध द्रव्य है जिसके विषय में भावप्रकाश निघंटु में लिखा है कि "लक्ष्मणा की आकृति एवं गन्ध बकरे के समान होती हैं। इसके पत्तों पर लाल रंग के छीटे होते हैं। यह पुत्रदाता होती है।"

राज निघंटु एवं धन्वन्तरि में सफेद फूल वाली कटैली के बीज को लक्ष्मणा कहा गया है ।

शालिग्राम निघंटु में लिखा है कि इस वनस्पति की जड़ में एक कन्द निकलता है । जो सफेद रंग का होता है । इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल रंग के फूल आते हैं । यह पहाड़ों में पाई जाती है ।

कीर्तिकार एवं मेजर वसु का कहना है कि हनुमान बेल अथवा वनकलमी को लक्ष्मणा जानना चाहिए । इसी का लैटिन नाम *Ipomaea Sepiaria* है ।

यह एक प्रकार की लता होती है जिसके पत्ते गिलोय के पत्तों के समान होते हैं । पत्तों पर और बीच की धारियों पर बैंगनी रंग के छोटे होते हैं । फूल छोटे, गोलाई लिए हुए, गुलाबी रंग के और अणीदार होते हैं । इसके फल में चार खण्ड होते हैं और चार बीज होते हैं । दो २ बीज एक सूक्ष्म और पतले तार न बंधे हुए रहते हैं । यह बेल काठियावाड़ में थूहर की वाढ़ों पर बहुत मिलती है ।

शास्त्रों में लक्ष्मणा को मधुर, शीतल, स्त्री के बन्ध्यत्व को हरने वाली, रसायन, बलकारक तथा त्रिदोष नाशक माना है ।

गुजरात में हनुमान बेल गर्भाशय के विकारों को दूर करने एवं सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाने के लिए प्रयोग की जाती है ।

इसकी एक फूल वाली जाति भी होती है । कहा जाता है कि यह ही वास्तविक लक्ष्मणा है ।

GRAMINAE FAMILY

यशदि वर्ग

पत्र—अखण्ड

पुष्प—वत्कलसदृश्य

पुंकेसर—५

बीज कोष—पक्षाकार

बीज—मांसल

११३. ईख

आयुर्वेदीय पर्याय—ईक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस, मधुतृण यूनानी—नैशकर

अंग्रेजी—Sugar cane लैटिन—Saceharum officinarum

विवरण—ईख एक प्रसिद्ध वनस्पति है जिसका सीधा तना ६ से १२ फुट तक ऊँचा होता है और बीच २ में ग्रन्थियाँ होती हैं। पतले-चपटे पत्ते ३ से ४ फुट लम्बे होते हैं। वर्षा में इनमें गुच्छों में फूल लगते हैं।

भाव प्रकाश निघंटु में 'इक्षु वर्ग' नाम से अलग ही एक वर्ग बताया हुआ है। वहाँ पर ईख की १३ जातियों का वर्णन किया गया है। इन सबके विशेष गुणों को भी अलग २ बताया गया है। सम्भवतः यह देश भेद के अनुसार ही भिन्न हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल, स्वरस एवं उससे निर्मित अन्य पदार्थ।

मात्रा—मूल क्वाथ से १० तोला, स्वरस २ से ४ तोला।

आयुर्वेदिक मत—सुश्रुत सू. अध्याय ४५ में ईख मधुर रस, मधुर विपाक, गुरु, शीत, स्निग्ध बताया है। इसे बलकारक, वृष्य, मूत्रल, रक्तपित्तशामक कहा है। इसे कृमिकारक कहा गया है।

भाव प्रकाश में वर्णित इक्षु वर्ग में १३ प्रकार के ईख के अलग २ गुण बताए हैं। फिर ईख की अवस्था के अनुसार क्या २ गुण होते हैं, यह बताते हुए कहा गया है—

“कच्ची ईख कफकारक, मेद तथा प्रमेह को उत्पन्न करने वाली कही गई है। अधपकी ईख वातहर, मधुर, किञ्चित तीक्ष्ण और पित्तनाशक है। पक्व ईख रक्तपित्त तथा क्षय नाशक है एवं बल-वीर्य की वृद्धि करती है।

‘ईख की जड़ अत्यन्त मधुर, मध्य भाग मधुर और अग्रभाग खारी होता है।’

“कोल्हू में पिला हुआ ईख का रस दाह उत्पन्न करता है और विष्टम्भी होता है।”

ईख के रस से बने हुए पदार्थों का वर्णन किया गया है।

(क) फाणित—यह पका हुआ रस होता है जो कुछ गाढ़ा, बहुत पतला होता है।

१७२

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

“यह गुरु अभिष्यन्दी, पुष्टिकारक, कफवर्धक, वीर्यवर्धक, वातपित्तशामक परिश्रम को दूर करने वाला, मूत्रल एवं बस्ति शोधक होता है।”

(ख) मत्स्यण्डी - भली भांति पकाया हुआ गाढ़ा और कुछ पतलापन लिए हुए ईख का रस ‘मत्स्यण्डी’ कहा जाता है।

यह मलभेदक, बलकारक, हलका, वातपित्तशामक, मधुर, पुष्टिकारक, वृष्य, रुधिर रोग नाशक होता है।

(ग) गुड़—ईख का रस भली-भांति पकाकर विलकुल गाढ़ा कर लिया जाए उसे गुड़ कहा जाता है।

गुड़ वीर्यवर्धक, गुरु, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्रल, मेद, कफ, कृमि एवं बल-वर्धक होता है। पुराना गुड़ लघु होता है।

(घ) खांड—मधुर, वृष्य, चक्षुष्य, पुष्टिकारक, शीतल, वातपित्तशामक, स्निग्ध, बलदायक एवम् छर्दि निग्रहण है।

(ङ) चीनी—अत्यन्त मधुर, रुचिकारक, वातपित्तशामक है, रक्तज्वर, दाह, मूच्छा, वमन और ज्वर को नष्ट करती है। अतिशीतल और वीर्य वर्धक है।

(च) मिश्री—शीतल, वीर्यवर्धक, रक्तपित्तनाशक, हलकी होती है। यह दस्तावर एवं वातपित्तशामक होती है।

सुश्रुत संहिता में बताया गया है कि यह पदार्थ उत्तरोत्तर अधिक शीतल अधिक स्निग्ध, अधिक गुरु, अविक मधुर, अधिक वृष्य एवम् अधिक रक्त-पित्ततृष्णाशामक होते जाते हैं।

आधुनिक मत—ईख में अलव्युमिन, ग्वैनिन और कैल्शियम स्वाद होता है।

११४. कुशा

आयुर्वेदीय पर्याय - कुश, दर्भ, सूच्यग्र, यज्ञभूषण

लैटिन - *Eragrostis Cynasuroides*.

विवरण—यह बहुवर्षायु क्षुप है जिसका मूल दृढ़ होता है। इसकी ऊँचाई १-३ फुट होती है। इसके पत्ते जड़ के पास से ही निकलते हैं और लगभग १॥ फुट ऊँचे और २ इंच चौड़े होते हैं। इसका अग्रभाग सूई की तस्ह तीक्ष्ण,

यवादि वर्ग

१७३

पत्रधार सूक्ष्म और रोम वाला होता है। फूल का डंठल $\frac{1}{2}$ से १। फुट तक लम्बा होता है। इसके बीज $\frac{1}{4}$ इंच लम्बे, अण्डाकार और चपटे होते हैं। यह खुले मैदानों में सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर कषाय रस, स्निग्ध गुण, शीतवीर्य एवं मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोष नाशक है।

यह मूत्रकृच्छ्र, अस्मरी, तृष्णा, बस्तिशूल, प्रदरः विसर्प, दाह, रक्त रोगों में लाभ करता है।

आधुनिक मत—कुशामूल को चावल के पानी के साथ पीसकर पीने से प्रदर रोग शीघ्र ही ठीक हो जाता है। कर्नल चौपड़ा ने बताया है कि यह पेचिश अत्यधिक रक्तस्राव में लाभ करता है। मूत्रल है।

११५. खस

आयुर्वेदीय पर्याय—उशीर, नलद, सेव्य, जलवास, समगन्धक

अंग्रेजी—Khaskhas Grass.

लैटिन—*Vetiveria Zizanioidis*.

विवरण—यह वीरण नामक तृण की जड़ है। यह तृण कुश के समान होता है। इसका तना २-५ फुट ऊँचा और सुगन्ध वाला होता है। पत्ते १-२ फुट लम्बे और सीधे होते हैं। इसमें बरसात में फूल लगते हैं और फल लगते हैं। यह बंगाल, राजपूताना और छोटा नागपुर में पानी के पास के स्थानों में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़।

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त मधुर रस, रूक्ष लघु गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफपित्तशामक, दीपक, पाचक, तृष्णानाशक और स्तम्भक है। ज्वर, वमन, रक्ताविकार मद, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रणों का नाश करने वाला है।

आधुनिक मत—इसमें सुगन्धित तैल, राल, चूने का एक लवण और लोहे का आक्साइड होता है।

१७४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

डा० क्षीरी का कहना है कि खस ताकत देता, उत्तेजता लाता, शीर मिटाता, पसीना लाता, पेशाब और मासिक स्राव लाता है। यह ज्वर मूच्छा, अपस्मार, पक्षाघात में दिया जाता है।

११६. दूब

आयुर्वेदीय पर्याय—शतपर्वा, गोलोमी, शीतवीर्य

यूनानी—उशव

अंग्रेजी—Couch Grass

लैटिन—Cynodon Dactylon

विवरण—यह जमीन पर फैलने वाली घास है। जिसमें बहुत-सी गांठें होती हैं और हरेक गांठ से नई जड़ बनकर जमीन में लग जाती है। पत्ते १-से ४ इंच लम्बे रेखान्वित होते हैं। फूल का डंठल १ से २ इंच लम्बा हरे या बैंगनी रंग का होता है। जो विशेषकर दवाओं में प्रयोग की जाती है। दूसरी जाति नील दुर्वा कहलाती है जो इससे कुछ बड़ी होती है। दूब सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण ११ से ३ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर कषाय तिक्त रस, लघु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुरविपाक होती है, त्रिदोषनाशक, मेध्य, मूत्रल, रक्तस्तम्भक, रक्तशोधक छिदिनाशक एवम् तृष्णा मिटाने वाली है। क्षत-व्रण अर्श पर लेप करते हैं। पैतृक शिरोरोग, शीतपित्त, विसर्प एवम् चर्म रोगों पर लेप करते हैं।

आधुनिक मत—डा० क्षीरी का कहना है कि वमन मिटाती, मूकच्छ में पेशाब साफ लाती और नकसीर से या चोट से बहने वाले खून को बन्द करती है।

बी० डी० बसु ने इसके रस को हिस्टिरिया, अपस्मार और उन्माद में अच्छा बताया है।

११७ नरसल

आयुर्वेदीय पर्याय—नल, पोटगल, स्रन्धमध्य, घमन

लैटिन—Arundo Donax.

विवरण—यह १० से १२ फुट ऊँचा बांस अथवा ईख के आकार का

यवादि वर्ग

१७५

पौधा होता है ; इसके तने पर पर्व होते हैं—पर्वस्थान पीला होता है और बीच का भाग खोखला होता है । इसके पर्व बड़े होते हैं, अतः उनसे बांसुरी बनाई जाती है—उनकी नली बनाकर हुक्का पीने के काम में लेते हैं । यह पानी वाले प्रदेशों में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—मूल ;

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला ।

आयुर्वेदिक मत—मधुर-कषाय तिक्त रस, लघु-स्निग्ध गुण, शीत वीर्य मधुर विपाक है । वातपित्तशामक, वृष्य, मूत्रल, दाह प्रशमन है ।

यह मूत्र कृच्छ्र, दाह रक्त रोग नाशक कहा गया है । मूत्र विकारों में भी यह उत्तम द्रव्य समझकर प्रयोग किया जाता है :

११८. बांस

आयुर्वेदीय पर्याय—वंश, वेणु, त्वक सार, शतपर्वा, यवफल यूनानी—कसवं
अंग्रेजी—Bamboo लैटिन—Bambusa Arundinacea

विवरण—इसका पेड़ ४० से ५० फुट ऊँचा होता है, जिसका काण्ड १२ से १६ इंच मोटा होता है । इसमें थोड़ी २ दूर पर गाँठें होती हैं जिनके बीच का हिस्सा पीला होता है । प्रायः ३० वर्ष की आयु में इसमें फूल और फल लगते हैं । फल देखने में जो के जैसे लगते हैं ।

स्त्री जाति के बांस में एक तरह का रस तिक्त स्थान में जम जाता है । उसे वंशलोचन या तबासीर कहते हैं ।

बांस भारत में हर जगह, खास कर आसाम में होता है और जावा, सुमात्रा और बर्मा में होता है ।

प्रयोज्य अंग—जड़, पत्ते फल, वंशलोचन

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोले, वंशलोचन १ से ३ माशा

आयुर्वेदीय मत—बांस मधुर-कषाय रस, रुक्ष लघु-तीक्ष्ण गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक होता है । इसकी छोटी पत्तियाँ और फल उष्णवीर्य होते हैं । बांस की जड़ कफपित्त शामक, मूत्रल, विषघ्न, वर्य है । इसका लेप त्वचा के वर्ण को निखारता है ।

१७६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

बांस की छोटी पत्तियाँ और फल पित्त वर्धक, दीपन, पाचन, कृमिनाशक, है। पत्ते का क्वाथ रजावरोध और कष्टातर्व में देते हैं। व्रणों पर पत्तों का लेप किया जाता है। फल का प्रयोग मेद रोग और विष रोग में किया जाता है, यह प्रमेह में प्रयोग होते हैं।

वंश लोचन वात पित्त शामक है। ग्राही एवं तृष्णानिग्रहण है। कफ-निःसारक और श्वासहर है। मूत्रल-ज्वरघ्न एवं बल्य-वृंहण है। वमन अति-सार तृष्णा, कास श्वास, यक्ष्मा और सामान्य दुर्बलता में प्रयोग होता है।

आधुनिक मत—बांस की जलाई हुई राख में सेलेसिक एसिड २८% चूना ४%, मेगनेसिया ६%, पोटाशियम ३४%, सोडियम १७%, फ्लोरिन २%, तथा गन्धक १०%, होती है।

वंशलोचन में ६०% सिलिका होता है। चूना, आयरन पेराक्साइड, पोटाश अलुमिनियम और ग्लुकोसाइड पाए जाते हैं।

डा० क्षोरी ने लिखा है कि इसके पत्र रजः स्राव करने वाले हैं। वंश-लोचन उत्तेजक, ताकतवर, शीतल, कास, श्वास, राज्यक्ष्मा और ज्वर नाशक है। इसकी गांठों का क्वाथ 'लोकिया' (प्रसव के बाद योनि मार्ग से होने वाला स्राव) को बन्द करता है। इसके पत्तों का रस रक्त रोधक है।

११६ सरपत

आयुर्वेदीय पर्याय — शर, वाण, मुञ्ज लैटिन—Saccharum Munja

विवरण—यह बहुवर्षीय क्षुप होता है जो १० से १२ फुट ऊँचा होता है और ग्रन्थि युक्त होता है। ग्रन्थियों के बीच के पर्व लम्बे और पतले होते हैं। इसकी पत्तियाँ पतली चपटी, ३ से ५ फुट लम्बी और अग्रभाग में तीक्ष्ण होती हैं। फूल गुच्छों में लगे होते हैं। यह सारे भारत में खासकर बंगाल बिहार में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोष नाशक है, वृष्य एवम् मूत्रल है। इसका विशेष प्रयोग दाह, तृष्णा, विसर्प, रक्त रोग, मूत्रच्छ, अक्षि रोग नाशक है।

GUTTIFERAE FAMILY

नागकेशरादि वर्ग

स्वरूप—बड़े २ वृक्ष सुगन्धित एवं सुन्दर पुष्प

पत्र—अभिमुख (Opposite) सादे (Simple) अखण्ड, चर्मसदृश

पुष्प - नियमित, पुष्प बाह्यकोश (Calyx) और पुष्पआभ्यन्तर कोश (Corolla) के दल—४-१२

पुं केशर—अनियत, बीज कोश-अधःस्थ,

फल—मांसल

विशेष—प्रायः वृक्षों से पीतवर्ण का निर्यास निकलता है

१२०. नागकेशर

आयुर्वेदीय पर्याय—नागकेशर, नागपुष्प, चाम्पेय

यूनानी—नारेमुष्क

अंग्रेजी Cobras Saffron

लैटिन—Mesua Ferrea

विवरण—इसका वृक्ष सदैव हरा रहता है जिसकी छाल लाल रंग की होती है और शाखाएँ कोमल होती हैं। इसमें से बबूल की तरह पीले रंग का गोद-सा निकलता रहता है। इसमें नुकीले पत्ते होते हैं जो ऊपर से नुकीले और हरे तथा नीचे से सफेद होते हैं। ३ से ४ इंच के म्यास में फूल निकलते हैं जिनके पीले रंग के पुं केशर पीले रंग के गुच्छों में होते हैं। इसमें १ से ११ इंच लम्बा गोल सा फल लगता है जिसमें १ से ४ मेहन्दी के बीज की तरह बीज होते हैं। यह नेपाल, आसाम, बंगाल, बर्मा, अण्डमान में ५ हजार फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—पुष्प की केशर।

मात्रा—चूर्ण ४ से ८ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफपित्तनाशक, विषनाशक, आमपाचक, है। यह ज्वर, तृष्णा वमन हल्लास, खुजली, कुष्ठ, विसर्प नाशक है। यह दुर्गन्धता मिटाने वाली वस्तिरोग एवम् आध्मान तथा अर्श नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें सुगन्धित तैल होता है। डा० क्षीरी का मत है कि पेचिश में लाभ करती है। इसका तैल गठिया में लगाया जाता है। इसे मक्खन में मिलाकर रक्तार्श और पाददाह में प्रयोग किया जाता है।

१२१. वृक्षाम्ल

आयुर्वेदीय पर्याय—रक्तपूरक

अंग्रेजी—Red mango

लैटिन—*Garcinia Indica*

विवरण—इसका वृक्ष झाड़ीदार होता है जो २०-३० फुट ऊँचा होता है, इसमें चिकने पत्ते लगते हैं। फल नारंगी के समान लाल रंग के होते हैं, इसमें चपटे बड़े सफेद रंग के बीज निकलते हैं। यह मलाया, चीन, सिंगापुर, जावा गोवा, मालाबार में ज्यादा होता है। सुखाकर फल को 'कोकम' के नाम से बेचते हैं।

प्रयोज्य अंग—फल, मूल त्वक् बीजों से प्राप्त तैल।

मात्रा—फल १ से २ तोला, तैल ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत कच्चा फल अम्ल, पका फल मधुराम्ल रस, लघु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य, कटु विपाक होता है। वातशामक, कफपित्तवर्धक होता है। रोचक, दीपक एवम् संग्राहक है।

तृष्णा, गुल्म, अर्श, शूल, हृदय रोग, जन्तु रोग नाशक है।

आधुनिक मत—बीजों से ३० प्रतिशत तैल निकलता है जो हलके पीले रंग का होता है। इसे जमाकर घी जैसा कर लेते हैं। यह 'कोमम आयल' या 'कोकम-बटर' कहलाता है।

IRIDACEAE FAMILY

केशरादि वर्ग

पत्र—एकान्तर (Alternate) पतले, लम्बे

पुष्प—विविध रंग के पुष्पाभ्यन्तर कोश (Calyx) के दल ३
पुंकेसर (Androceum) ३ बीजकोश (Ovary) त्रिकोष्ठी
और अधःस्थ

१२२. केशर

आयुर्वेदीय पर्याय—घुसृण, रक्त, काश्मीर, कुंकम, यूनानी—जाफरान
अंग्रेजी—Saffron लैटिन—Crocus Sativa.

विवरण—इसका पौधा कई-कई वर्षों तक रहने वाला होता है। इसमें नीचे की ओर सघन पत्तियाँ होती हैं। इसमें २-३ फूल एक साथ या १-१ पत्ते के साथ होते हैं। फूल बैंगनी रंग का होता है। बीजकोष में तीन कोष्ठक होने हैं और उनमें बहुत से बीज निकलते हैं। फूल में पुरुष जाति के तीन भागों में बँटे हुए और रक्ताभवर्ण के होते हैं। स्त्री जाति में से तीन सूत्र (रेसे) से निकलते हैं जो केशर कहलाते हैं। एक फूल में से सिर्फ तीन ही केशर मिलने हैं। इस तरह १ रत्ती केशर २० फूनों से मिलती है। यह काश्मीर, स्पेन, ईरान में होती है।

प्रयोज्य अंग—केशर (पराग) मात्रा—५ से २० रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटू तिक्त रस, स्निग्ध लघु गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है। यह त्रिदोष नाशक है। नाड़ी संस्थान को उत्तेजना और मस्तिष्क को बल देती है। दीपन, पाचन, रोचन, ग्राही, यकृतदुत्तेजक, हृद्य, मूत्रजनन, वाजीकरण और ज्वर नाशक है। चर्म रोगों में और मसूरिका में लाभ करती है। चर्म रोगों में इसका लेप करते हैं। शिरःशूल और व्रणों पर इसका लेप किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल ८ से १३% होता है। Crocin, Picrocrocin, Proteids, Fixed oil होते हैं।

डा० क्षौरी ने लिखा है कि केशर उत्तेजक, सुगन्धित, वायु नाशक, आक्षेप निवारक औषधि है। यह रजःरोध, क्षीणशुक्ता, लिकोरिया, तीव्रशूल, कण्ठ-रज, श्वास एवम् कास में लाभ करती है। यह गठिया और वातवाहिनियों के दर्द को मिटाती है। बच्चों के पतले दस्तों में घी के साथ देते हैं। खसारे इत्यादि में दाने निकालने और गर्मी बनोए रखने को देते हैं। गर्भाशय की पीड़ाओं में इसकी वत्ती बनाकर योनि द्वार में लगाते हैं।

१२३. ईरसा

Iris Versicolor

विवरण—इसके पौधे के बीच में से एक डाली निकलती है, जिसके ऊपर पत्तों के गुच्छे और फूल होते हैं। इसके पत्ते मोटे दल के और लम्बे होते हैं। और फूल नीले, पीले सफेद और इन्द्र-धनुष के जैसे होते हैं, इसीलिए इसे ईरसा (इन्द्र-धनुष) कहा जाता है। इसकी जड़ चपटी टेढ़ी, गांठदार और वैल की तरह फैलने वाली होती है। जड़ में बनफशा की-सी खुशबू आती है। यह हिमालय पर नौ हजार फुट की ऊँचाई तक होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़।

गुण कर्म—यूनानी ग्रन्थों में इसका वर्णन बहुत प्राचीन समय से होता आया है, हकीम डिसकोरिडस और सावफरिस्तून ने भी इसके बारे में लिखा है। इसकी जड़ शरीर में गरमी पैदा करती, दौरा, लकवा, और कम्पन की मिटाती है। तैल और सिरके के साथ इसका लेप करने से पुराना सिर दर्द ठीक हो जाता है। जैतून के तेल के साथ कान में टपकाने से पुराना बहरापन मिट जाता है। हड्डी टूटने या चोट लगने की जगह इसका लेप करने से लाभ होता है। यह सूजन और जलोदर में फायदा करती है और व्रण को भरती है।

आधुनिक मत—कीर्तिकार एवं वसु ने इसे एक उत्तम रक्तशोधक वस्तु माना है। योन विषयक रोगों में तथा यकृत, जलोदर, में लाभकारी कहा है। कर्नल चौपड़ा इसे रक्तशोधक, मूत्रनिःसारक और मृदु रेचक मानते हैं।

**JAGLANDACEAE FAMILY****अक्षोटादि वर्ग**

स्वरूप—प्रायः वृक्ष, सुगन्धित

पत्र—एकान्तर (Alternate) उपपत्र रहित

पुष्प—एकलिंगी पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल अनुपस्थित या सूक्ष्म

फल—कठिन, कवचयुक्त

१२४. अखरोट

आयुर्वेदीय पर्याय—अक्षोट, अक्षोड़े, कर्पराल, रेखाफल, मदनाभफल

अंग्रेजी - Walnut

लैटिन—Juglans Regia

विवरण—इसका पेड़ मध्यम लम्बाई वाला और सुगन्धित होता है। छाल मिट्टी के रंग की और $\frac{1}{2}$ से २ इंच मोटी होती है और उसमें लम्बे चौड़े होते हैं। पत्ते ६ से बारह इंच लम्बे गोल और नोकीले होते हैं। बसन्त में इसमें फूल लगते हैं। फल गोल, रेखासहित, खोल वाला और मदन फल के आकार का होता है। फल में एक बीज होता है जिसमें दो परदे होते हैं। इसकी गिरी घूसर वर्ण की और टेढ़ी-मेढ़ी होती है। हिमालय में पांच से दस हजार फुट की ऊँचाई तक होता है।

प्रयोज्य अंग—फल की गिरी

मात्रा—१ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक है। यह वातशामक और कफ पित्त वर्धक है। बल्य, वृहण, वृष्य है। दिमाग को ताकत देता है। पक्षाघात, अर्दित और वात विकारों में लाभ करता है। जो गुण बादाम में बताए गए हैं वही अखरोट के हैं।

आधुनिक मत—फल में आक्जोलिक एसिड, बीरियम साल्ट और Jugl-
andia acid होते हैं।

इसकी गिरी का छिलका जलाकर खाने से बवासीर का खून बन्द हो जाता है।



L

LABIATAE FAMILY

तुलस्यादि वर्ग

स्वरूप—काण्ड प्रायः चतुष्कोण

पत्र—अभिमुख (Opposite) उपपत्र रहित, सुगन्धित

पुष्प—पुं केशर ४ (दो छोटे, दो बड़े) बीजकोश ४ खण्ड वाला

१८२

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

बीज—प्रति खण्ड १ बीज

विशेष—बीजों को पानी में भिगोने से लुआव होता है।

१२५ उस्तूखूदस

अंग्रेजी—Aratban laveneder

लॅटिन—Levendula Steachas

विवरण—इसका पौधा जाड़ों के दिनों में पहाड़ों की तर भूमि में पैदा होता है जिसकी ऊँचाई करीब एक हाथ ऊँची होती है। इनके पत्ते गोलाकार एवम् कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल बैंगनी रंग के, छोटे-छोटे रूएँदार और कपूर जैसी गन्ध वाले होते हैं। इनके सूँघने से छींके आती हैं। इसके बीज माकांगनी के समान, छोटे-चपटे और काले-पीले रंग की होती है। यह एशिया माइनर, यूरोप, अरब और भारत के विहार, बंगाल, कश्मीर में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फूल और पत्ते, बीज**मात्रा**—३ से ६ म शा

गुण, कर्म—सूजन को दूर करता, दिमाग, मांस, पेशियों, आमाशय को ताकत देता है। अपान वायु को शुद्ध करता एवम् कफ निकलता है।

यह मानसिक रोग, अर्वांग अर्दित, खांसी, ठण्ठा नजला व जुकाम और जोड़ों की दर्द को दूर करता है। यह दिमाग और उसके दोषों को साफ करता है। इसका जोशान्दा मांस पेशियों के दर्दों और जोड़ों के दर्द को मिटाता है। यह यकृत की शीत शोथ और पेट के रोगों को मिटाता है। स्मरणशक्ति बढ़ाता है। यह बुखार, हृदय रोग, जिगर, तिल्ली, बवासीर, मृगी में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके फूलों में एक लाल पीले रंग का तैल मिलता है। यह तेल खून को बन्द करने और घावों को पूरने के काम में आता है।

कर्नल चोपड़ा के अनुसार यह औषध कफ निःसारक और कृमिनाशक है। यह पेट के अफारे को मिटाता और सूजन तथा प्रदर में लाभ करता है।

१२६. जूफा

Hyssopus Officinalis

विवरण—इसका पौधा छोटा और जमीन पर फैलने वाला होता है।

तुलस्यादि वर्ग

१८३

इसके पत्ते खुशबूदार और कड़वे होते हैं। इसके कोई-कोई पत्ते मेंहदी के पत्तों जैसे होते हैं, इसकी शाखाओं की हरेक गांठ पर पीले रंग का फूल लगता है। यह ईरान, श्याम, पंजाब और काश्मीर में पैदा होने वाला है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—३ से ६ मांशा।

गुण-कर्म—कफ को मुलायम कर के दस्तों के द्वारा निकाल देती है, सूजन जमे हुए खून को हटा देती है। पेट के कीड़ों को मारती है। अर्वांग, पुरानी खांसी, फेफड़ों की सूजन, छाती, पसली और आमाशय के दर्द और 'कालिक पेन' को दूर करती है। नजला, सांस की रुकावट, दमा में फायदा करती है। आँतों के व्रण, पेचिश, दृक्व और मूत्राशय की सूजन तथा जलोदर में लाभ करती है।

इसके लेप से सूजन मिटती है, त्वचा के दागों पर इसके क्वाथ की मालिश की जाती है।

आधुनिक मत—इसमें टैनिन, राल, वसा, शर्करा होती है।

कनल चोपड़ा के मत से इसके पत्ते उत्तेजक, अग्निवर्धक, कफ निःसारक एवम् मासिक स्राव ठीक करने वाला है।

कोमान इसके फूलों के क्वाथ को दमा और पुरानी खांसी में लाभकारक बताते हैं।

१२७. तुब्य बलंगू

Salvia Aegyptiaca

विवरण—यह एक छोटी और बहुशाखी झाड़ी है जिसके पत्ते बरछी के आकार के और तीखी नौक के होते हैं। इसके फूल मंजरी में लगते हैं। इसके बीज लम्बे गोल, चमकीले और काले रंग के होते हैं। यह वनस्पति पंजाब के मैदान, सिंध और बलूचिस्तान में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग बीज

मात्रा—३ से ६ मांशा

गुण कर्म—यह दिल को ताकत देता है, पागलपन कम्पन और पेचिश को दूर करता है यह प्रमेह का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसके बीज दस्त, मुजाक और बवासीर को दूर करते हैं आँखों के रोगों को दूर करते हैं।

१२८. तुलसी

आयुर्वेदीय पर्याय—ग्राम्यार सुलभा, बहुमंजरी, शूलन्धी यूनानी—बादरूज
अग्नेजी—Holy basil लैटिन—Ogimuw Sanctum

विवरण—इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा होता है। जिसमें लगभग १ इंच लम्बे, गोल से और खुशबूदार पत्ते आते हैं। फूलों की मंजरी ५ से ६ इंच लम्बी होती है। यह सदियों में लगता है। चपटे लाल रंग के बीज आते हैं। यह सारे भारत में पाई जाती है। प्रायः सफेद और काली दो जातियाँ होती हैं।

प्रयोज्य अंग—पत्ते, जड़, बीज।

मात्रा—रस १ से २ तोला, बीज पूर्ण १२ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होती है। हृद्य, दाह, पित्त-कारक, दीपन, वातकफ नाशक कुष्ठ, मूत्रकृच्छ, रक्तविकार और पार्श्व शूल नाशक है, हिक्का, कास, श्वास और विष नाशक है यह दुर्गन्ध नाशक है।

आधुनिक मत—पीले रंग का सुगन्धित तेल होता है जो जम जाता है और तुलसी कपूर कहलाता है।

डा० आर० एन० क्षौरी का मत है कि काली मिर्च के साथ इसे देने से फेफड़ों का कफ निकलता है। सूखे पत्तों का चूर्ण जुकाम व कफ नाश के लिए दिया जाता है। ज्वर नाशक है। नीम्बू के साथ लगाने से दाढ़ मिटाती है। इसके बीज मूत्रकृच्छ नाशक होते हैं।

१२९. बादरंज बोया

Nepta Hindustana

विवरण—यह एक छोटी जाति की बूटी है जो प्रत्येक वर्ष पैदा होती है, इसमें विशेष प्रकार की गन्ध आती है। यह पंजाब, बंगाल, मध्य भारत और दक्षिण में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—५ से ७ माशा

गुण-कर्म—दिल को खुशी और ताकत देती है। वायु के लिए लाभकारक

तुलस्यादि वर्ग

१८५

है। रक्तशोधक है। सूजन मिटाती और दर्द दूर करती है। इससे सब प्रकार के ज्वर दूर होते हैं।

प्रायः कफज और वातज रोगों को दूर करती और अपस्मार, अर्वांग में दी जाती है। मुँह की बदबू को दूर करने के लिए इसे चबाते हैं इसका शबंत और अर्क बना कर प्रयोग किया जाता है।

नेपाल में यह दवा सुजाक को दूर करने के लिए दी जाती है।

१३०. पुदीना

आयुर्वेदीय पर्याय—पूतिहा, रोचनी, पुदिना

यूनानी—फूदनज

अंग्रेजी—Spear-mint

लैटिन—Mentha Viridis

विवरण—यह एक प्रसिद्ध वृद्धी है जो तेज सुगन्ध की होती है। इसके हरे पत्ते कोमल और किनारे कटे हुए होते हैं। इसका डंठल मुलायम होता है और उसके चारों तरफ फूलों के गुच्छे लगे होते हैं। यह जंगली, पहाड़ी और बस्तानी तीन तरह का होता है।

प्रयोज्य अंग—पौधा

मात्रा—रस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, और कटु विपाक है। वातकफ नाशक, दीपन, रोचन, हृद्य, छिदि एवम् आध्मान नाशक है। अग्नि मान्द्य, शूल, कृमि रोग, विसूचिका, अतिसार, जीर्ण ज्वर एवम् कास नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें मुख्य तत्व 'थाइमोल' होता है। इसके अतिरिक्त राब, गोद और टैनिन होते हैं।

पुदीने से एक फूल तैयार किया जाता है जो Menthal कहलाता है और पाचक दवाओं में बहुत प्रयोग किया जाता है।

१३१. शातर

Zataria Multiflora

विवरण—यह एक वृद्धी है। इसमें फल नीलेपन पर आते हैं। यह खुशबूदार एवम् स्वाद में तेज होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं।

प्रयोज्य अंग एवम् मात्रा—इस वृद्धी की मात्रा ५ से १० माशा तक है।

गुण कर्म—सूजन को मिटाती है। अपानवायु निकालती और दर्दों को मिटाती है। आमाशय, यकृत, आंतों के दोषों को निकालती है। अश्मरी को निकालती व पेशाब और मासिक स्राव को साफ करती है। पेट के कीड़ों को नष्ट करती है। दर्द दान्त में इसके गरारे करते और सूजन मिटाने को शहद में मिलाकर लगाते हैं। वायु गोले के दर्द, मसाने के दर्द, गर्भाशय के दर्द में इसे पिलाते और लगाते हैं। खांसी, दमा में फेफड़ों से बलगम निकालने के लिए इसे शुष्क अंजोर के साथ देते हैं। इसका पानी निचोड़कर कान के दर्द को और आंख में फूले को मिटाने के लिए डालते हैं। यह कामशक्ति को बढ़ाती है।



LAURACEAE FAMILY

कर्पूरादि वर्ग

स्वरूप—सदैव हरित

पत्र—सादे (Simple) उपपत्र रहित, तैलग्रन्थि युक्त

पुष्प—शाखाग्रोद्भूत (Apical)

पुंकेसर (Androeceum) २—३

फल—मांसल

१३२. तैजपात

आयुर्वेदीय पर्याय—पत्रज, तमालपत्र;

यूनानी—साजिज हिन्दी

अंग्रेजी—Folia Malabathyr **लैटिन**—Cinnamomum Tamalla

विवरण—इसका पेड़ २० से ४० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल भूरे और पीले रंग की होती है। इसमें लम्बे २ पत्ते होते हैं जिनमें रेखाएँ उभरी रहती हैं। इनमें तीक्ष्ण गंध आती है और इसके फूल संफेद रंग के होते हैं। फल आधा इंच लम्बा और पक जाने पर काले रंग का होता है। यह हिमालय में ३ हजार से ८ हजार फुट की ऊँचाई तक सिलहट और खासिया की पहाड़ियों में होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्ते

मात्रा—२ से ४ माशा।

कपूर रादि वर्ग

१८७

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, लघु, पिच्छिल, तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और मधुर विपाक है। यह कफवातनाशक है। बवासीर, हृदय रोग, अरुचि और पीनस में लाभ करता है। अजीर्ण, उदरशूल और आम विकार में लाभ करता है।

आधुनिक मत—कर्नल चौपड़ा का कहना है कि इसके पत्तों का लेप बिच्छु के जंहर को खत्म करता है।

१३३. दालचीनी

आयुर्वेदीय पर्याय—स्वाद्वा, तनुत्वक्, दारुसिता; त्वक् यूनानी—दारचीनी
अंग्रेजी—Cinnamon **लैटिन**—Cinnomomum Zeylanicum

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम ऊँचाई का होता है। पेड़ के ऊपर मटेने और लाल रंग की $\frac{1}{2}$ से १ इंच मोटी छाल होती है। इसके पत्तों पर बारीक रूपेँ होते हैं। पत्तों का ऊपरी हिस्सा चमकीला और ३-५ धारियों वाला होता है। इसमें घूसर रंग के फल आते हैं और गहरे बैंगनी रंग के लगभग १ इंच लम्बे लगते हैं। इसका आदिम प्रमुख स्थान लंका है, किन्तु अब बर्मा, चीन, दक्षिणी भारत और हिमालय प्रदेश में भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्ते

मात्रा—५ से १५ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु-तिक्त मधुर रस, लघुरूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफवातशामक, पित्तकारक, वमन, अरुचि, अग्निमान्द्य और आध्मान नाशक है। मुखशोष, तृष्णा और दांतों के दर्द को मिटाता है। हृदय विकार, वस्ति के रोग, अर्श, कृमि, कास, अपीनस और आक्षेप नाशक है। शुक्ल और वर्ण्य है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल, राल, एसिडिसिनेमिक और टेनिन आदि होते हैं। यह दिल को ताकत देती, दौरा मिटाती और एण्टीसेप्टिक प्रभाव करती है। आध्मान, जिह्वास्तम्भ, संग्रहणी, अरोचक, उष्णवात, आन्त्रिक ज्वर में लाभ करती है। इसके एसिड का इन्जेक्शन यक्ष्मा में दिया जाता है।

LEGUMINOSAE FAMILY

शिखरी वर्ग

Caesalpinaceae Sub Family

पूतिकरञ्जादि उपवर्ग

पत्र—संयुक्त Compound

पक्षाकार—एकान्तर, उपपत्र प्रायः नहीं

पुष्प—मञ्जरी के आकार में, पुष्प बाह्यकोश (Clayx) के दल ५

प्रायः पृथक् पृथक् (Poly Sepalous) एक दूसरे के ऊपर

पुष्पाभ्यन्तर कोश (Corolla) के दल ५

पुं केशर—(Androceum) १०

फल—सेम

१३४. अशोक

आयुर्वेदीय पर्याय—अशोक, हेमपुष्प, बंजुल, ताम्रपल्लव, गंध पुष्प

लैटिन—Saraca Indica.

विवरण—इसका वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचा होता है। पत्ते ३ से ६ इंच लम्बे आम के पत्तों की तरह होते हैं। फूल गुच्छों के रूप में आते हैं। जिनका रंग आरम्भ में पीताभरक्त होता है परन्तु बाद में रक्त हो जाता है। इसमें फूल बसन्त में आते हैं और गर्मी में फल आते हैं जिनका आकार ३ से १० इञ्च लम्बा और $1\frac{1}{2}$ से २ इञ्च चौड़ा होता है। इसमें ४ से ८ इञ्च लम्बे चपटे बीज निकलते हैं। यह बंगाल, दक्षिण, भारत और बर्मा में होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, बीज, फूल

मात्रा—क्वाथ के लिए छाल १ से २ तोला बीज या फूल चूर्ण १ से ३ मा०

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त रस; लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक; दर्द नाशक एवं विष नाशक है। अतिसार, प्रवाहिका, प्यास और कृमिरोग नाशक है। यह रक्तविकार, रक्त-पित्त एवं शोथ का नाश करता है। दाह नाशक है। अशोक का विशेष प्रयोग रक्तप्रदर श्वेत प्रदर, कष्टातर्व तथा गर्भाशय शिथिलता में किया जाता है। इसके बीज पेशाब ज्यादा लाते हैं और पथरी का नाश करते हैं।

आधुनिक मत—इसकी छाल में हीमेटाक्सिलिन, टैनिन और कैटेनिन तथा कुछ लौह होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने इसे रसायन व उत्तेजक बताया है। इसका काढ़ा गर्भाशय के रोगों को दूर करने वाला है। यह खासकर रजोविकार (Menorrhagia) को दूर करता है।

१३५. अमलतास

आयुर्वेदीय पर्याय—आरग्वध, राजवृक्ष, कृतमाल, दार्घफल, स्वर्ण भूषण

अंग्रेजी—Pudding Pipe Tree

लैटिन—Cassia Fistula.

विवरण—इसके वृक्ष बड़े २ होते हैं जिनमें जामुन की सी पत्तियाँ लगती हैं। इनके ३ से ६ तक जोड़े फटते हैं और यह बहुत चिकनी होती है। इसमें पीले रंग के लम्बे और पाँच-पाँच पंखड़ियों वाले फूल लगते हैं जो गुच्छों में लगे होते हैं। इनमें गन्ध नहीं होती। फूलों के झड़ने पर इनमें हरे रंग की फलियाँ जो भीतर से पीले रंग की होती, लगती हैं। इनकी लम्बाई '१' से ३ फुट तक होती है। इसके भीतर काले रंग का कुछ गीला सा गूदा निकलता है, जिसके बीच-बीच में बीज होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—गूदा, बीज, छाल, मूल **मात्रा**—गूदा १ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु एवं स्निग्ध गुण, शीत वीर्य एवं मधुर विपाक है। हल्का दस्तावर, वातव्याधि, हृदय, रोग, रक्तपित्त, उदावर्त, ज्वर एवम् शूल नाशक है। रुचि वर्धक, कुष्ठ एवम् पित्त रोगों में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके गूदे में ग्लूटिन, पेक्टिन, रेजिन एवम् शर्करा पाई जाती है। इसमें केलशियम आक्जलेट भी होता है। इसका गूदा रेचक है। यदि इसे अकेले दिया जाए तो यह ऐंठन पैदा करता है इसलिए इसे दूसरे द्रव्यों के साथ दिया जाता है।

इसके बीज वामक हैं, मूल तीव्ररेचक है।

१३६. इमली

आयुर्वेदीय पर्याय—अम्लिका, चिंचा, तिल्लिड़ी।

यूनानी—तमरहिन्दी

अंग्रेजी—Tamarind

लैटिन—Tarmindus Indicus

विवरण—इसके वृक्ष ऊँचे और घने फैले हुए होते हैं। इनका तना मोटा होता है और छाल फटी हुई होनी है। इमली के पत्ते आंबले के पत्ते जैसे होते हैं। इसमें लाल रंग के छोटे-छोटे फूल आते हैं, फूल वसन्त में आते हैं और गर्मियों में फली लगती है जो कच्चे रहने पर हरी और पकने पर लाल हो जाती है। फली का गूदा रक्ताभ होता है जिसमें काले, लाल रंग के बीज होते हैं। यह सारे भारत में आसानी से पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, गूदा, बीज।

मात्रा—गूदा २ से ४ तोला, बीज १ से ३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—इमली खट्टी, भारी, वातनाशक, पित्त कफ कारक एवं रक्त रोग कारक होती है। पकी इमली अग्निप्रदीपक, रूखी, दस्तावर, गरम तथा कफवात नाशक है।

आधुनिक मत—डा० आर. एन. क्षोरी ने लिखा है कि पकी इमली का गूदा 'स्कर्वी' रोग को नष्ट करता और मृदु विरेचक होता है। यह बुखार, प्यास और पित्त के रोगों में व्यवहार किया जाता है। यह गूदा पुरानी कब्ज मिटाता है। कच्चे इमली के पत्तों का लेप करने से सूजन मिट जाती है। इमली के बीज आंव और खून के दस्तों में फायदा करते हैं।

१३७ इक्लोलुल-मलिक (नाखूना)

Tringonella Uneata

विवरण—यह एक प्रकार की कोमल वनस्पति है। इसके पत्ते गोल होते हैं और ३-३ के गुच्छों में होते हैं। इसके फूल सफेद और लम्बे होते हैं। इसकी फली लम्बी और गोल होती है। फली में २-३ बीज होते हैं। यह परसिया और अफगानिस्तान में पैदा होती है। इसकी फलियाँ नाखून के बराबर की होती हैं। इसलिए इसे नाखूना भी कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—फली

मात्रा—२ माशा ४ माशा

गुण कर्म—यह शोथ हटाती, कठोर शोथ को मुलायम करती और बल देता है। इसकी मालिश या लेप करते हैं। यकृत प्लीहा आमाशय और गर्भाशय के दर्दों को दूर करने के लिए, इसका प्रयोग खाने के रूप में भी किया

जाता है। इन अंगों की शोथ को भी मिटता है। इसका प्रयोग लगाने में भी करते हैं। अर्धांग में इसका क्वाथ पिलाते और बाह्य रूप में भी प्रयोग करते हैं। इसके क्वाथ का घूम्रपान करने से आंतों को मिलाता है।

आधुनिक मत—कर्नल चौपड़ा के मतानुसार यह संकोचक और निद्राकारक दवा है। इसमें 'कोमेरिन' नामक तत्व होता है। यह दिल की घड़कन को कम कर देता है। कहा जाता है कि यह पथरी को तोड़कर निकाल देता है। श्वास में यह लाभ करता है।

१३८. कचनार

आयुर्वेदीय पर्याय—काञ्चनार, कांचक, गण्डारी, युगपत्रक

लैटिन—*Baubinia variegata*.

विवरण—कचनार के वृक्ष १५ से २० फुट तक ऊँचे होते हैं। यह भुकी हुई और मुलायम शाखा का वृक्ष है। इसकी छाल १ इंच मोटी, खुरदरी, भूरी और सफेद रंग की होती है। इसके पत्ते हरे-चीड़े होते हैं जो डंठल के पास एक और अग्रभाग में दो भागों में होते हैं। फूल भेद से ३ प्रकार का कचनार कहा है लाल, पीला और सफेद। इन फूलों में थोड़ी र गन्ध आती है। फलों के बाद इसमें फलियाँ लगती हैं जो स्वाद में कड़वी होती हैं। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग - छाल, फूल, पत्ते, फली **मात्रा**—फूल २ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत - कचनार शीतल, ग्राही, कसैला, कफपित्त, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रण को नष्ट करने वाला है।

आधुनिक मत—डा० क्षौरी ने लिखा है कि इसकी छाल में 'टेनिन' होती है। इसका छाल और कलियाँ रसायन व कषाय है। इसकी छाल का क्वाथ कुष्ठ, गण्डमाला और चर्मरोगों का नाश करता है। कलियों का क्वाथ बहते हुए खून में, खाँसी में लाभ करता है।

१३९. करञ्जवा

आयुर्वेदीय पर्याय—लताकरञ्ज, पूतिकरञ्ज, घृतकरञ्ज, कण्टकीकरञ्ज
यूनानी—इकतमकत

अंग्रेजी—Fever Plant

लैटिन—Caesalpinia Bonducella

विवरण—इसका क्षुप लताकार होता है। इसके तने और शाखाओं पर कांटे होते हैं। पत्ते १ इंच लम्बे और पक्षाकार होते हैं। बरसात में पीले रंग के फूल आते हैं। सर्दी में फल लगते हैं जो ३ इंच लम्बे चपटे और कांटों से ढके होते हैं। प्रत्येक फल में दो बीज निकलते हैं। बीज का छिलका सख्त और नीले घूसर वर्ण का होता है और अन्दर की गिरी सफ़ेद होती है। यह सारे भारत में विशेषकर समुद्र के निकटवर्ती प्रदेश में उत्पन्न होता है। बंगाल और बम्बई प्रान्त में अधिक होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, मूल, पत्र।

मात्रा—बीज और मूल का चूर्ण १०-२० रत्ती पत्र स्वरस १-२ तोला।

आयुर्वेदिक मत—यह कटु तिक्त रस, लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफवात शामक है। दीपन, अनुलोमन, यकृत, उत्तेजक, रेचक और कृमि नाशक है। ब्रणरोपक, रक्तशोधक एवम् ज्वर नाशक है। कुष्ठ, मूत्रकृच्छ का, श्वास में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में तेल, प्रोटीन और स्टार्च होते हैं। तिक्त सत्व होता है जो 'नाटिन' और 'वाण्डुसिन' कहलाता है। डा० आर० एन० क्षौरी का मत है कि इसके बीज बलकारक, ज्वरनाशक और कृमिनाशक है।

डॉयमाक का कहना है कि इसके बीज घाव भरने वाले और ज्वर निवारक होते हैं। इसके आधे बीज को लौंग के साथ देने पर दर्द मिटता है। और काली मिर्च के साथ देने पर मलेरिया दूर होता है। कुष्ठ में यह खाने के काम में लिए जाते हैं। यह कृमिनाशक होते हैं।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि इण्डिजेनस ड्रग्स कमेटी ने इसकी परीक्षा की और यह बताया कि यह उत्तम बलदायक व उपयोगी ज्वरनाशक पदार्थ है।

१४०: कसौंदी

आयुर्वेदीय नाम—कासमर्द, कासारि,

यूनानी—कसौंजी

अंग्रेजी—Negro coffee Plant

लैटिन—Cassia Occidentalis

विवरण—इसका क्षुप ३-६ फुट तक ऊँचा होता है जो वर्षा में पैदा हो

शिम्बी वर्ग

१६३

जाया करता है . इसकी शाखाएँ कुछ मुलायम और बँगनी रंग की होती हैं । इसके पत्ते एक तरफ लगे हुए और मिले हुए होते हैं । हरेक डंठल में ५-५ पत्तियाँ होती हैं इसमें पीले रंग के फल लगते हैं जो छोटे होते हैं । फलियां ३-४ इञ्च लम्बी, पतली और गोलाकार होती हैं । प्रत्येक में १०-३० बीज होते हैं । यह हिमालय प्रदेश से बंगाल तक, दक्षिण भारत, लंका और बर्मा में होते हैं ।

प्रयोज्य अंग—पत्ते, बीज, जड़ ।

मात्रा—रस १/२ से १ तोला । बीज चूर्ण १ से २ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त मधुर रस, रुक्ष, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है । कफवातशामक और पित्त सारक है, पाचन एवम् कंठ शोधन, कास, श्वास नाशक, मूत्रल, कुष्ठनाशक, वेदना नाशक एवम् आक्षेप शामक है । लेप कुष्ठ एवम् विष नाशक है ।

आधुनिक मत—इसकी पत्तियों से सनाय जैसा रेचक तत्व होता है जिसे Cathartin कहते हैं । बीजों में टैनिन एसिड, गैलिक एसिड, क्राइसोफेनिक एसिड एवम् एक्रोसीन होती है ।

कर्नल चौपड़ा ने यह द्रव्य ज्वर नाशक, रेचक और सर्व विष नाशक बताया है ।

१४१ पतंग

आयुर्वेदीय पर्याय—पतंग, रक्तसार, रंजन, कुचन्दन

यूनानी—वकम

अंग्रेजी—Sappan wood

लैटिन—GaisalPinca Sappan

विवरण—इसके वृक्ष चन्दन के वृक्ष की तरह बड़े-बड़े होते हैं । इसमें और लाल चन्दन में बहुत समानताएँ हैं । पहिचान केवल यह है कि चन्दन की लकड़ी सुगन्धित होती है और पतंग में गन्ध नहीं होती । इसमें लम्बी २ पत्तियाँ आती हैं और ऊपर की पत्तियों में फूल लगते हैं । यह मद्रास में ज्यादा होते हैं ।

प्रयोज्य अंग—लकड़ी

मात्रा—२-३ माशा

आयुर्वेदिक मत—पतंग मधुर, शीतल, पित्त कफ एवम् रुधिर विकार

नाशक है। इसमें पीले चन्दन के समान गुण हैं। विशेषकर यह दाहशामक है। व्रण रोपक एवम् कान्तिवर्धक है। यह संग्राही होता है। चन्दन की अपेक्षा हीन गुण है।

आधुनिक मत— इसमें उड़नशील तैल पाया जाता है, जिसमें 'फेलनड्रिन' और 'ओसीमन' मुख्य तत्व होते हैं।

यह उत्तेजक, बलकारक और रक्तशोधक होता है, कोमान का कहना है कि यह अतिसार एवम् रक्त के स्राव को बन्द करता है।

१४२. पवाँड़

आयुर्वेदीय पर्याय—प्रपुन्नाट, दन्द्रुघ्न, मेषलोचन, चक्री यूनानी—संगैसबूया
अंग्रेजी—Ringworm Plant लैटिन—Cassia Tora

विवरण—इसका क्षुप वर्षायु होता है। यह २-५ फुट ऊँचा और दुर्गन्धित होता है। मेथी के जैसे पत्ते 1-1½ इंच लम्बे होते हैं। पत्ते रात में आपस में मिल जाते हैं। पीले रंग के फूल आते हैं। इसमें लम्बी फली लगती है। जो ४-६ इंच की चौकोर होती है हरेके फली में वेलनाकार घूसर वर्ण के २०-३० बीज निकलते हैं। यह सारे भारत में विशेषकर उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज और पत्ते।

मात्रा—बीज चूर्ण १-३ माशा, पत्ते का रस ½ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत—बीज कटु रस, लघु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होते हैं। पत्ते मधुर एवम् शीतवीर्य होते हैं। कफवातशामक, नाड़ियों के लिए बलप्रद है। यह कटु और उष्ण होने से अनुलोमक, कृमिनाशक एवम् यकृतउत्तेजक होता है। रक्तविकार, हृदय रोग, कास, श्वास एवम् अशं में लाभ करता है। कुष्ठ, कण्डु, दाद एवम् विष नाशक है। मेदनाशक एवम् गुल्म-कृमि रोगों में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत— इसके बीजों में 'इमोडिन' जैसी एक चीज निकलती है जो गुणों में 'क्राइसोफानिक एसिड' से मिलती-जुलती है। पत्तों में 'कैथाटिन' की तरह की और सनाय की पत्तियों जैसा लाल रंजक द्रव्य होता है तथा कुछ खनिज द्रव्य होते हैं।

शिम्वी वर्ग

१६५

यह रसायन है एवम् चर्म रोगों की अचूक दवा है। भिलावे से जल पर पत्तों को लेप लगाना चाहिए। बीज का लेप दाद, पामा एवम् प्लेग की गाँठ पर किया जाता है। पत्तों की पुलिटिश कच्चे फोड़ि को पकाती है। पत्तों का क्वाथ मृदुरेचक है।

१४३. सनाय

अंग्रेजी—Indian Senna

लैटिन—Cassia Augustifolia

विवरण—इसका सीधा क्षुप २-३ फुट ऊँचा होता है, पत्ते जुड़े हुए, पत्तियां १ से २ इंच लम्बी होती हैं। इसमें अमलतास जैसे पीले रंग के फूल आते हैं। इसमें चपटी फली आती है और पकने पर काले रंग की हो जाती है। हरेक फली में ५-६ बीज होते हैं। यह अरब में पैदा होता है और भारत में विशेष कर मद्रास में होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्ते और फल।

मात्रा—१ से ३ माशा।

गुण कर्म—यह वायु और कफ में लाभ करती है। यह मृदु रेचक होती है और वातानुलोमक है। इसके प्रयोग से आंतों की गति और स्राव बढ़ जाते हैं। यकृत को उत्तेजित करती है। यह कृमिनाशक है और रक्त साफ करती है। यह ज्वर, उदर विकार और आमवात में बहुत लाभ करती है। इसकी पत्ती को सिरके में पीसकर चर्मरोग नाशक गुण के लिए लेप करते हैं।

सनाय का प्रयोग करने से जी मिचलता, मरोड़ होती और प्यास लगती है। इसमें बचने के लिए इसके चूर्ण के साथ सौंफ, सोंठ, गुलकन्द, सैधानमक और मिश्री मिलाकर देते हैं।

आधुनिक मत—इसकी पत्तियों में कैम्फरीन, ऐन्थाक्विनोन, आइजो-रैमनेटिन, कैल्शियम आंक्जलेट, काइसोफनिक एसिड और कैथार्टिक एसिड होते हैं। कैथार्टिक एसिड इसमें विघेष्कर रेचक कर्म करता है।

सनाय का प्रयोग करने के पश्चात् यह शरीर के सभी स्रावों से बाहर निकलती रहती है। माता को जब सनाय खिलाई जाती है तो वह दूध द्वारा निकलती है और बच्चे को दस्त आ जाता है।



१६६

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

LEGUMINOSAE FAMILY

शिमबी वर्ग

Mimosaceae Sub Family

बबूलालादि उपवर्ग

पत्र—संयुक्त पक्षाकार

पुष्प—कन्दुकाकार, सूक्ष्म, समूह में, दल तलभाग में जुड़े हुए

फल—सेम चपटी, सन्धि स्थान से फटने वाली

१४४. कीकर

आयुर्वेदीय पर्याय—बबूल, किकिरात, सपातक, आभा यूनानी—मुगीलां

अंग्रेजी—Acacia Tree

लैटिन—Acacia Arabica Arabica

विवरण—इसका वृक्ष २५ से ३० फुट तक उँचा होता है। जिसकी छाल घूसर वर्ण की होती है। इसकी शाखाएँ सीधी और काँटे वाली होती है। पत्ता लम्बा होता है जिसमें १०-२० जोड़े पत्तियाँ होती हैं। पीले रंग के फूल आते हैं। फली ३-६ इंच लम्बी, $\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी, चपटी और सफेद रंग की होती है इसके भीतर ८ से १२ बीज होते हैं। इसकी उत्पत्ति भारत के सभी स्थानों पर विशेषकर जंगलों में होती है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्ते, फल और गोंद।

मात्रा—फल चूर्ण और गोंद ३-३ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, गुरु रूक्ष गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक होता है। गोंद चिकना, मधुर कषाय रस, मधुर विपाक एवम् शीतवीर्य होता है। बबूल कफ पित्तशामक, स्तम्भक, और कुप्रिनाशक है। दाहनाशक, कुष्ठ-नाशक व विषनाशक है। प्रमेह, अतिसार, प्रवाहिका में लाभ करता है। गोंद वातपित्तशामक, स्नेहक एवम् संग्राहक है। वृष्य, मूत्रल एवं बलकारक है।

आधुनिक मत—फल में टैनिन होती है। गोंद में अरेबिक एसिड, कैल्शियम, गैलिक एसिड, मैगनीशियम व पोटेशियम होता है।

छाल कषाय व बलकारक है और 'ओक बार्क' के स्थान पर प्रयोग करते हैं। गोंद, ठन्डा, स्निग्ध और पोषक है। यह मधुमेह में लाभ करता है। फल खाँसी में लाभ करता है।

शिम्वी वर्ग

१६७

१४५. खैर

आयुर्वेदीय पर्याय—खादिर, रक्तसार, दंत धावन, बहुशल्य

अंग्रेजी—Catechu Tree

लैटिन—Acacia Catoechne

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसकी छाल खुरदरी और कांटों से भरी होती है। छाल का रंग मैला होता है इसमें इमली के जैसे पत्ते लगते हैं जो ३ से ४ इंच लम्बे होते हैं। इसमें ३० से ५० जोड़े पत्तियाँ रहती हैं जिन पर रूआ होता है। इसमें पीले रंग के छोटे २ फूल लगते हैं। इसमें २ से ४ इंच लम्बी फली लगती हैं जो पतली और मैले चमकदार रंग की होती हैं। प्रत्येक फली में ५ से ८ छोटे २ गोल बीज निकलते हैं। इसकी लकड़ी से खैरसार (कथा) बनाया जाता है। हिमालय में ५ हजार फुट की ऊँचाई तक होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, कथा।

मात्रा—छाल १ से ३ माशा, कथा ३ से ६ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—खैर तिक्त कषाय रस, लघु-रूक्ष-गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। प्रभाव कुष्ठघ्न है। कफपित्तशामक है। दांतों के लिए हितकारक, रुचिकारक, पाचन एवम् कृमिनाशक है। शोथहर एवं रक्तस्तम्भक है। प्रमेह, ज्वर, कास, कण्डु एवं व्रण नाशक है। मेदरोग, प्लीहा रोग नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें 'कैटेच्यूटेनिक एसिड' और 'कैटेचीन' पाया जाता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि यह बलप्रद और रसायन है। पाचन करता और ज्वर दूर करता है। संग्रहणी, बच्चों के आमालिप्ति एवम् रक्तालिसार, मलेरिया स्क्वी में लाभ करता है। अधिक लालास्राव प्रदर व रक्तस्राव में लाभ करता है।

१४६. छुईमुई

आयुर्वेदीय पर्याय—लज्जालु, शमीपत्रा, समझा, रक्तपादी

अंग्रेजी - Sensitive Plant

लैटिन—Mimosa Pudica

विवरण—इसका क्षुप कांटों वाला और छोटा होता है। पत्ते का डंठल लम्बा होता है और उसमें छोटे डंठल छोटी २ पत्तियों से भरे हुए होते हैं। इन

पत्तियों को छुआ जाए तो वह सिकुड़ जाते हैं। गुलाबी रंग के फूल रुई जैसे मुलायम होते हैं। इसमें $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच लम्बा फली लगी रहती हैं जिसमें ३-४ बीज होते हैं, पहले केवल 'ब्राजील' में पैदा होती थी अब भारत में भी होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़, पञ्चांग

मात्रा—रस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक है। यह कफ पित्त शामक, रक्तपित्त शामक, स्तम्भक, रक्तशोधक है। प्रमेह नाशक, विषनाशक व वृष्य है। यह क्षुप व्रण और भगन्दर में लगाया जाता है। प्रदर प्रवाहिका व अतिसार में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में १०% 'टैनिन' होती है। इसका लेप शोथ कुष्ठ और पुराने जख्मों में लाभ करती है।

१४७. शिकाकाई

आयुर्वेदीय पर्याय—शीतला, सप्तला, सारा, विमला

यूनानी—शिकाही

विवरण—इसका क्षुप छोटा और काँटेदार होता है। इसमें तिकोने, कुछ मोटे और रूँददार पत्ते लगे होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं, और बबूल जैसी फलियाँ लगती हैं। यह भारत के जंगलों में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल और पत्ते

मात्रा—काढ़ा ४-८ तोला

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु तीक्ष्ण गुण, शीत वीर्य और कटुविपाक है। कफपित्त शामक व वातवर्धक है। शोथ, आनाह, उदावत नाशक है। कृष्ठ, कृमि, अर्श एवं गुल्म रोग नाशक है। हृदय को ताकत देती और हृदय के रोगों का नाश करती है। पुरानी खाँसी और साँस में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसकी फलियों में सेपोनिन, मैलिक एसिड, ग्लूकोज आदि होते हैं। इसकी फली को पानी में भिगोने से रीठे की तरह के भाग हो जाते हैं। यह बालों को ताकत देता और बढ़ाता है। चर्म रोगों में लाभ करता है।

१४८. सिरिस

आयुर्वेदीय पर्याय—शिरीष, भण्डी, कपीतन, शुक्त।

विवरण—इसका वृक्ष ५०-६० फुट ऊँचा होता है। पत्ते चिकने और रूँददार होते हैं और एक पत्ते में ४ से ८ चौड़ी पत्तियों के जोड़े होते हैं। इस

शिम्बी वर्ग

१६६

में फूल पीले रंग के सफेद अच्छी गन्ध वाले और मुलायम होते हैं। इसमें से १ फुल लम्बी और $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच चौड़ी-चपटी और सख्त फली लगती है। इसमें ६ से १० चिपटे हुए बीज होते हैं। यह दो तरह का होता है। १, सफेद जिसकी छाल सफेद रंग की होती है और २, काला जिसकी छाल काले रंग की होती है। ज्यादा काला होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, बीज, पत्ते और फूल।

मात्रा—छाल ३ से ६ माशा, बीज १ से २ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कषाय, तिक्त, मधुर रस, लघु रूक्ष तीक्ष्ण गुण, ईषत् उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। त्रिदोषनाशक, शोथ, विसर्प, कास, व्रण, विष नाशक है। वर्ण कारक एवं कुष्ठ, कण्डु त्वग्दोष नाशक है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में सपोनिन होती है। डा० क्षीरी ने लिखा है कि इसके बांज ताकत देते और संकोचक होते हैं। यह पेट के रोगों में प्रयोग होते हैं। पत्तों का लेप कण्डु, शोथ में लाभ करता है।



LEGUMINOSAE FAMILY

शिम्बी वर्ग

Papilionaceae Sub-Famiiy

अपराजितादि उपवर्ग

स्वरूप—विभिन्न क्षुप, लता, वृक्ष

पत्र —एकान्तर (Alternate) करतलाकार या पक्षाकार सादे (Simple) अथवा संयुक्त (Compound)

पुष्प —अनियमित—उभयलिङ्गी पुष्प बाह्यकोश के दल—५ कुछ नीचे से जुड़े हुए पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल—नौकाकार में व्यवस्थित

पुंकेसर—(Androceum)—१०

स्त्रीकेसर—(Gynoceum)—१

फल —सेम, दोनों ओर से फटने वाली

१४६. अपराजिता

आयुर्वेदीय पर्याय—आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता यूनानी—माजरीयून

अंग्रेजी—Megrin

लैटिन—Clitoria Ter Naria

विवरण—पुष्प के श्वेत एवं नील होने से यह दो प्रकार की होती है। यह वृक्षाश्रयी लता है जिसके पत्ते छोटे २ गोल होते हैं। लता में से एक डंडी निकलती है, उसमें जोड़े में युग्मपत्र निकलते हैं जो प्रायः ३ या ४ जोड़े होते हैं और अग्र में एक अग्रयुग्म पत्र अवश्य होता है। श्वेत अथवा नीले रंग के आकर्षक एवं सुन्दर पुष्प आपस में दूर २ लगे रहते हैं। यह फूल प्रायः २ इंच लम्बे और डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। इनमें सेम की जैसी फली १ या २ इंच लम्बी लगती हैं। इसमें उड़द के समान काले बीज पाए जाते हैं। यह चिकने होते हैं। यह सारे भारत में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, मूलत्वक्

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु-कषाय रस, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य एवं कटु विपाक होती है। यह मेध्य, कण्ठ को शुद्ध करने वाली, दृष्टि को उत्तम करने वाली, स्मृति एवं बुद्धि वर्धक है। यह त्रिदोष नाशक है। कुष्ठ, मूत्र विकार, आमवात, शोथ, व्रण तथा विष का नाश करती है। यह रेचक होती है। नीले फूल वाली अपराजिता को कामोद्दीपक कहा गया है।

आधुनिक मत—इसके मूल की छाल में स्टार्च, टैनिन और रेजिन होता है। इसके बीजों में स्थिर तैल टैनिक एसिड, ग्लूकोज होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने बताया है कि अपराजिता की जड़ स्निग्ध, मूत्र कारक एवं मृदुरेचक होती है। ज्वर, काली खाँसी, जीर्ण कास, जलोदर, प्लीहा, यकृत वृद्धि में लाभ करती है।

डा० नाइकरनी का कहना है कि अपराजिता के बीज भून कर १० से ३० रत्ती की मात्रा में देने से जलोदर, यकृत वृद्धि, प्लीहा वृद्धि, में लाभ होता है। दृष्टि निर्बलता, कंठक्षत, इलेष्म विकार, अर्बुद एवं शोथ में लाभ करते हैं।

कर्नल चोपरा इसे सर्प विष में भी उपयोगी बताते हैं।

१५० कुलथी

आयुर्वेदीय पर्याय—कुलत्थ, कुलत्थिका

यूनानी—हब्बुलकिल्लत

अंग्रेजी—Horsegram Plant

लैटिन—Dolichos Biflorus

विवरण—यह एक वर्षायु क्षुप है। इसके पत्ते १ से २ इंच लम्बे और

अण्डाकार होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं जो $\frac{1}{2}$ से १ इंच लम्बे होते हैं और १ से ३ तक एक साथ होते हैं। इसमें १ से २ इंच लम्बी टेढ़ी फली लगती है जिसमें ५ या ६ श्याम रक्त वर्ण के चपटे गोल दाने होते हैं। इसके अन्दर दो दाल निकलती हैं। जो सफेद रंग की होती हैं। यह भारत, बर्मा, लंका में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—२ से ४ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस; लघु, रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य। कटु विपाक होता है। यह भेदन करती है। यह वात कफशामक व रक्त पित्त कोपक है। यह विदाह कारक, कृमिनाशक, अनुलोमन, श्वास नाशक, अश्वरी नाशक है। मूत्र कृच्छ्र, ज्वर मेदरोग, हिवका, कास, कष्टातर्व का नाश करने वाली होती है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में प्रोटीन; स्टार्च, फास्फोरिक एसिड, यूरि-एज पाया जाता है। कर्नल चोपरा का कहना है कि कुलथी पेशाब साफ लाती, ताकत पहुंचाती, और मासिक स्राव को ठीक तरीके से लाती है। यह लिकोरिया की हालत में लाभ करती है।

१५१. कौंच

आयुर्वेदीय नाम—कपिकच्छु, आत्म गुप्ता, मर्कटी, अजटा, कण्डुरा

अंग्रेजी—Cowhage Plant

लैटिन—Mucuna Pruriens

विवरण—कौंच की लता सेम जैसी होती है पत्ते छोटे ३ से ५ इंच लम्बे सेम की पत्ती के समान और रोम वाले होते हैं। इसमें १ से १॥ इंच लम्बे नीले या बैंगनी रंग के फूल लगते हैं जो $\frac{1}{2}$ से १ फुट लम्बे झुके हुए डंठल पर लगे रहते हैं। कौंच की फली २ से ३ इंच लम्बी टेढ़ी सी होती है। फली पर गहरे रोम होते हैं। अगर यह शरीर से छू जाए तो तेज खारिश, जलन और सूजन हो जाती है। फली में ५ से ६ पीले रंग के चपटे मटेले से बीज होते हैं। इसका एक भाग काला होता है। बीज की गिरी सफेद होती है। यह भारत के गर्म प्रदेशों में बरसात में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, मूल।

मात्रा—बीज ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस; गुरु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोष नाशक है। बीज परम वाजीकरण है। वृष्य एवं वृंहण है। इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर उसमें कपड़ा भिगोकर योनि में रखने से योनि संकोच होता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में राल, टैनिन, स्नेह द्रव्य एवं कुछ मैंगनीज पाया जाता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि इसके बीज नाडियों को ताकत देने वाले, मासिक स्राव साफ लाने वाले, और वीर्य बढ़ाने वाले हैं। यह प्रदर, मासिक स्राव की विकृति और अर्धांग में प्रयोग किया जाता है। फली के ऊपर लगे रूएँ का चूर्ण गोल कीड़ों को मारता और निकालता है।

१५२. घुंघची

आयुर्वेदीय नाम—गुंजा, रक्तिका, उच्चटा, कार्कचिची यू०—चश्मख रोक्ष
अंग्रेजी—Indian liuorice root **लैटिन**—Abrus Precatorius

विवरण—इसकी लता होती है जिसमें बहुत शाखायें होती हैं। पत्ते इसली के पत्रों जैसे मिले हुए २-३ इंच लम्बे होते हैं। एक पत्ते में २० से ४० तक पत्तियाँ होती हैं। इसमें फूल गहरे गुच्छों में, गुलाबी और नीले रंग के होते हैं। इसमें १ से १½ इंच लंबी, ¼ से ½ इंच चौड़ी फली लगती है; इनमें चार २ मटर जितने दाने निकलते हैं। इसके पत्र और जड़ मुलहठी जैसे मीठे होते हैं। इसके बीज रंग भेद से तीन तरह के होते हैं, सफेद, लाल और काले। यह सारे भारत में, लंका और श्याम में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, जड़ और पत्र।

मात्रा—बीज चूर्ण ½ से १½ रत्ती, जड़ चूर्ण ५ से १० रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कषाय रस, लघु-रूक्ष-तिक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। जड़ मधुर स्निग्ध होती है। बीज वातकफ नाशक, कोढ़, जल्म, चर्मरोग, गंज में फायदा करते हैं, बीजों का लेप किया जाता है। इनमें बनाये गए तैल की मालिश से वायु के रोग मिट जाते हैं। ज्वर, नेत्र-रोग, भ्रम, श्वास, कण्डु, कृमि रोग नाशक है। यह वीर्य वर्धक एवं बल-

कारक है। वाजीकरण, केशवर्धक एवं त्वचा के लिये हितकारक है।

इसकी जड़ और पत्र कास, स्वर भेद और मूत्रकृच्छ में प्रयोग होते हैं। पत्रों का काढा बनाकर गरारे करने से मुखपाक ठीक हो जाता है।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने पर इसके बीजों में विषाक्त प्रोटीन, ऐब्रुसिक एमिड, हिमेग्लुटिनिन, युरिएज नामक तत्व पाए जाते हैं। अलब्युमिन युक्त पदार्थ एब्रिन होता है जिसमें दो चीजें होती हैं, ग्लोबुलिन और एल्बुमोस। एब्रिन तेज और चिड़चिड़ा पदार्थ है, इसको लगाने से सूजन पैदा होकर चमड़ी से खून निकल आता है। इसकी जड़ और पत्रों में ग्लिसर-इजिन होती है।

कर्नल चोपड़ा ने लिखा है कि चिरमिटी दस्तावर, वमन लाने वाली, ताकतवर और कामोद्दीपक है।

डा० नाड़करनी ने लिखा है कि बीज की गिरी का पानी बना कर आंख में टपकाया जाय तो आंख लाल हो जाती है और उस पर फफोले फूल आते हैं, यह तकलीफ ५ से १५ दिन तक रहती है फिर धीरे २ घटने लगती है और उसके साथ ही साथ आंख का फूला (Corneal opacity) भी कट जाता है। पानी बनाने की विशेष विधि होती है। यह उपचार हानिकारक भी हो सकता है। अतः ध्यान से प्रयोग करना चाहिए।

१५३. चन्दन लाल

आयुर्वेदीय पर्याय—रक्त चन्दन, रक्तांग, शुद्ध चन्दन, रक्तसार।

यूनानी—सन्दल अहमर।

अंग्रेजी—Red sandal

लैटिन—*Pterocarpus santalinus*

विवरण—इसका वृक्ष १५ से ३० फुट ऊँचा होता है। छाल काली सी होती है। छाल के नीचे की लकड़ी बाहर की तरफ सफेद और भीतर का भाग लाल होता है। पत्र ३ से ५ इञ्च लंबे और पत्तियां मिली हुई होती हैं। इसकी पत्तियां गोलाई में आगे के भाग में होती हैं। लंबे डंठल में चारों तरफ फूल लगते हैं। इसमें २ से ३ इञ्च लंबी फली लगती है जिसमें लाल रंग के गुंजा जैसे बीज निकलते हैं। यह मालावार प्रदेश में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—लकड़ी ।

मात्रा—३ से ६ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, मधुर रस, गुरु रूक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक है । यह कफ पित्त शामक है । दाह, क्षत, शोथ, चर्मरोग एवं नेत्ररोगों में इसका लेप किया जाता है । यह रक्त पित्त, छिदि, तृष्णा, अतिसार, विष, दाह में खाने के काम आता है ।

आधुनिक मत—इसमें सैण्टलिना, सैण्टल डेरोकापिन, होमोटेरोकापिन नामक तत्व होते हैं ।

मैटिरिया मैडिका आफ इण्डिया में लिखा है कि यह ठण्डा और संकोचक होता है । सिर दर्द व सूजन पर इसका लेप करते हैं । आमातिसार और रक्तातिसार में दूसरी औषधियों के साथ खिलाते हैं । औषधियों में लाल रंग करने के काम आता है ।

१५४. तिनिश

आयुर्वेदीय पर्याय—तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रु, वंजुल ।

लैटिन—*Ougenia dalbergioides*

विवरण—इसका वृक्ष २०-४० फुट ऊँचा होता है । इसकी छाल में क्षत किया जाय तो गोंद निकलता है जो लाल रंग का दानेदार होता है । पत्र पक्षाकार एवं मिले हुए तीन पर्ण होते हैं । पत्र गोलाकार ३-६ इञ्च लम्बे होते हैं । आगे का पत्ता सबसे बड़ा होता है । गुलाबी रंग के फूल बसन्त में गुच्छों में लगे रहते हैं । मूंगफली के समान २-३ इञ्च लम्बी फली सी लगती हैं जिनमें २-३ चपटे बीज निकलते हैं । यह हिमालय में पाया जाता है । बुंदेलखण्ड, उड़ीसा, मध्य भारत, बम्बई में होता है ।

प्रयोज्य अंग—त्वचा, लकड़ी, गोंद ।

मात्रा - गोंद ५ से १० रत्ती, क्वाथ १ से १० तोला ।

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश ने इसे कषाय रस बताया है । कफ पित्त नाशक है । रक्त रोगों में लाभ करता है । मेद, कुष्ठ प्रमेह, श्वित्र, दाह, पाण्डु तथा कृमि रोग नाशक है ।

आधुनिक मत—इसका गोंद अतिसार एवं प्रवाहिका में उपयोगी बताया

है। इसकी छाल का क्वाथ उस अवस्था में किया जाता है जबकि मूत्र का वर्ण बहुत गहरा हो।

१५५. ढाक

आयुर्वेदीय पर्याय—पलाश किशुक, पर्ण, यक्षिम, रक्तपुष्पक।

अंग्रेजी—Bastard Teak

लैटिन—Butea Frondasa

विवरण—इसका वृक्ष ४०-५० फुट ऊँचा होता है। इसका तना टेढ़ा और छाल फटी-सी होती है। एक डंठल में ३-३ पत्ते मिले हुए होते हैं जो गोलाई लिए हुए और ४-६ इञ्च लंबे होते हैं। तीनों पत्तियाँ एक बराबर की नहीं होती। वसन्त में लाल, पीले रंग के फूल आते हैं। गर्मियों में फली लगती हैं जो ५-७ इञ्च लंबी और $\frac{3}{4}$ इञ्च चौड़ी होती हैं। इनमें चपटे गोल से मैले सुर्ख रंग के बीज निकलते हैं। यह बीज “पलाश-पापड़ा” कहे जाते हैं। इसकी छाल को थोड़ा छेदने से रस निकलता है जो जम जाने पर गोंद-सा बन जाता है। यह व्युटिआ गम (चीना गोंद) कहलाता है। ढाक सारे भारत में और बर्मा में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्र, फूल, बीज और गोंद।

मात्रा—छाल का काढ़ा ५ से १० तोला, पत्तों का रस १ से २ तोला, फूल $\frac{1}{2}$ से १ तोला, गोंद १ से ३ माशा, बीजचूर्ण २ से ८ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटुतिक्त कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है। ध्यान रहे कि इसके फूल मधुर, विपाक और शीतवीर्य होते हैं। यह कफवातसामक है। पुष्प कफपित्तशामक होते हैं।

पलाश अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, दस्ताबर, टूटे को जोड़ने वाला, संग्रहणी अर्श, कृमिरोग और गुदा के रोगों का नाश करता है। इसके फूल रक्तविकार मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा, दाह, वातरक्त और कुष्ठ का नाश करते हैं। फल अन्य रोगों के अलावा प्रमेह का नाश करने वाला कहा गया है।

आधुनिक मत—इसमें १८% स्थिर तैल होता है जो काइनो आयल या मोदुग आयल कहलाता है। छाल और गोंद में काइनो टैनिक एसिड तथा गैलिक एसिड होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि पलाश के पत्तों का क्वाथ दस्तों में, प्रदर में, कृमि रोग व शूल रोग में लाभ करता है। पलाश के फूल पेशाब साफ लाते हैं। पेड़ पर ऊबले हुए ठंडे किये फलों को बांध देने से पेशाब आने में दर्द व रुकावट दूर होती है। फल का क्वाथ देते समय कलमी शोरा साथ में दिया जाए तो मूत्रकृच्छ में लाभ होता है। पलाश के बीज हल्के दस्तावर और कृमिनाशक होते हैं।

१५६. पिठिवन

आयुर्वेदीय पर्याय—पृश्निपर्णी, पृथकपर्णी, चित्रपर्णी, कलशी।

लैटिन—*Uraria Picta*.

विवरण—इसका छोटा क्षुप २-४ फुट ऊँचा होता है। पत्र संयुक्त होते हैं। जिनमें ३-६ इंच लम्बी पत्तियाँ होती हैं। इन पर सफेद रंग की चौड़ी धारियाँ लगती हैं। फूल मंजरी में लगते हैं जो रक्तवर्ण या नील वर्ण के होते हैं। इसकी फलियाँ चपटी, टेढ़ी और एक इंच लम्बी होती हैं। यह ऊपर भूमि एवं जंगलों में होती है।

अभी इसके विषय में सभी वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं तो भी अधिक उप-युक्त द्रव्य को स्वीकार करते हैं।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, मूल।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, मधुर विपाक है। यह त्रिदोष नाशक है। यह वृष्य एवं सारक है। यह ज्वर, दाह, कास, श्वास, तृष्णा, छर्दि, रक्तातिसार में प्रयोग की जाती है।

सुश्रुत ने सातवें मास में गर्भवती को पिठिवन से सिद्ध किया दूध पिलाना बताया है। यह गर्भ पोषण करता और गर्भपात होने व बचाना है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि पृश्निपर्णी रसायन, बल्य व स्तम्भक है। यह ज्वर, प्रतिश्याय, कफ रोग एवं दुर्बलता में प्रयोग किया जाता है। सर्पविष में भी यह लाभ करती है।

१५७ फरहद

आयुर्वेदीय पर्याय—पारिभद्र, निम्बतरु, कटकी पलाश, रक्तपुष्प।

अंग्रेजी—Indian Coral Tree.

लैटिन—*Erythrina Indica*.

शिम्बी वर्ग

२०७

विवरण—इसका क्षुप १०-२० फुट ऊँचा, घूसर वर्ण का एवं श्याम वर्ण के छोटे २ कांटों से युक्त होता है। इसमें पलाश की तरह त्रिपर्ण होते हैं। इसमें लाल रंग के फूल बसन्त में खिलते हैं। फूल के मूल में चूसने से मधुर रस का आनन्द आता है। फल सेम के समान होता है। $\frac{1}{2}$ से १ फुट लंबा होता है जिसमें लाल रंग के दाने निकलते हैं। यह उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के जंगलों में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्र।

मात्रा—पत्र स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला, त्वक क्वाथ ५ से १० तोला।

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। यह कफवातशामक है। यह शोथ, मेद, कृमि रोग नाशक है। इसके फूल पित्त रोगों का नाश करते और कर्ण रोगों में प्रयोग किए जाते हैं। पारिभद्र, दीपन, रोचन होता है। अतः अरुचि अग्निमान्द्य में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल एवं पत्तियों में एक तिक्त और विषाक्त तत्व पाया जाता है। जिसे एरिथ्रोन (Erythrine) कहा जाता है। यह कुचले के सत्व (Strychnine) का प्रतिविष है।

यह कफनिःसारक, मूत्रजनन और वाजीकरण बढ़ाया गया है। आक्षेप-हर, मस्तिष्क शामक एवं निद्राजनन होता है। पत्तों का रस कर्ण रोगों में लाभ करता है।

१५८. बिदारोकन्द

आयुर्वेदीय पर्याय—स्वःदुकन्दा, सिता, इक्षुगन्धा, पयस्विनी।

यूनानी बिलाई कन्द।

अंग्रेजी—*Paniclatus wild.*

लैटिन—*Pueraria Tuberosa.*

विवरण—इसकी दूर-दूर तक फैलने वाली लता होती है। जिसके तने में छिद्र रहते हैं। पत्र पलाश की तरह ३-३ मिले हुए रहते हैं। एक-एक पत्ता ४-६ इंच चौड़ा होता है जिमका आकार लट्टू का-सा और अगला किनारा नोकीला होता है। पत्रों के निचले भाग पर गहरे रूएँ होते हैं। फूल मञ्जरी में लगते हैं जो बैंगनी रंग के होते हैं। इसमें २-३ इंच लंबा रूएँदार

२०८

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

फल लगता है। इसकी जड़ में से $1\frac{1}{2}$ फुट लंबे और १ फुट मोटे कन्द होते हैं। यह नेपाल, बंगाल, आसाम एवं पंजाब की पहाड़ियों में बहुत होती है।

प्रयोज्य अंग—कन्द।

मात्रा—चूर्ण $\frac{1}{4}$ से १ तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक है। यह वातपित्तशामक है। स्नेहक, पित्तसारक व अनुलोमक कर्म करता है। हृदय दुर्बलता एवं रक्त विकारों का नाश करता एवं कास तथा स्वर भेद में लाभ करता है। यह वृष्य, दुग्धवर्धक एवं मूत्रल होता है। त्वचा का रंग निखरता एवम् ज्वर तथा दाह का नाश करता है। यह बलकारक, वृंहण और रसायन है।

आधुनिक मत—इसमें रेजिन, चीनी और स्टार्च होते हैं। यह ताकत देता और वीर्य विकार मिटाता है। अधिक नासिक स्राव आने को रोकता है। शराब के साथ देने से दूध बढ़ाता है और बच्चा होने के बाद औरत को शराब के साथ दिया जाता है। इसके लड्डू बनाकर जिसमें घी-आटा-चीनी हों देने से कमजोरी, दस्त और अग्निमन्दता दूर हो जाती है।

(डा० आर० एन० क्षीरी)

१५६. मांषपर्णी

आयुर्वेदीय पर्याय—माषपर्णी, महासहा, कृष्णवृन्ता, हयपुच्छिका।

लैटिन—*Teramnus Labialis*.

विवरण—इसकी लता उड़द के समान होती है। इसमें भी त्रिपर्ण होते हैं। इसमें बैंगनी रंग के फूल लगते हैं। फली १-२ इंच लंबी, कुछ टेढ़ी और रोमश होती है जिसमें ८-१० बीज होते हैं। यह समस्त भारत में विशेष कर बंगाल और दक्षिणी भारत में होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—५-१० तोला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर-तिक्त रस, लघु-स्निग्ध गुण, शीतवीर्य एवम् मधुर विपाक होती है। यह वातपित्तशामक है। शुक्रल, बल्य, ग्राही है।

ज्वर, दाह, शोथ, रक्तविकार नाशक है।

१६०. मुद्गपर्णी

आयुर्वेदीय पर्याय—मुद्गपर्णी, काकपर्णी, शूयपर्णी।

लैटिन —Phaseolus Trilobus.

विवरण—मुद्गपर्णी की लता होती है, जिसके पत्ते मूंग के पत्तों जैसे हैं। इसमें भी तीन पर्ण एक डंठल में होते हैं जो रोमश होते हैं। पीले रंग के फूल आते हैं। मूंग के समान फली निकलती है जिसमें ५-७ तक दाने होते हैं। इसका मूल कन्द के समान होता है। यह समस्त भारत में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग।

मात्रा—क्वाथ ५-१० ताला।

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्तरस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवम् मधुर विपाक होती है। यह त्रिदोष नाशक होती है। शुक्ल, चक्षुष्य एवम् ग्राही होती है। यह ज्वर, दाह, संप्रहणी, अर्श, क्षत, शोथ, वातरक्त, क्षय, अतिसार नाशक होती है।

१६१. मुलहठी

आयुर्वेदिक पर्याय—यष्टीमधु, मधूलिका क्लीतक,

यूनानी—अस्लुस्सूस

अंग्रेजी—Liquorice

लैटिन—Glycyrrhiza glabra

विवरण—इसका पौधा २ से ४ फुट ऊँचा होता है, जिसमें ४-६ जोड़े पत्तियों से युक्त पत्ता होता है, पत्तियाँ पक्षाकार होती हैं, हलके गुलाबी रंग के फूल वसन्त में लगते हैं। बरसात में फली लगती है जो १ इंच लम्बी और चपटी होती है। इनमें २ से ४ तक चौकोर बीज होते हैं। इसकी जड़ लम्बी और पतली होती है, जड़ की बहुत सी शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं। यह मिश्र, अरब, तुर्किस्तान, ईरान, अफगानिस्तान, यूरोप व चीन में पंदा होती है। अब यह पंजाब, सिंध व पेशावर में भी होती है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—२ से ४ माश

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक होती है। वात पित्तशामक एवम् नाड़ियों को ताकत देती है। उलटी, प्यास और कब्ज को दूर करती है। यह उदर शूल मिटाती और अम्लता का नाश करती है। रक्तरोग, खाँसी, साँस, स्वरभेद, पाश्वशूल में लाभ करती है। मूत्रकृच्छ, प्रमेह, और ज्वर नाशक है। चर्मरोगों में प्रयोग की जाती है।

आधुनिक मत—इसमें ग्लिसिराइजिन नामक तत्व होता है। एस्परेजिन,

२१०

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

फास्फोरिक सल्फ्यूरिक और मैलिक एसिड होता है। डा० आर. एन. क्षीरी का कहना है कि यह स्निग्धता करती, कफ निकालती, हलका दस्त लाती और स्थानीय उत्तेजना करती है। चबाकर खाने से लाला स्राव को बढ़ाती है। यह जुकाम, खांसी, गले की खराबी, सांस को ठीक करती है।

१६२. मेथी

आयुर्वेदीय पर्याय—दीपनी, बहुपत्रिका, गन्धफला, वल्लरी, यूनानी—हुल्बा
अंग्रेजी—Fenugreek लैटिन—*Trigonella foenam graecum*

विवरण—यह खेतों में पैदा की जाती है, इसके पौधे १ फुट ऊँचे होते हैं, पत्र गोल, छोटे और कुछ लम्बे मटर के पत्तों के समान होते हैं। हर गाँठ से पत्तों का जोड़ा निकलता है। वहीं से पीले रंग के फूल निकलते हैं, जहाँ बाद में फली लगजाती है जो ३-४ इञ्च लम्बी होती है। इस फली में ४-१० बीज निकलते हैं जो मूँग के बराबर होते हैं। यह चपटे और पीले से रंग के होते हैं। इसकी खेती सारे भारत में की जाती है।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—आधे से १ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, ऊष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह वातकफ नाशक एवं ज्वरनाशक है। दीपन, कब्जकारक, बलकारक और हृदय को ताकत देती है। यह नवासीर, कृमिरोग का नाश करती है।

आधुनिक मत—इसमें तैल, राल, और अलब्युमिन होता है। कोलाइन व ट्रिगोनलाइन होता है। इसमें २५% फास्फोरिक एसिड होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि मेथी चिकनी, बलकारक व वायु नाशक है। यह संग्रहणी, अग्निमन्दता और वातरोगों का नाश करती है। वच्चा होने के बाद औरतों को दी जाती है। श्वेत प्रदर में इसके लुआब को कपड़ा भिगोकर योनि में रखते हैं।

१६३. जवासा

आयुर्वेदीय पर्याय—यवास, दुःस्पर्श, यास, घन्वयास यूनानी—खारे शुतुर
अंग्रेजी—Persian manna Plant लैटिन—*Alhagica melorum*

विवरण—इसका हरे रंग का पौधा १ से ३ फुट ऊँचा होता है। इसमें कांटे लगे होते हैं, इसमें बहुत सी पतली २ लम्बी शाखाएँ होती हैं। पत्र छोटे लम्बे, गोल होते हैं। कांटों की जड़ में से सुख से रंग के फूल निकलते हैं। फूल बसन्त में आते हैं। गर्मियों में इसमें फल लग जाते हैं। इस पौधे से एक तरह का रस निकलकर जम जाता है जो 'तुरंजबीन' या 'Manna' कहलाता है। 'तुरंजबीन' के दाने लाल रंग के सफेद होते हैं। यह भारत, मिश्र, सीरिया फारस, अरब और खुरासान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, तुरंजबीन

मात्रा—रस १-२ तोला क्वाथ ४-८ तोला, तुरंजबीन १-३ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त, कषाय रस, लघु-स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक होता है। वात पित्त शामक एवम् कफ निःसारक है। यह उलटी, प्यास को बन्द करता और रक्तशोथक होता है। रक्तपित्त में लाभ करता है। खाँसी, श्वास में इसे हुक्के में पीते हैं। चर्मरोग नाशक, मूत्रल, ज्वर एवम् शुक्रवर्धक होता है।

आधुनिक मत—इसने 'तुरंजबीन' (Manna) होती है जो मैनाइटे और 'केनशूगर' से युक्त होती है। 'दुरालभा' या 'खारे खशक' Zygophyllaceae Family का पौधा है, में भी Manna का होना लिखा है, क्योंकि जवासा और 'दुरालभा' में पहिचान सम्बन्धी मतभेद है। वैसे जवासे से प्राप्त तत्व ही Manna कहलाता है। जो मृदु रेचक, मूत्रल और कफनिःसारक होता है। तुरंजबीन मीठी और हलकी दस्तावर दवा है। पित्त को निकालती और खाँसी में फायदा करती है। यह काम शक्ति की दुर्बलता को दूर करती और शरीर को ताकत देती है। पूनानी में इससे एक प्रसिद्ध औषध बनती है जो 'अलत-रंजबीन' कहलाती है।

१६४ बावची

आयुर्वेदीय पर्याय—वाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, कुष्ठघ्नी, भवतुगुजा

अंग्रेजी Purple Fleabane **लैटिन**—Psorolia corylifolia

विवरण—इसका वर्षायु क्षुप १ से ४ फुट ऊँचा होता है। तना सीधा

श्रीर शाखाएँ मजबूत होती हैं। पत्र एकान्तर लगे होते हैं। निनका आकार कुछ गोल, हृदयकार सा होता है। फूल पीले या नीले रंग के होते हैं। यह गुच्छों में लगे होते हैं। फल काले रंग का गुच्छों में होता है। इसमें बीज छोटे मुलायम, गन्धवाले और काले रंग के होते हैं। इस बीज की गिरी अन्दर सफेद रंग की निकलती है। यह भारत में आसाम व-उत्तर प्रदेश में तथा लंका में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, बीज तैल

मात्रा—१-३ माशा चूर्ण

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य, और कटु विपाक है। यह वातकफ शामक है। चर्मरोग, विष, कण्डू, श्वित्र कुष्ठ और कृमि रोग नाशक है। बालों को हितकारक, वमन, कास, श्वास, शोथ और पाण्डु रोग नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें पीले रंग का उड़नशील तैल होता है जो सबसे ज्यादा प्रभावकारक होता है। अलव्युमिन, मैगनीज और वर्मोनिन होते हैं।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह त्वचा के दोनों तरह के सेलों (१) रोगे-टस सेल (२) मैलेनोबलास्टिक सेल पर क्रिया करती है। ल्युकोड्रमा में दूसरे सेल काम ठीक नहीं करते, इसके तैल लगाने से वह उत्तेजित होकर त्वचा में रंग पैदाकर देते हैं। इस तरह यह 'श्वित्र' में पूरा लाभ करती है। श्वित्र के वषय में लेखक की पुस्तक 'ल्युकोड्रमा' का अवलोकन करना चाहिए।

१६५. सरफोंका

आयुर्वेदीय पर्याय—शरपुंखा, प्लीहश, नीलवृक्षकृति यूनानी—बर्गसुफार
अंग्रेजी—Purple tephrosia लैटिन—Tephrosia purpurea

विवरण—इसका वर्णायु कुछ छटा होता है यह २-३ फुट ऊँचा और कई शाखाओं वाला होता है। इसका पत्ता ३-६ इंच लम्बा होता है जिसमें पत्तियाँ लगी रहती हैं, पत्तियाँ १३ से २६ तक होती हैं। जिनका अग्रभाग गोलाई लिए हुए मोटा होता है। फूल का डंठल ३ से ६ इंच लम्बा होता है जिसमें लाल रंग के फूल आते हैं। इसकी फली १ से २ इंच लम्बी और कुछ टेढ़ी होती है जिसमें ६-१० तक बीज होते हैं। सरफोंका सारे भारत में विशेषकर

पथरीली जमीन में होता है। इसकी दो जातियां होती हैं जो फूलों के रंग के अलग २ होने के कारण होती हैं। १. लाल २. सफेद। सफेद रंग की जाति के पौधे को 'Tephrosia villosa' कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—जड़, पञ्चांग।

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा, रस १ से २ तोला।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त, कषाय रस, लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण गुण उष्ण वीर्य कटु विपाक, भेदन प्रभाव है। यह वातकफ को शान्त करता एवं रक्त रोगों का नाशक है। रसायन है, यकृतरोग, प्लीहा रोग, गुल्म, व्रण, कास, श्वास, ज्वर एवं विष नाशक है। यह कृमि एवं शूल नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें क्लोरोफिल, मोम, क्वर्सेटीन जैसा पदार्थ, गोद, अलब्युमिन व मैंगनीज होता है, यूनानी हकीम इसे कुष्ठ, उपदंश, खुजली, श्वित्र और अन्य रक्त के रोगों में देते हैं। इसे पानी में पीस तथा छान कर पिलाते हैं। ऐसी भस्में जिनको रक्तशोधनार्थ देना हो, उनको सरफोंका के रस में तैयार करते हैं। यह खूनी बवासीर में भी फायदा करता है।

१६६. सखिवन

आयुर्वेदीय पर्याय—शालपर्णि, स्थिरा, सौम्या, गुह, त्रिपर्णी

लैटिन—Desmodium Gangeticum

विवरण—इसका क्षुप २-४ फुट ऊँचा होता है। प्रत्येक पत्रदण्ड से ३-३ पत्र निकलते हैं जो पीत व श्वेत वर्ण के होते हैं। यह तीक्ष्णाग्र होते हैं, $\frac{1}{2}$ से २ इञ्च चौड़े और ३ से ६ इञ्च लम्बे होते हैं। इसमें नीले या गुलाबी रंग के छोटे-छोटे फल मंजरी रूप में निकलते हैं। इसमें पतली, चपटी, टेढ़ी फली लगती है। यह वक्र रोमों से भरी होती है। इसमें ६ से ८ फलियां एक साथ ही लगी होती हैं। यह हिमालय की निचली पहाड़ियों में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग, क्वाथ ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर, तिक्त रस, गुरु-स्निग्धगुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होती है। यह त्रिदोष शामक है। रसायन वृंहण, वृष्य एवम् विषघ्न होती है।

ज्वर, श्वास, अतिसार, शोष, क्षत, कास, छर्दि, कृमि रोगों को दूर करती है। इसे विषम ज्वर, प्रमेह, अर्श, शोथ एवम् सन्ताप शान्त करने के लिये प्रयोग कराया जाता है।

आधुनिक मत—इसे ज्वरहर एवम् प्रतिश्याय रोषक मानते हैं। विषघ्न कहा गया है और रसायन गुण को स्वीकार किया है।



LOGANIACEAE FAMILY

कारस्करादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, अखंड, उपपत्ररहित,

पुष्प—हरिताभ, शाखाग्रोद्भूत, (Apical)

फल—मांसल

१६७. कुचला

आयुर्वेदीय पर्याय—कुपीलु, विषतिन्दुक, काकतिन्दुक यूनानी—हब्बुलगुराव

अंग्रेजी—Nuxvomica

लैटिन—Strychnos Nuxvomica

विवरण—इसका वृक्ष लम्बाई में ४० या ५० फीट होता है जिसमें पतली और मजबूत शाखाएँ निकलती हैं। इसकी छाल पतली कोमल और घूसर वर्ण की होती है। इसके पत्र मोटे से डंठल पर लगते हैं और चिकने होते हैं। पत्र २ से ४ इञ्च लम्बे होते हैं। बसन्त में हरे, सफेद रंग के छोटे २ फूल लगते हैं। इनमें हलदी की सी गन्ध आती है। फल अमरूद जैसे गोल होते हैं जो पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं और उनका छिलका बहुत सख्त होता है। प्रत्येक फल में २ से ५ तक बीज निकलते हैं, जो $\frac{1}{2}$ इंच चौड़े और $\frac{1}{8}$ इञ्च मोटे होते हैं। यह श्वेत घूसर रंग के, कठोर और बटन जैसे गोल होते हैं। इसमें गिरी होती है। इसका वृक्ष वन्य होता है और भारत के उष्ण प्रदेशों में विशेष कर मद्रास, ट्रावनकोर कोचिन, मालाबार, उड़ीसा और लंका में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—बीज की गिरी

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, रुक्ष, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह वातकफ शामक है। दीपन, पाचन, संग्राहक है। शूल

नाशक है। कुष्ठ-कण्डू-प्रश्न एवं ब्रण नाशक है। यह रक्त रोग विषमज्वर एवं अर्घांग आदि वात व्याधियों का नाश करता है। वाजीकरण है।

सन्धिवात-आमवात में इसके बीजों का लेप किया जाता है। नाड़ियों की दुर्बलता में प्रयोग किया जाता है। 'विषमुष्टि' अग्निमुष्टि, कृमि मुग्दर, जक्ष्मी विलास आदि में कुचला पड़ता है।

आधुनिक मत—कुचले में २॥ से ३% तक क्षार होता है जिसमें आघा 'स्ट्रिकनीन' होता है।

फारमाकोपिया इण्डिया में लिखा है कि कुचले के बीज उत्तेजक होते हैं और वात नाड़ियों को बल देते हैं। यह पक्षाघात और नाडीशूल का नाश करते हैं। यह अतिसार, पुरानी पेचिश और जीर्ण विवन्ध का नाश करते हैं। इसका प्रयोग विषम ज्वर, मधुमेह और अपस्मार में होता है। पीलिया और अपने आप होने वाले वीर्य स्राव को रोकता है।

विष प्रभाव—ध्यान रहे कुचला एक विष है। इसे अधिक मात्रा में या बिना शुद्ध किए प्रयोग करने से शरीर में अकड़ाहट आ जाती है और मनुष्य को घनुष स्तम्भ हो जाता है। आगे घण्टे के अन्दर यह सब होकर सांस रुक जाता है और मृत्यु हो जाती है।

१६८. निर्मली

आयुर्वेदीय पर्याय—कतक, पयः प्रसादी, चक्षुष्य

अंग्रेजी—Clearing Nut

लैटिन—Strychnos Potatorum

विवरण—इसका वृक्ष कुचले के वृक्ष से मिलता-जुलता किन्तु उससे कुछ अधिक ऊँचा होता है। पीले रंग के फूल और काले रंग का फल होता है। यह फल जामुन की तरह का होता है जिसमें एक बीज गूदे में लिपटा हुआ रहता है। यह बीज श्वेत रंग का होता है और कुचले के आकार का होता है, अन्तर केवल इतना है कि यह उसकी अपेक्षा छोटा होता है। यह दक्षिण भारत, बंगाल और बर्मा में विशेष कर होते हैं।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—१ से २ माशा

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर-तिक्त-कषाय रस, लघु विशद गुण, शीत

२१६

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

वीर्य और मधुर विपाक होती है। इसका प्रभाव चक्षुष्य है। यह वात कफ शामक है। यह प्रायः प्रसादक है। वामक है। प्रमेह, तृष्णा, दाह, गुल्म, विष, शोष, पाण्डु, प्रतिश्याय, कागला, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवम् गर-विष नाशक है। नेत्र रोगों में इसका अंजन लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में ब्रुमिन नामक तत्व प्राप्त हुआ है, मद्रास में इसके बीज मधुमेह और सुजाक में उत्तम लाभकारक माने जाते हैं।

LILIACEAE FAMILY

रसोनादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, सादे, अवृन्त

पुष्प—पुं केशर—६ (दो चक्रों में)

बीजकोष—उर्ध्वस्थ ६ खण्डों वाला

१६६. उशवा

विवरण—यह एक लता जाति की वनस्पति होती है जो अमेरिका में पाई जाती है। भारत में उत्पन्न होने वाली अनन्तमूल की लता का स्वरूप इससे मिलता-जुलता है। इस लता का मूल बहुत लम्बा, सीधा और लचीला होता है। वे अनन्त मूल की तरह टेढ़ी-मेढ़ी नहीं होती। इन जड़ों के साथ रेस्से से लगे रहते हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—५ से ७ माशा

गुण-कर्म—यह शोथ को दूर करता, रक्त शुद्ध करता, मूत्र साफ लाता, वीर्य को पतला करना और वृक्क बस्ति के रोगों को दूर करता है। आमवात अर्दित, अर्घांग में इसे प्रयोग करते हैं और तैल में मिलाकर मालिश भी की जाती है। यह उपदंश, कुष्ठ और चर्मरोगों को दूर करता है।

आजकल इसे घातु परिवर्तक, मूत्र निःसारक और स्वेदक मानते हैं। कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह द्रव्य कई वर्षों तक उपदंश के इलाज में और पाचन के विकारों में प्रयोग किया जाता रहा और इसे चर्म रोग नाशक और रक्तशोधक माना जाता रहा है। किन्तु इसमें पाए जाने वाले Enzyme इसे शिंपल आयल और Saponin में इन रोगों को दूर करने की कोई ताकत नहीं पाई गई।

१७०. कलिहारी

आयुर्वेदीय पर्याय—हलिनी, लांगली, विशल्या, अग्निशिखा, गर्भनुत्

अंग्रेजी—Superb Lily

लैटिन—Glciosa Superba

विवरण—यह पतले काण्ड की १०, १२ फुट लम्बी सुन्दर वनस्पति होती है। जिसका भौमिक काण्ड रूल के आकार का होता है। यह भाग बहुत वर्षों तक बना रहता है और प्रत्येक वर्षा काल के आरम्भ होते ही इसमें से नए पत्ते आदि निकलने आरम्भ हो जाते हैं जो शीत आने पर सूख जाते हैं। इसके पत्ते वृन्तरहित होते हैं। पुष्प कई रंग के होते हैं, नीचे की तरफ पीले रंग के होते हैं और क्रमशः ऊपर २ जाते हुए रक्त वर्ण के होते हैं। फली ३ से ४ इंच लम्बी होती है। इसकी जड़ में कन्द निकलता है। स्त्रीलिंगी कलिहारी का कन्द होता है और पुरुषलिंगी का चण्डा-लम्बा दो भागों में विभक्त होता है। यह बंगाल दक्षिणी भारत, बर्मा एवम् लंका में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा—१ से २ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य, कटु विपाक होता है। यह प्रभाव द्वारा गर्भपातन करती है। पित्तकारक, वातकफ शामक है, सारक है। यह कृमि रोग, शोथ, कुष्ठ, अर्श, शूल शल्य एवम् व्रण नाशक कही गई है। प्रसव के पश्चात् नाभि एवम् बस्ति भाग में इसका लेपकर दिया जाए तो अपरा सरलता से निकल आता है। इसका कन्द योनि में रख दिया जाए तो गर्भ सरलता से गिर जाता है।

आधुनिक मत—इसमें सुर्ष्विन (Superbine) नामक एक तिक्त द्रव्य, होता है और ग्लोरिओलिन (Gloriosine) नामक एक क्षार तत्व होता है।

कर्नल चौपड़ा इसे विरेचक बताते हैं। उन्होंने लिखा है कि यह कृमिरोग, कुष्ठ और अर्श में लाभ करती है। सपंदश और वृश्चिकदंश में लाभ करती है।

१७१. घी कुआर

आयुर्वेदीय पर्याय—घृतकुमारिका, कुमारी, गृहकन्या यूनानी—दरस्तेसिन्न

विवरण—इसका क्षुप १ से २ फुट ऊँचा होता है, जिसमें ३-४ अंगुल चौड़ी १ से १/२ हाथ लम्बे स्थूल पत्ते होते हैं जिनके किनारे पर छोटे २

होते हैं। इसके अन्दर घी जैसा चिपचिपा गूदा निकलता है। पुराने क्षुप में पत्तियों के बीज से एक लम्बा सा डंठल निकलता है जिसमें लाल रंग के फूल आते हैं। इसके गूदे को उबाल कर एक सत बनाया जाता है जिसे हिंदी में 'मुसब्बर' या 'एलवा' कहते हैं, यूनानी हकीम इसे 'सिन्न' कहते हैं और अंग्रेजी में 'Aloes' कहलाता है।

घी कुआँर भारत, अफ्रीका और अरब में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्ते मात्रा—गूदा १ से २ तोला, सत १ से ४ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—तिक्त मधुर रस, गुरु स्निग्ध, पिच्छिल गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। प्रभाव में भेदन कहा गया है। यह त्रिदोष नाशक है। यह अग्निमान्द्य, उदर रोग, गुल्म, प्लीहा, यकृत वृद्धि, उदरशूल, विवन्ध और कृमिरोग नाशक है। रक्त विकार और सूजन को दूर करता है। मूत्रल होने से मूत्र कृच्छ में दिया जाता है। यह शुक्र-दुर्बलता और मासिक स्राव अवरोध में लाभ करता है। यह गर्भपात कारक भी हो सकता है। चर्मरोग एवं पुराने बुखार में लाभ करता है। यह रसायन एवम् नेत्रों के लिए हितकारक है। व्रण रोपक है एवम् शोथ पर बाह्य प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसमें एलोइन, बाबैलोइन, एलो-एमोडिन और 'कुमारी क्रिसमिक एसिड' होता है।

कर्नल चौपड़ा का कहना है कि इसका ताजा रस रेचक, शीतल और ज्वरनाशक होता है।

डा० वामन गणेश देसाई ने लिखा है कि यह पाचक है और यकृत की क्रिया को सुधारता है। गर्भाशय, बीज कोष और बीज वाहक नलियों पर बाह्यजनन क्रिया करता है जिससे मासिक आने लगता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि मुसब्बर यकृत की क्रिया को उत्तेजित करता, मृदु रेचक होता, मासिक स्राव शुद्ध करता और कृमियों को मार कर बाहर निकाल देता है। यह गर्भ स्राव कराता है। पुरुषेन्द्रिय में दृढ़ उत्तेजना करता है। अर्श रोग में रक्त को बन्द करता है। इसका लेप चर्मरोग नाशक है।

१७२. चोपचीनी

आयुर्वेदीय पर्याय—द्वीपान्तर, वचा

यूनानी—अस्लुस्सीनी

अंग्रेजी—China Root

लैटिन—Smilax Glabra

विवरण—इसकी लता फैली हुई और किसी वृक्ष आदि पर चढ़ी हुई होती है। इसके पत्र अण्डाकार होते हैं। सफेद रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी जड़ भारी-मोटी और गांठों वाली होती है। इसका रंग कुछ लाली लिए होता है। इसका आदिम उत्पत्ति स्थान चीन और जापान है, सम्प्रति आसाम में भी उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण उष्णवीर्य और कटु विपाक है। अग्नि दीपक, विबन्ध, आध्मान और शूल नाशक है। यह मल और मूत्र का शोधन करती है। वातव्याधि, अपस्मार, उन्माद और शरीर के शूल को दूर करती है। इसका विशेषकर्म फिरंग (सिफलिश) का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसमें बसा, शर्करा, सैपोनिन, गोंद और स्टार्च होता है। डा० डिमक ने लिखा है कि चोपचीनी पसीना लाने वाली, उत्तेजक, रसायन और ग्रन्थि आदि को शमन करने वाली होती है। पुराने सिर दर्द में अनन्त मूल के साथ देते हैं। मस्तगी, इलायची या तज के साथ वात, आम-वात, अपस्मार, रक्ताल्पता, गण्डमाला, शुक्रक्षीणता और पुरानी सिफलिश में लाभ करती है।

डा० वामन गणेश देसाई का कहना है कि यह फिरंगज सन्धि शोथ और उपदंश की दूसरी-तीसरी अवस्था में लाभ करती है।

चोपचीनी आज भी एलोपैथिक फार्माकोपिया में वर्णित है।

१७३. प्याज

आयुर्वेदीय पर्याय—दुर्गन्ध, पलाण्डु

यूनानी—बसल

अंग्रेजी—Bulb Onion

लैटिन—Allium cipa

विवरण—इसका क्षुप २-३ फुट ऊँचा होता है जिसमें मोटे, गोलाई लिए हुए और हरे रंग के पत्र आते हैं। पत्र के ऊपरी भाग से हरे रंग का लम्बा

डंठल गहर निकलता है जिसके अग्रभाग में से गुच्छेदार सफेद रंग के फूल आते हैं। इसके बीज तिकोने और काले रंग के होते हैं। इसकी जड़ में गोल कन्द निकलता है। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द और बीज।

मात्रा—रस १ से ३ तोला, बीज चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर कटु रस, गुरु स्निग्ध-तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक है। वातशामक है, रोचक, अग्निवर्धक, बलकारक, वृष्य, वर्ण-करता एवं ओन्कारक होता है। यह बुद्धि को त्रिगाड़ता है, इसके बीज वृष्य होते हैं। दांतों के कीड़ों को मारता है और प्रमेह का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसमें सिलिपिक्निन (Scillapicrine) सिलोमेरिन (Scillamarine) और सिलिनाइन (Scillinine) में तीन तत्व कार्य करते हैं।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि कम मात्रा में उत्तेजक कफ निकालने वाला और मूत्रकारक होता है। यह हृदय की गति को मन्द करता है। अधिक मात्रा में वामक तथा विरेचक है। अत्यधिक मात्रा में विष जैसा काम करता है। इससे बेचैनी, पेशाब रुकना या पेशाब में खून आना, आंतों में जलन और हृदय-गति बन्द होकर मृत्यु हो जाती है। खांसी, काली खांसी और पुरानी खांसी में कफ निकालने को दिया जाता है।

१७४. जंगली प्याज

आयुर्वेदीय पर्याय—वनपलाण्ड

यूनानी - उन्मुल

अंग्रेजी—Indianisquie

लैटिन—Urginea Indica

विवरण—इसका क्षुप भी प्याज के जैसा ही होता है। इसमें पत्ते निकलने में पहले ही फूल निकलते हैं। इसके पत्ते ६ से १८ इंच लम्बे और १ इंच चौड़े होते हैं। इसमें १ से १॥ इंच ऊँचे और कोमल डंठल के अग्रभाग में सफेद रंग के फूल घंटे की आकृति में लगे रहते हैं। बीजकोष में तीन कोष्ठ होते हैं जिनमें से प्रत्येक ५-१० काले चपटे बीजों से भरा रहता है। यह समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में और हिमालय की निचली शुष्क पहाड़ियों में, शिमला, सहारनपुर, पंजाब, बंगाल और सीमाप्रान्त में होता है। कन्द छोटे नींबू या बे रजैसी होती है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा—३ से ५ माशा

गुण-कर्म—यह प्याज की अपेक्षा अधिक तीव्रकर्म करती है। इसलिए साधारण खाने के काम में नहीं आती। यह उन सब रोगों को नष्ट करती है, जिनको प्याज मिटाती है। विशेषकर यह मूत्रविकारों और कफज विकारों में लाभ करती है। खांसी में इसका प्रयोग होता है और यह उदरकृमि को मार डालती है। इसको पीलिया में भी देते हैं।

आयुर्वेदिक मत—इसमें एक निष्क्रिय ग्लूकोसाइड 'सिल्लिनिन' पाया जाता है। दो सत्व होते हैं, सिल्लिपिक्निन और सिल्लीटॉक्सिन। आधुनिक वैज्ञानिक इसका शर्वत बनाकर तथा टिचर बनाकर प्रयोग करते हैं।

१७५. मूसली सफेद

आयुर्वेदीय पर्याय—तालमूली

यूनानी—शकाकुलेहिन्दी

लैटिन—*Asparagus Adscendens*.

विवरण—यह एक कंटकित क्षुप होता है जिसका तना लम्बा, ऊँचा, मोटा, गोल और चिकना होता है। शाखाएँ पौली और ऊपर को चढ़ने वाली होती हैं। पत्तियों के आकार की शाखाएँ ६ स २० तक एक साथ गुच्छे में होती हैं, जो $\frac{1}{2}$ से २ इंच लम्बी होती हैं। इसकी जड़ में सफेद रंग का लम्ब, गोल कन्दों का गुच्छा निकलता है जो सफेद मूसली कहलाता है। यह हिमालय, पंजाब, गुजरात, बम्बई, मध्यभारत में पैदा होता है।

दूसरी तरह की मूसली काले रंग की होती है। उसके अन्दर खाकी रंग निकलता है। यह पौधा *Amaryllidaceae* Family का होता है जिसे Latin में *Curculigo Orhioides* कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—५ से ७ माशा

गुण कर्म—यह काम शक्ति को बढ़ाता और वीर्य को बढ़ाता और गाढ़ा करता है। इसका चूर्णकर बराबर की खांड मिलाकर पुरुषत्वशक्ति की कमी और वीर्यस्राव में प्रयोग कराते हैं। इसको माजून बनाकर भी प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदिक ग्रन्थ—भावप्रकाश में इस विषय में बहुत कम वर्णन किया है। वहाँ लिखा है कि मूसली मधुर, वृष्य उष्णवीर्य, गुरु, तिक्त, रसायन है। यह वातनाशक एवं अर्शनाशक है।

आधुनिक मत—इसमें रेसिन, टेनिन, स्टार्च और राख में Oxalate of calcium होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह तिक्त, सुगन्धित, बलदायक व चिकनी होती है। यह साधारण कमजोरी, सूत्र सम्बन्धी रोग और नपुंसकता आदि में लाभ करती है। सांस, बवासीर, मूत्र कष्ट से आना, दस्त, अधिक मासिक स्राव और सूजाक में लाभ करता है। आम तौर पर इसे पुरुषत्व शक्ति बढ़ाने वाली औषधों में मिलाते हैं।

१७६. लहसुन

आयुर्वेदीय नाम—रसोनलशुन, उग्रगन्ध, महौषध, यवनेष्ठ **यूनानी**—सीर
अंग्रेजी—Garlic **लैटिन**—Allium Sativum

विवरण—इसका क्षुप १-२ फुट ऊँचा होता है जिसका कांड कोमल और आवरण एवं कोष्ठ युक्त होता है। इसके पत्ते चपटे, पतले और लम्बे होते हैं, इसके बीचोबीच एक डंठल निकलता है जिसके ऊपरी हिस्से पर गुच्छेदार सफेद फूल लगते हैं। इसका कन्द श्वेत एवम् रक्ताभ होता है जिसमें यवाकृति ५-१२ तक टुकड़े रहते हैं। यह सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा—२ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के ग्रन्थों में रसोन का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। यहां तक कि काश्यप संहिता में तो 'लशुन कल्प' नामक एक पूरा अध्याय ही दिया हुआ है।

लहसुन में ५ रस होते हैं—अम्ल रस नहीं होता। भावप्रकाश में लिखा है कि जड़ में कटु रस, पत्तों में तिक्त रस, नाल में कषाय रस, नाल के अगले भाग में लवण रस और बीज में मधुर रस होता है। इसमें म्लिग्ध, तीक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु और सर पांच गुण होते हैं। उष्णवीर्य और कटु विपाक है। वातकफशामक व रक्तेपित्तवर्धक है। नाड़ी उत्तेजक, बुद्धिवर्धक एवम् दृष्टि-शक्तिवर्धक है दीपन, पाचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिनाशक व यकृदुत्तेजक है। हृदय को उत्तेजना देना एवम् शोथ का नाश करता है। यह कफनिःसारक व कास, श्वास, स्वरभेद एवं यक्ष्माकीट नाशक है। मूत्रजनन, शुक्रजनन व

रसोनादि वर्ग

२२३

आर्तवजनन है। कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न एवं रसायन है। यह भग्नसन्धानकारक है। इसका लेप, सूजन को दर्द, को व विष नष्ट करता है।

भावप्रकाश में रसोन सेवन करते समय मद्य, मांस तथा अम्ल का सेवन हितकारक बताया है और व्यायाम, आतप, क्रोध, अतिजलपान, दूध व गुण का प्रयोग अहितकारक कहा है।

आधुनिक मत—लहसुन से एक उड़नशील तैल पातन (डिस्टिलेशन) द्वारा प्राप्त होता है जिसमें 'एलाइल' और 'प्रोपाइल' नामक गन्धक के तत्व होते हैं। यह आमाशय के रस को बढ़ाकर पाचन में सहायता करता और उदराध्मान को मिटाता है। फुफ्फुसों में जमे कफ को निकालता है। मामिक स्राव ठीक करता है। यह बलकारक, वायुशामक, मूत्र तथा स्वेद ज्यादा लाता है।

बेहोश बालक के नाक पर इसकी पोटली रखते हैं। उदरकृमि मारता और शोथ को मिटाता है। विषैले जन्तुओं के द्वारा काटे गये स्थान पर इसका लेप करते हैं। दाद पर लहसुन को रगड़ते हैं। इसे तैल में पकाकर उस तैल की बूंद कान के दर्द में डालते हैं।

१७७ शंकाकुल

Trachydium Lehmani

विवरण—शंकाकुल एक वनस्पति की जड़ होती है जो कि छोटी गाजर के बराबर, सफेद और पीताभ होती है। यह लेसदार होती है और मधुर होती है। भारत में विदेशों से आती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—३ से ५ माशा

गुण कर्म—यह शरीर को बल देती और वंहण करती है। कामशक्ति को बढ़ाती है। इसके प्रयोग से वीर्य बलवान और अधिक बनना है। स्त्री का दूध बढ़ाती है। इसका चूर्ण, माजून या मुर्ख, नपुंसकता और वीर्य स्राव में दिया जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता है।

१७८. सतावर

आयुर्वेदीय पर्याय—शतावरी, बहुसुता भीरू, शतपदी शतवीर्या यूनानी—गुर्जदस्ती

अंग्रेजी—Wild Asparagus

लैटिन—Asparagus Racemosus

विवरण—इसकी कांटे वाली आरोहणी लता होती है। इसकी शाखाएँ तिकोनी, चिकनी और रेखान्वित होती हैं। पत्ते छोटे, सोये के पत्तों जैसे होते हैं। इसमें $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इंच लम्बे और टेढ़े कांटे होते हैं। इसकी बारीक शाखाएँ २ से ६ एक साथ गुच्छों में लगे होते हैं। छोटे, सफेद गुलाबी रंग के सुगन्धित फूल आते हैं, जिसमें मटर के आकार के फल होते हैं। फल में १ या २ बीज होते हैं। इसकी जड़ में मोटा, लम्बा गोल, दोनों किनारों पर नुकीला सफेद रंग का गुच्छा निकलता है। सतावर सारे भारत में, विशेषकर उत्तर भारत में पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक है। वात पित्त शामक, अग्नि वर्धक है। गुल्म ग्रहणी, अर्श का नाश करती और हृदय को बल देती है। शोथ नाशक, मूत्रल, बल्य, वृष्य, स्तन्यजनन रसायन और नेत्रों के लिए हितकारक है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह वातवाहिनियों को शक्ति देती, बल बढ़ाती और दूध बढ़ाती है। यह पित्त के विकार, आमवात, अग्नि-मन्दता और अतिसार में दी जाती है। वीर्य की क्षीणता और फुफ्फुसों के विकारों में लाभ करती है।

१७६. सुरञ्जान

अंग्रेजी—Colchicum

लैटिन—Colchicum Lureun

विवरण—यह एक वनस्पति का कन्द है जो सिंघाड़े के जैसा होता है। यूनानी हकीम दो तरह का बताते हैं। एक मीठा और दूसरा कड़वा। मीठा सुरञ्जान एक पीताभ आवरण से ढका रहता है जिसको हटाने से सफेद रंग की गिरी निकलती है। कड़ुआ रक्ताभ होता है। कड़ुआ पंजाब काश्मीर और अफगानिस्तान में और मीठा ईरान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—१ से ३ माशा

गुण कर्म—मीठा सुरञ्जान प्रायः खाने के काम में लिया जाता है। यह

अतस्यादि वर्ग

२२५

शरीर के कफ को दस्तों के द्वारा निकाल देता है। सुई निकालता है। जोड़ों, सन्धि शोथ व दर्द को मिटाता है। पुरुषत्व शक्ति बढ़ाता है। शरीर के दोषों को बाहर निकाल देता है।

कडुआ सुरञ्जान खाने के काम में नहीं लिया जाता। इसे लेप के तौर पर सूजन और दर्द मिटाने में प्रयोग करते हैं।

आधुनिक मत—कडुए सुरञ्जान में Colchicine नाम का एक क्षार तत्व प्रचुर मात्रा में होता है। मीठे में भी एक क्षार तत्व होता है। B. P. का Colchicum सुरञ्जान ही है। आयुर्वेद के प्राचीन साहित्य में इसका कहीं वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

LINACEAE FAMILY

अतस्यादि वर्ग

स्वरूप प्रायः क्षुप

पत्र—एकाकी (Simple) छोटे, अखण्ड एकान्तर Alternate)

पुष्प—नियताकार, शाखाग्रोद्भूत (Apical), पुष्प-बाह्य कोश (Calyx) के दल—५, पुष्पाभ्यन्तर कोश—(Corolla) के दल—५, गर्भाशय (Ovary) ३-५, कोष्ठ युक्त, प्रत्येक कोश में बीज १-२, परागवाहिनियाँ (Style) ३ से ५

फल—विदारि (Dehiscent)

१८०. अलसी

आयुर्वेदीय नाम—अतसी, नील पुष्पी, पार्वती, उमा यूनानी—कतान

अंग्रेजी—Linseed

लैटिन—Linum Usitatissimum

विवरण—इसका क्षुप २ से ४ फुट ऊँचा होता है। पत्र लम्बे और नुकीले होते हैं। फूल नीले रंग के छोटे होते हैं। इसमें गोल घुंड़ीदार फल आते हैं। इसके बीज चपटे होते हैं। यह रंग भेद से चार प्रकार की होती है सफेद, पीली, लाल और काली। इसकी उत्पत्ति मिश्र, रूस, ब्रिटेन, हालेण्ड में होती है। भारत में बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में होती है।

प्रयोज्य अंग—फूल, बीज और बीजों से निकाला गया तैल

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा, तैल $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत—यह मधुर, तिक्त रस, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह वातशामक तथा कफपित्त वर्धक हैं। इसका तैल संग्राहक, त्वचा के दोषों का नाश करने वाला, मलकारक और वातनाशक होता है। तैल का प्रयोग पीने में, बस्ति में, अभ्यंग, नस्य और कर्ण पूय में दिया जाता है।

आधुनिक मत—बीजों में ३७ से ४४% तक तैल होता है। प्रोटीन, राल, मोम और चीनी होती है। इसमें ३ से ५% क्षार होते हैं जिनमें पोटेशियम, कैल्शियम और मैगनीशियम सल्फेट और क्लोराइड होते हैं।

कर्नल चोपरा ने लिखा है कि अलसी की पुन्टिस नासूर, फोड़े, सूजन में फायदा करती है। अलसी की चाय पेशाब की बीमारियों में काम आती है।

अलसी के तैल में बराबर का चूने का पानी मिलाने से एक मिश्रण तैयार होता है। जिसे 'Carron' कहते हैं, यह आग से जले हुए स्थान पर लगाया जाता है।

LVTHERACEAE FAMILY

मदयन्त्यादि वर्ग

पत्र—अभिमुख (Opposite)

पुष्प—पुष्पवाह्य कोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ३-६

फल—विदारि (Dehiscent)

१८१. धाय

आयुर्वेदीय पर्याय—घातकी, घातुपुष्पी, वह्नि ज्वाला

अंग्रेजी—Downy grisea

लैटिन - Wood fordia fruticosa

विवरण—यह एक क्षुप जाति की वनस्पति है जिसके क्षुप १० फुट तक भी ऊँचे चले जाते हैं और उनमें अनेक शाखाएं होती हैं। इसमें अनार के जैसे पत्र लगते हैं। पत्र वृन्त रहित होते हैं। पत्तों का ऊपरी स्तर चिकना और निचला स्तर रोमश होता है। पुष्पदण्ड पत्तों के नीचे से निकलते हैं और प्रत्येक पुष्पदण्ड में ५-१५ तक पुष्प होते हैं जिनका रंग लाल होता है यह फूल जाड़ों में खिलते हैं इसमें घूसर वर्ण के चिकने बीज होते हैं।

निम्बादि वर्ग

२२७

घातकी भारत के पार्वत्य प्रदेशों में उत्पन्न होती है ।

प्रयोज्य अंग—पुष्प

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय कटु रस, लघुरूक्ष गुण, शीत वीर्य एवं कटु विषाक होता है । यह कफ पित्तशामक है ।

तृष्णा, अतिसार, रक्तविकार, विष, कृमि और विसर्प नाशक है । चरक के दशेमानी में तथा सुश्रुत के गणों में घातकी पुष्प का वर्णन आया है । वहाँ इसे ग्रहणी एवं अतिसार के रोगों में प्रयोग करने के लिए ही कहा गया है ।

आधुनिक मत—इसके फूलों में २०% टैनिन होती है ।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि घाय के फूल उत्तेजक एवं संयोजक होते हैं । मधु के साथ देने से प्रवाहिका में लाभ करते हैं । यह रक्त-स्राव को रोकते हैं । रक्तप्रदर एवं श्वेतप्रदर में लाभ करते हैं ।

घातकी पुष्प चूर्ण क्षतों पर लगाया जाता है, घाव को शीघ्र भरते और वहाँ प्य पड़ने से बचाव करते हैं । इनका लेप दाह प्रशामक होता है । इसके फूलों को पीस कर अलसी के तैल में मिलाकर जले हुए स्थानों पर लगाते हैं ।

M

MELIACEAE FAMILY

निम्बादि वर्ग

स्वरूप—पायः वृक्ष

पत्र —एकान्तर, संयुक्त, उपपत्ररहित, पत्रधारा पायः दन्तुर

पुष्प —पुष्पवाह्य कोष और पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ३-६,
पुर्केशर-८-१०, गर्भाशय-उर्ध्वस्थ

फल —प्रायः मांसल, १-५ कोष्ठ युक्त

बीज —बड़े

१८२. नीम

आयुर्वेदीय नाम—निम्ब, तिकतक, पारिभद्र, यूनानी—आजाद दरख्ते हिन्दी
अंग्रेजी—Margosa tree लैटिन—Melia Azadirachta

विवरण—नीम का वृक्ष २०-३० फुट ऊंचा होता है और इसका तना सीधा होता है जिसमें चारों तरफ शाखाएँ निकली रहती हैं। इसकी छाल काली, मोटी और खुरदरी होती है। इसका पत्ता ८-१० इंच लम्बा होता है जिसमें ६ से १४ जोड़ी पत्तियाँ लगी रहती है। एक पत्ती १ से ३ इंच लम्बी और उससे आधी चौड़ी होती है। बसन्त में छोटे सफेद रंग के और सुगन्धित फूल आते हैं। गर्मियों में फल लगते हैं जो पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। यह खिरनी के समान होते हैं। साधारण भाषा में इसे 'निम्बोली' कहते हैं। नीम सारे भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—फूल, पत्र, छाल और बीज।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक

आयुर्वेदिक मत—नीम शीतल, हल्का, आही, पाक में चरपरा हृदय को अप्रिय और अग्नि, वात, परिश्रम, तृष्णा, ज्वर, अरूचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कुष्ठ, हल्लास और प्रमेह को नष्ट करता है। नीम के पत्र नेत्रों को हितकारी वात कारक, पाक में चरपरे, सब प्रकार की अरूचि, कुष्ठ, कृमि, पित्त तथा विष नाशक है। नीम के फल कड़वे, पाक में चरपरे, मलभेदक, स्निग्ध, हल्के गरम, और कुष्ठ, गुल्म, बवासीर कृमि तथा प्रमेह को नष्ट करने वाले हैं। इसके तैल का नस्य सिर के बाल गिरना और गंज रोग में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके बीज में एक राल युक्त तैल होता है जिसे 'नीम' का तैल' कहते हैं। इसकी छाल में 'Margosine' और टैनिन होता है। इसकी छाल और पत्र बलकारक, ज्वरनाशक होते हैं। इसके पत्रों का लेप फोड़े और सूजन को मिटाता है। नीम का मूद कृमिनाशक, पाण्डुरोग नाशक और पीलिया नाशक होता है। इसका तैल कुष्ठ, कृमिरोग और प्रमेह में प्रयोग किया जाता है। चर्म रोग, यकृत रोग, कुष्ठ में प्रयोग होता है।

१८३. बकायन

आयुर्वेदीय नाम—महानिम्ब, रम्यक, विषमुष्टिका, निम्बक यूनानी—वान
अंग्रेजी—Bead Tree. लैटिन—Meliazedarach

विवरण—नीम के वृक्ष जैसा इसका वृक्ष ४० से ५० फुट ऊंचा होता है। इसकी टहनियों में पत्र भुङ्ग रूप में लगे रहते हैं। इसके पत्र का डण्ठल १ से २ फुट लम्बा होता है जिसमें अलग पत्तियाँ होती हैं। पत्तियों के किनारे आरे की तरह कटे हुए होते हैं। बसन्त में सफेद रंग के सुगन्धित फूल लगते हैं। इसमें एक इंच से कम लम्बे फल सदियों में आते हैं जो कच्चे हरे और पकने पर पीले होते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज निकलता है। यह उत्तर भारत में पाया जाता है। विलोचिस्तान, चीन, फारस में भी होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, छाल और फल।

मात्रा—पत्र का रस १ से २ तोला और बीज का चूर्ण $\frac{1}{2}$ से १ माशा।

आधुनिक मत—कटु-तिक्त-कषाय रस, लघु रूक्ष गुण, अनुष्णवीर्य, कटु विपाक है। इसका प्रभाव अशरोग नाशक है। यह त्रिदोश नाशक है। वात विकारों में लाभ करता है। बवासीर, कृमि रोग एवं रक्त विकारों का दूर करता है। कास, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ, एवम् ज्वर नाशक है। कष्टातिव में प्रयोग किया जाता है। इसका लेप कुष्ठ, व्रण और गंडमाला में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके अन्दर राल जैसा पदार्थ, चीनी और टैनिन होती है। डा० क्षौरी ने लिखा है कि बकायन की छाल कम मात्रा में बलकारक, संकोचक, ज्वर निवारक और कृमि नाशक है। इसके पत्र और फूल रसायन और मूत्रक होते हैं।

१८४. रोहनी

आयुर्वेदीय पर्याय—मांसरोहिणी, रोहिणी, प्रहारबल्ली, चर्मकषा
अंग्रेजी—Indian red wood. लैटिन—Soyimida Febrifuga

विवरण—इसके वृक्ष नीम के जैसे होते हैं। पत्र खिरनी के समान एक डण्ठल में आमने-सामने कई लगे रहते हैं। पत्र पक्षाकार होते हैं। फूल छोटे, हरे सफेद रंग के होते हैं जिनके भीतर अनेक सपक्ष बीज होते हैं। यह बनों एवं पर्वतों में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—छाल ।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—कषाय कटु रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाक होती है । यह त्रिदोषनाशक, वृष्य एवं सारक होती है । यह ज्वर नाशक, कृमिनाशक एवं कामोद्दीपक है ।

आधुनिक मत—इसकी छाल में एक तिक्त पदार्थ, राल, स्टार्च, टैनिन और गैलिक एसिड होते हैं । मलेरिया एवं अन्य पार्यायिक ज्वरों में इसका चूर्ण लाभ करता है । यह एक उत्तम संकोचक द्रव्य है । पुराने अतिसार एवं संग्रहणी में लाभ होता है । अधिक मात्रा में प्रयोग करने से चक्कर, बेहोशी आदि उपद्रव हो जाते हैं ।

MENISPERMACEAE FAMILY गुडूच्यादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः लता जाति

पत्र —एकान्तर, साधारण, अखण्ड, लम्बे, सवृन्त

पुष्प —छोटे, हरे, व पीले नियन्त और पत्रकोणोद्भूत, पुष्पवाह्य-कोश और पुष्पाभ्यन्तरकोश के दल ६-६

पुं केशर—नियत और अनेक, दोनों कोशों के दल और

पुं केशर दो चक्रों में, बीजकोश—अधःस्थ

बीज —मांसल

१८५. कलम्बा

अंग्रेजी—Calamba Root.

लैटिन—Jateorhiza palmata

विवरण—यह एक लता जाति की वनस्पति है । इसकी लता गिलोय के समान होती है । इसके मूल गोल टुकड़ों में कटे हुए शुष्क अवस्था में बाजार में बिकते हैं । यह बाहर से पीले रंग और अन्दर से भूरे रंग के होते हैं । यह वनस्पति अफ्रीका के प्रदेशों में उत्पन्न होती है ।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से २ माशा

गुण-कर्म—इस द्रव्य का आयुर्वेद के प्राचीन शास्त्रों में कहीं वर्णन उपलब्ध नहीं होता, यूनानी हकीम इसे प्रयोग करते हैं । यह कफ और पित्त के विकारों

में लाभ करता है। दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न कर्म करता है। यह रक्तशोधक, रक्त वर्धक, बलकारक एवं ज्वर नाशक है।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने से इसमें पाँच तत्व प्राप्त हुए हैं :—

- (१) कोलम्बेमिन (Columbamine)
- (२) पामेटिन (palmatine)
- (३) जैटिओराइजिन (Jateorhizine)
- (४) कोलम्बिन (Columbine)
- (५) कोलम्बिक एसिड (Coulmbic Acid)

१८६. गिलोय

आयुर्वेदीय पर्याय—गुडूची, अमृता, जीवन्ती, रसायनी, यूनानी—गुलञ्च
लैटिन—*Tinospora cordifolia*.

विवरण—यह बहुवर्षीय लता है। नीम आदि पेड़ों का सहारा लेकर चढ़ती है। इससे बहुत से घागे जैसे सूत्र निकलकर नीचे को झूलते रहते हैं। इसकी छाल बहुत पतली होती है जिसे हटाने पर हरा गूदा निकलता है। इसके पत्र चिकने, अगले हिस्से में नोकीले और हृदयाकृति होते हैं। फूल छोटे, पीले रंग के और गुच्छों में होते हैं। सर्दियों में फल लगते हैं जो पकाने पर लाल रंग के हो जाते हैं। यह सारे भारत में पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा

आधुनिक मत—तिक्त-कषाय-रस, गुरू स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य और मधुर विपाक है। त्रिदोषनाशक है। यह प्यास एवं वमन को मिटाती है। दीपन, पाचन, अनुलोमन एवं कृमिघ्न है। आमाशयगत अम्लता इससे कम होती है। कुष्ठ-ज्वर, दाह, रक्तरोग नाशक है। वृष्य एवं सूत्रजनन है। पाण्डु प्रमेह और कास में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसमें स्टार्च, बर्बेरिन और एक तिक्त सत्व होता है। डिमक ने लिखा है कि यह पाचक, बलकारक, वृष्य, रसायन ज्वरनाशक और स्निग्ध है। उपदंश, कुष्ठ, चर्मरोग, कामला में लाभ करती एवं सूत्र की मात्रा बढ़ाती है।

१८७. पाढ़

आयुर्वेदीय पर्याय—पाठा, अम्बुष्ठा, वरातिवित्का

अंग्रेजी—Velvet Leaf.

लैटिन - Cissampelos pareira.

विवरण—यह एक लता जाति की वनस्पति है। यह सूत्रवत पतली और अधिक से अधिक मोटी होने पर भी कनिष्ठा अंगुली से अधिक मोटी हीन होती। पृष्ठ भाग पर से पत्रवृत्त निकलता है जो २-४ इंच लम्बा होता है। इसमें हृदयाकृति पत्र लगते हैं। पत्र में ७-११ तक सिराएं होती हैं। जो पत्र-श्वेत रोमान्वित होते हैं। फूल वर्षाऋतु में लगते हैं जो पीताभ-श्वेत होते हैं। इसमें फल मकोय के समान रक्तवर्ण के होते हैं। शीतकाल में फल लगते हैं। इसके बीज वक्राकृति होते हैं। पंजाब, सिन्ध, दक्षिण भारत, लंका में होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—चूर्ण १-३ माशा

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघ तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाक होता है। यह त्रिदोषनाक विशेषकर वातकफ नाशक होना है। यह वल्य एवं विषघ्न है। यह शूल, ज्वर, छर्दि, कुष्ठ, कण्डू, अतिसार हृदयरोग, दाह, श्वास, कृमि, गुल्म और विषैले व्रणों में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके मूल में सिसम्पेलिन (Sissampeline) नामक तत्व होता है। यह शीत ज्वर, ज्वरातिसार, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ में प्रयोग किया जाता है। इसका बाह्य प्रयोग व्रणरोपक होता है।

MALVACEAE FAMILY

कर्पासादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप, मजबूत, रेसेदार**पत्र** - प्रायः रोमश, एकान्तर

पुष्प - सुन्दर, नियमित और शाखाग्रोद्भूत पुष्पबाह्यकोश के दल ५, अधोभाग में संयुक्त, पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५, पुंकेसर—अनेक अधोभाग में मिलकर नलिकाकार, बीजकोश—१ कोशी

१८८. कंधी

आयुर्वेदिक नाम—प्रतिबला, कंकातिका, शृण्यप्रोक्ता यूनानी—दरख्तशान
लैटिन—Abutilon Indicum.

विवरण—इसका क्षुप ४-५ फुट ऊंचा होता है जिससे पत्र रोमश एवं दन्तुरधार वाले होते हैं। फल गोल होता है किन्तु ऊपर कंधी की तरह दाँत होते हैं। बीज १५-२० की संख्या में काले या भूरे होते हैं, इन्हें 'बीज बन्द' कहा जाता है। यह समस्त भारत और लंका में उत्पन्न होते हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल बीज, पत्र मात्रा—१-३ माशा, स्वरस १-२ तोला

आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश निघंटु में बलाचतुष्टय के गुण एक साथ बताए गए हैं। वहाँ लिखा है कि चारों प्रकार की बला (कंधी, खरेंटी, गंगेरन, सहदेई) शीतल, मधुर, बलकारक, कान्तिवर्धक, स्निग्ध, ग्राही होती है। वातपित्त, रक्तपित्त, रुधिर और क्षयनाशक है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने कंधी के पत्तों में पिच्छिल द्रव्य, टैनिन, सेन्द्रिय अम्ल, कुछ ऐस्पैरेगिन बताया है। इसकी जड़ में भी ऐस्पैरेगिन होता है। उन्होंने लिखा है कि इसके बीज स्निग्धता करने वाले हैं। इसकी छाल मूत्रल और शीतल है और सुजाक तथा तत् जन्य अन्य अवस्थाओं में लाभ करती है।

१८९ कपास

आयुर्वेदीय नाम—कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता यूनानी—कुतून
अंग्रेजी—Cotton Plant लैटिन—Gossy pium Herbaceum.

विवरण—इसका क्षुप १० से १२ फुट ऊंचा होता है जिसमें अरण्ड के जैसे पत्र लगते हैं। ये आगे की तरफ तीन से पाँच भागों में विभक्त होते हैं। पीले रंग के फूल आते हैं और फल के अन्दर रुई तथा कई बीज निकलते हैं। ये बीज गर्मियों में फल पक कर फट जाने पर बाहर आते हैं। बीजों को देशी भाषा में 'बिनीले' कहा जाता है जिसे यूनानी में 'पम्बादाना' कहते हैं। इनसे तेल निकाला जाता है। इसकी जड़ बाहर से पीली और अन्दर से सफेद होती है। कपास सारे भारत में, विशेष कर बंगाल, गुजरात, बम्बई और मद्रास में होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़, छाल, फूल और बीज

मात्रा—बीज का चूर्ण ३-६ माशे, क्वाथ ५-१० तोला

आयुर्वेदिक मत—कपास मधुर, कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, ईशत् उष्ण वीर्य और मधुर विपाक है। यह वात नाशक होता है। इसके पत्र वातनाशक, रक्त विकार करने वाले, मूत्र वर्धक होते हैं। कान का दर्द, बहुरापन और कान के अन्दर आवाजें आना और कान के बहने में लाभ करता है। इसका फल दुग्ध-वर्धक, वीर्यवर्धक, कफ कारक चिकना और भारी होता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में स्टार्च, Chromogine, राल, स्थिर तेल और टैनिन होती है। इसकी जड़ की छाल में Di-hydroxy Benzoic acid और Phenol होता है। फूलों में रजक द्रव्य और Gossypetin होता है। बीजों के तैल में Cossypol निकलता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि कपास के फूल का शबंत मस्तिष्क विकारों में लाभ करता है। इसके फूलों का लेप जले हुए पर लगाया जाता है। कपास के कच्चे फल में अफीम और जायफल भरकर पुटपाक की विधि से उसके चूर्ण कर खूनी दस्तों में दिया जाता है। इसकी जड़ का क्वाथ कपास के बीज अतिसार, रक्तातिसार में दिए जाते हैं। ये वृष्य, कफनिःसारक और दूध बढ़ाने वाले होते हैं।

१६०. खतमी

Althoca-officinalis

विवरण—खतमी का क्षुप ४ से ६ फुट ऊँचा होता है। इसका पत्र गोल खुरदरे और फीके हरे रंग के होते हैं। इसके फूल गोल और बड़े होते हैं जिनमें गन्ध नहीं आती। अलग २ जातियों में फूल के रंग अलग-अलग होते हैं। किसी में सफेद, किसी में लाल और किसी में पीले और गुलाबी फूल लगते हैं। सफेद रंग के फूलों वाली खतमी सबसे अधिक लाभ करती है। जामुनी रंग के फूल वाली खतमी को 'गुलेरवरू' कहते हैं। खतमी के बीज काले रंग के और चपटे होते हैं। इसकी जड़ बहुत चिकनी और लुआबदार होती है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, फूल और जड़

मात्रा—५ माशे से ७ माशे तक

गुण-कर्म—इसके पत्र गर्मी की सूजन, कंठमाला, आमवात और गृध्रसी (Sciatica) जोड़ों के दर्द में लाभ करते हैं। इसके पत्तों को सिरके में पीसकर त्वचा के सफेद दागों पर लगाकर घूप में बैठने से लाभ होता है। दूसरी दवाओं के साथ निमोनिया में खिलाया जाता है। पेट का दर्द, पेचिश और पेशाब की जलन को मिटाता है। खतमी के फल मुंजिशों में डालते हैं। इसका क्वाथ मूत्राशय की अश्मरी को निकालता है। अर्द्धित, अपस्मार में लाभ करता है और औरतों को मासिक स्राव साफ लाता है। यह सूजन व दर्द को मिटाता है।

खतमी बीज शरीर में एकत्रित हुए दोषों को स्निग्ध करके विरेचन के द्वारा निकाल देते हैं। वृक्क की अश्मरी, आमवात और निमोनिया में अच्छा लाभ होता है। खांसी में कफ और खून जाए तो यह लाभ करते हैं। खतमी की जड़ विवन्ध को मिटाने वाली और पेचिश को दूर करने वाली होती है। पित्त के दस्त और पेशाब की जलन, आंतों की जलन और खुश्की को मिटाती है। मूत्राशय की विकृति और वृक्क की अश्मरी में लाभ करती है। इसको पीसकर सूअर या बकरी की चर्बी और रोगन सोसन और वाकले के आटे में मिलाकर पकाकर जोड़ों की सूजन और जोड़ों के दर्द पर बांधने से सख्त से सख्त दर्द और सूजन दूर हो जाते हैं।

१६१. खरैंटी

आयुर्वेदीय पर्याय—बला, खरयष्टिका, वाटचालिका

अंग्रेजी—Coultry Mallow.

लैटिन—*Sida cordifolia*.

विवरण—इसका पौधा २ से ४ फुट ऊँचा होता है जिसके पत्र १-२ इंच लम्बे १ इंच चौड़े रोमश होते हैं। इनमें ७-९ सिराएँ होती हैं और गोलदन्तुर होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं और फल मूंग के समान पंचकोष्ठी होता है। इसके बीज भी भूरे-या काले रंग के छोटे-छोटे होते हैं। यह समस्त भारत व लंका में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, मूल, बीज

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा, स्वरस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत्त—कंधी के समान।

प्राधुनिक मत — रासायनिक विश्लेषण से इसके बीजों में ०.३२% कार्बोहाइड्रेट पाए गए हैं जिनमें मुख्य भाग 'इफेड्रीन' (Ephedrine) होता है। इसकी जड़ में ऐस्पेरैगिन और गिलेरिन होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसकी जड़ शीतल, कषैली, तिक्त, बल्य, ज्वरघ्न, स्निग्ध एवं मूत्रल होती है।

१६२. गंगोरन

आयुर्वेदीय पर्याय — गांगेरूक, नागबला, भूषा, लहस्वा, गवेधुका।

लैटिन — *Sida Humilis*.

विवरण—यह रोमयुक्त वनस्पति है जो भूमि पर अथवा झाड़ों पर फैलने वाली होती है। २ से ३ फुट तक यह सर्पवत टेढ़ी चलती है। तने की प्रत्येक गांठ से मूल निकलता है। पत्र १।२ से १ इंच लम्बे लट्वाकार या हृदयाकार होते हैं। यह कंगूरेदार होते हैं। पीले रंग के फूल लगते हैं। फल पकने पर नारंगी के रंग के हो जाते हैं। यह समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—मूल क्वाथ ५ से १० तोला, मूलत्वक चूर्ण १½ माशा से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—कंधी के अनुसार।

आधुनिक मत—डा० वामन गणेश देसाई ने इस औषध का लैटिन नाम *Sida Garpinifolia* बताया है। उनका कहना है कि इसकी जड़ का चूर्ण अजीर्ण में लाभ करता है। मूल का क्वाथ आमवात की उत्तम औषध है। ज्वर में सौंठ के साथ इसका क्वाथ दिया जाने से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती और उष्णता कम होती है। सुजाक में इसकी जड़ का चूर्ण दूध के साथ दिया जाता है। दूध के साथ देने पर कास एवं श्वास में भी लाभ होता है।

१६३. लता कस्तूरी

आयुर्वेदीय पर्याय—लता कस्तूरिका, कटुक।

अंग्रेजी—Musk Mallow.

लैटिन—*Hibiscus Abelmoschus*.

विवरण इसका वर्षायु क्षुप ३ से ५ फुट ऊंचा होता है। जिसमें भिन्डा के जैसे पत्र लगते हैं, यह रोमश एवं ३ से ५ भागों में विभक्त होते हैं।

कर्पासादि वर्ग

२३७

शाखाओं के अग्रभाग में पीले रंग के फूल लगते हैं। फल भिन्डी के आकार के होते हैं जिनमें वृक्काकार, चपटे, कृष्ण वर्ण के बीज निकलते हैं। इन बीजों में कस्तूरी के समान गन्ध आती है। इन्हें 'मुश्कदाना' कहा जाता है। यह बंगाल, मद्रास एवं उत्तरी नेपाल में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज

आयुर्वेदीक मत—तिक्त रस, लघु गुण, शीत वीर्य एवम् मधुर विपाक होते हैं। कफ नाशक, मुख शोधक, रुजि कारक, चक्षुष्य, दीपक होते हैं। यह तृष्णा क्लेद एवम् मुख के रोगों को दूर करते हैं मूत्रल होते हैं और दुर्गन्ध नाशक होते हैं।

आधुनिक मत—निर्यास, अलव्युमिन, सुगन्धित तैल, सुगन्ध द्रव्य, राल, ठोस स्फटिकीय द्रव्य होते हैं।

१६४. सहदेई

आयुर्वेदीय नाम—महाबला, पीतपुष्पा, सहदेवा, क्षेत्रबला

लैटिन—*Sida Rhombifolia*.

विवरण—इसका क्षुप ३ से ५ फुट ऊंचा होता है। पत्र एकान्तर, लट्वाकार होते हैं फूल छोटे २ पीले रंग के होते हैं। छोटे २ फल लगते हैं। बीज १ से २ होते हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल, पंचांग

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला, चूर्ण $\frac{1}{2}$ से ३ माशा

आयुर्वेदीक मत—कंघी के अनुसार।

१६५. सेमल

आयुर्वेदीय नाम—शाल्मली, मोचा, पूरणी, रक्त पुष्पा।

अंग्रेजी—Silk Cotton tree. **लैटिन—***Bombax malabaricum*

विवरण—सेमल का बड़ा वृक्ष होता है। इसकी एक-एक शाख में पाँच २ पत्र होते हैं जो करतलवत् दिखाई देते हैं। इसमें लाल रंग के मोटे दल के फूल लगते हैं। इसमें ६ से ७ इंच लम्बा और पाँच कोष्ठ वाला फल लगता है जिसके भीतर रूई निकलती और काले रंग के बीज निकलते हैं। इसकी

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

छाल में कीड़ों के द्वारा एक गोंद तैयार होता है जिसे 'मोचरस' कहते हैं। ये भूरे रंग का और हल्का होता है। सेमल पेड़ के दो साल का होने पर उसकी जड़ निकाल ली जाय तो वह 'सेमल-मुशली' कहलाती है। सेमल सारे भारत में, लंका, बर्मा और सुमात्रा में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, फूल, फल और गोंद

मात्रा—जड़ $\frac{1}{2}$ से १ तोला, फल का रस १ से २ तोला, फल या गोंद १ से ३-माशा।

आयुर्वेदिक मूल—मधुर रस, लघु स्निग्ध पिच्छिल गुण, शीत वीर्य और मधुर त्रिपाक है। यह वात पित्तशामक और कफ वर्धक है, रसायन है, रक्त-पित्त और रुधिर विकार नाशक है। यह बनकारक एवं शुक्र वर्धक है। इसके फूल का शाक, घी और सेंधव नमक से बनाकर प्रयोग किया जाय तो प्रदर रोग शान्त होता है।

मोचरस कसैला, स्निग्ध, शीतल होता है। यह संग्राहक है। प्रवाहिका, अतिसार, कफ पित्त, रुधिर, रक्त विकार और दाह को नष्ट करता है।

आधुनिक मूल—मोचरस में Tannic acid और Galic acid होता है। डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि इसकी जड़ संकोचक, रसायन, चिकनी और धातु वर्धक है। अतिसार और अधिक रजः स्राव में दिया जाता है। इसे क्षय रोग में भी प्रयोग करते हैं। मोचरस भी खून के बन्द करने और धातु बढ़ाने तथा वाजीकरण औषधियों के साथ प्रयोग कराया जाता है।



MORINGACEAE FAMILY शोभाञ्जनादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—एकान्तर, संयुक्त

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्पाभ्यन्तरकाश के दल—५,

पुं केशर—अनियत स्त्रीकेशर—१

फल—लम्बी सेम, तीन स्थानों पर फटने वाली

बीज—प्रभूत तैल युक्त

१६६ सहंजना

आयुर्वेदीय पर्याय—शोभाञ्जन, शिग्रु, तीक्ष्ण गन्धा, मोचक, अक्षीव

अंग्रेजी - Horse Radish tree लैटिन—*Moringa Pterygosperma*

विवरण—इसका वृक्ष २० में २५ फुट ऊंचा होता है जिसकी लकड़ी और छाल मुलायम होती है। एक डन्डल में जो १ से २ फुट तक लम्बा होता है ६ से ८ जोड़े पत्तियों के लगे होते हैं। पत्तियां $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच लम्बी होती हैं। और इन सबके मिलने से एक पत्र बनता है जो पक्षाकार होता है। नीलापन लिये सफेद रंग के फूल बसन्त ऋतु में गुच्छों में निकलते हैं। इसमें लम्बी २ फलियाँ लगती हैं। जिसमें छः धारियाँ पड़ी रहती हैं और इनका रंग हरा होता है। इसमें मिर्च जैसे सफेद रंग के बीज निकलते हैं। निघण्टुकारों ने दो प्रकार का सहंजना बनलाया है, एक सफेद फूल वाला दूसरा लाल फूल वाला। सफेद फूल वाला कड़वा होता है और लाल फूल वाला मीठा होता है। लाल फूल के कम मिलना है। यह बंगाल, राजपूताना और सिंध में पाया जाता है। इसका लैटिन नाम *Moringa Concanensis* है। कड़वा सहजना सारे भारत में मिलता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, पत्ते और फली

मात्रा—रस २ से ४ माशा, बीज का चूर्ण १ माशा।

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, (मधु रस) लघु रुक्ष, तीक्ष्ण और सर गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। अग्नि दीपन करने वाला। रूचिवर्द्धक, दाह कारक, संग्रहाक, वीर्यवर्द्धक, हृदय को हितकारी होता है, कफवात नाशक है। विद्रधि, सूजन, कृमि, मेद रोग, अपची, विष, प्लीहा रोग, गुल्म गंडमाला तथा व्रणों को नष्ट करने वाला है। सहंजना की छाल और पत्रों का रस हर प्रकार की वेदना को नष्ट करता है। इसके बीज नेत्रों को हितकारक; कफवातनाशक और विषनाशक होते हैं। इसके बीजों का नस्य लेने से सिर दर्द दूर होता है। इसका तेल सारक, वातकफशामक, कृमि नाशक, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और सिर के रोग दूर करता है।

आधुनिक मत—कर्नल चोपड़ा और डे ने सन् १९३० में इस की जड़

की छाल में Moringinine और Moringine नामक दो उपक्षार पता लगाये । इनमें दूसरा अधिक क्रिया करने वाला है । इनकी क्रिया एफीड्रीन के समान होती है ।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि यह आक्षेप को मिटाता, उत्तेजना देता, कफ को सरलता से निकालता और मूत्र की मात्रा को बढ़ाता है । इसकी जड़ को पीस कर लगाया जाये तो त्वचा को भूनभूनाहट पैदा करता है । सैधा नमक और हींग के साथ यह अन्तःविद्रधि, पत्थरी, बेहोशी, मृगी और अर्धांग, आमवात, शोथ, खांसी, पेट का अफारा और जलोदर में लाभ करता है । इसके बीजों का तेल आमवात, वातरक्त और दूसरे दर्दों में मालिश के काम लिया जाता है । इसके छाल का लेप फोड़े को पका देता है ।

MYRTACEAE FAMILY

लवंगादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र —अभिमुख, सादे अखण्ड, सुगन्धित, तैल, ग्रन्थि युक्त,

पुष्प —पत्रकोणोद्भूत या शाखाग्रोद्भूत पुष्प वाह्यकोश एवं पुष्प अभ्यान्तर कोश के दल ४-५

फल —शुष्क या मांसल

१६७. आस

Myrtus communis

विवरण—आस पास वृक्ष होता है जिसके फल और पत्ते औषध रूप में प्रयोग होते हैं । फल काली मिर्च से कुछ बड़े होते हैं और उन के अन्दर आठ, सात छोटे २ बीज निकलते हैं जो चिकने होते हैं । यह 'हब्बुल-आस' या 'तुरूम मूरद' कहलाते हैं । इसके पत्ते वर्ग आस कहलाते हैं ।

प्रयोज्य अंग—फल, पत्ते

मात्रा—३ से ५ माशा

गुण-कर्म—आयुर्वेद के प्राचीन साहित्य में कहीं वर्णन नहीं मिलता । यूनानी हकीम 'हब्बुल आस' को दस्त बन्द करने और बहते हुए खून को रोकने के लिये प्रयोग करते हैं । पसीना रोकने के लिए इसे बारीक पीसकर शरीर पर

लवंगादि वग

२४१

लगाते हैं। दिल की कमजोरी और मस्तिष्क विकार को दूर करने को देते हैं। 'शर्बत हब्बुल आस' यूनानी की एक प्रसिद्ध दवा है जो कि दस्त बन्द करने, खून रोकने, आमाशय और दिल को ताकत देने के लिए प्रयोग कराया जाता है।

पत्तों को गर्म सृजन और सिंग ददं को मिटाने के लिए पीस कर उगाते हैं। बगल के पसीने को रोकने और उसकी बू को दूर करने के लिए बगल में मलते हैं वालों को मजबूत रखने और काला रखने के लिए खिजावों में प्रयोग करते हैं।

आधुनिक मत—कर्नल चोपरा ने लिखा है कि इसके पत्ते संकोचक होते हैं। यह मस्तिष्क विकार विशेष कर अपस्मार में लाभ करते हैं। यह आमाशय और यकृत की विकृतियों में भी दिये जाते हैं।

इसके फल दस्त, पेचिश, अर्श और आन्तरिक व्रणों में लाभ करते हैं। यह आमवात में प्रयोग किए जाते हैं।

१६८. जामुन

आयुर्वेदीय पर्याय—जम्बू, महफला, फलेन्द्रा

अंग्रेजी—Black Berry

लैटिन—Eugenia Jambo Lana

विवरण—इसका बड़ा वृक्ष सदैव हरा रहता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच लम्बे और २ से ३ इंच चौड़े होते हैं। सफेद या सुनहरे फूल बसन्त में आते हैं १/२ से १॥ इंच लम्बे फल वर्षा आरम्भ होने पर आते हैं। कच्चे फल हरे और पक जाने पर गाढ़े नीले रंग के होते हैं। इसके अन्दर एक गुठली निकलती है। यह कई जाति की होती है और सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फल, गुठली, छाल और पत्ते

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, चूर्ण १ ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय, मधुर-अम्लरस; लघु-रूक्ष गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक है। यह पित्त शामक है तथा बहुत वातकारक है। यह सग्राहक है। अतः अतिसार एवं रक्तस्राव में लाभ करती है। यह रोचक, पाचक, कंठशूल नाशक एवं कृमिरोगनाशक है। श्रम, दाह, कास एवं श्वास रोगनाशक है, इसकी गुठली की गिरी विशेषकर मधुमेह का नाश करती है।

आधुनिक मत—इसमें 'जम्बोलिन' 'इलैंगिक एसिड' 'गैलिक एसिड' और

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

‘अलव्युमिन’ होता है। आधुनिक खोज में इसे मधुमेह की उत्तम दवा बताया है। डिमक ने लिखा है कि अभी तक यह पता नहीं चला मधुमेह को ठीक करने में यह क्या क्रिया करती है, लाभ जरूर होता है।

१६६ लौंग

आयुर्वेदीय पर्याय लवंग, देव कुसुम, श्रीप्रसून, वारिज यूनानी—करनफूल
अंग्रेजी—Clove लैटिन—Caryophyllus Aromaticus

विवरण—इसका सदा हरित वृक्ष ३० से ४० फुट ऊँचा होता है। इसकी छाल मुलायम और मैले पीले रंग की होती है तने से बहुत सी मुलायम शाखाएँ निकलकर चारों तरफ फैली रहती हैं। हरे रंग के पत्ते अण्डाकार होते हैं। फूल बहार से लाल रंग के होते हैं और चार तिकोने हिस्सों में बंटे रहते हैं। इसमें गूदेदार लगभग १ इंच लम्बा फल लगता है। हरेक फल में एक बीज निकलता है। आरम्भ में यह मलाया और सैलिबिस टापु से आती थी अब सुमात्रा, बोर्नियो, ब्राजील, गियाना, ट्रावनकोर में भी उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—कलियां

मात्रा—४ से १२ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कटु रस, लघु तीक्ष्ण स्निग्ध गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। यह कफपित्त का नाश करती है। दीपन, पाचन और रुचि-वर्धक है। मुखदुर्गन्ध नाशक है। वायु का अनुलोमन करती और शूल का नाश करती है। यह कास, श्वास, हिक्का और क्षय में लाभ करती है। प्यास उलटी और पेट के अफारे को दूर करती है ज्वरों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह शुक्रस्तम्भक व मूत्रजनन है।

आधुनिक मत—इसमें १८% भारी उड़नशील तैल मिलता है। कैरियो-फाईलिन, रेजिन, कैरियोफाईलिक एसिड, ‘युजिनिन’ ‘युजिनाल’ होता है।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि यह Antiseptic है। स्थानिक सुन्नता करती, आमाशय को बल देती, पाचन करती, रोचन, वमन को रोकती और दर्द की ऐंठन को रोकती है। इसका बाहरी प्रयोग किया जाए तो यह लगाने पर त्वचा को लाल करती, सुन्नता करती और पूयहर कर्म करती है। इसके खाने से खून का बहाव बढ़ता और उष्णता ज्यादा हो जाती है। यह

लवंगादि वर्ग

- २४३

पाचन को बढ़ाती और आमालशय तथा आंतों के दर्द को दूर करती है। यह त्वचा को, लालास्राव बनाने वाली ग्रन्थियों को, वृक्कों को यकृत को और श्वासवाहिनियों को उत्तेजित करती है। यह श्वास से, स्वेद से, पित्त से, दूध से, और पेशाब से शरीर के बहार निकलती है।

२००. समुद्र फल

आयुर्वेदीय पर्याय — इज्जल, निचुल, विदुल, अम्बुज, हिज्जल
लैटिन *Barringtonia Acutangula*,

विवरण — इसका वृक्ष २० से ४० फुट ऊँचा होता है। पत्र लम्बे गोल, ५ इंच लम्बे २ इंच चौड़े होते हैं। पुष्प दण्ड लगभग १ फुट लम्बा होता है जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। फल १ से १॥ इंच चौड़ा और $\frac{1}{2}$ से १ इंच लम्बा होता है। यह तीन रेखायुक्त होता है और देखने में बड़ी इलायची के सदृश होता है। यह मध्य भारत, दक्षिण भारत, बंगाल एवं हिमालय प्रदेश में उत्पन्न होता है। बर्मा में भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग — फल, मूल, पत्र

मात्रा — चर्ण ५ से १० रत्ती, पत्र स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत — कटु रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक होता है। यह वामक है वमनार्थ इसके फल की मात्रा ३ से ६ माशा होनी चाहिए। यह त्रिदोष नाशक है। भ्रान्ति नाशक है, भूत नाशक होता है, वात व्याधियों में लाभ करता है। इसे जल के साथ चिसकर पान किया जाए तो कृमि रोग नाशक होता है। यदि इसे पानी में पीसकर अज्जन लगाया जाय तो यह कामला का नाश करता है और चक्षुःस्राव के लिए महीषघ है।

चक्रदत्त में इसके पत्तों का रस मधु के साथ सेवन करने से अमातिसार में लाभ होना बताया है।

आधुनिक मत — इसके फल में ग्लूकोसाईड, सैपोनिन, बैरिंग्टोनिन, स्टार्च, प्रोटीन, सेल्युलोज, वसा तथा क्षारीय लवण होता है।

यह मूत्रल है, रक्तशोधक एवं कुष्ठनाशक है। इससे गर्भाशय का संकोच होता है। कुष्ठनाशक एवं विषनाशक होता है।

२४४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

MYRICACEAE FAMILY

कटफलादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष

पत्र—एकान्तर, सादे

पुष्प—बीज कोष-ऊर्ध्वस्थ

फल—मांसल

बीज—एक बीज

२०१. कायफल

आयुर्वेदीय पर्याय—कटफल, सोमकल्क, भद्रा,

यूनानी—दारशीशग्रान

अंग्रेजी—Box Myrtle

लैटिन—Myrica Nagi

विवरण—इसका वृक्ष सदैव हरा रहता है। यह छायाकार और सुगन्धित होता। इसके पत्र ४ से ६ इंच लंबे चौड़े और सुगन्धित होते हैं। इसमें लाल रंग फूल लगते हैं जो छोटे और रोमश होते हैं। सर्दी में फूल खिले रहते हैं। गर्मियों में इसमें फल लगते हैं जो खिरनी के समान होते हैं। इस वृक्ष की छाल पीताभ वर्ण की भारी और $\frac{1}{4}$ इंच मोटी होती है और इसमें छोटे दाग होते हैं। इसमें बहुत तेज गन्ध होती है जिसे सूंघने से छींक आने लगती है। इसकी छाल ही 'कायफल' कहलाती है। यह पंजाब, गढ़वाल, कुमाऊं, नेपाल और खासिया की पहाड़ियों में पैदा होता है।

प्रयोग्य अंश—छाल

मात्रा—चूर्ण १ से २ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त कषाय रस, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह वातकफशामक व पित्तवधक है। ज्वर, प्रमेह बवासीर, खांसी, कंठ के रोग और अरुचि इन सबको ठीक करता है। यह प्रतिश्याय, मुख रोग और गलगण्ड नाश करता है, यह नस्य के काम में लिया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में टैनिन, सेक्विनिन और नमक होते हैं। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि कायफल उत्तेजक, रसायन, सुगन्धित और संकोचक होती है बुखार, जुकाम, दस्त, पेचिश में, गण्डमाला और गनोरिया में लाभ करती है, इसका नस्य छींक पैदा करता है। विसूचिका में हाथ-पाव ठंडे हो जाएँ तो इसके बीजों को बारीक पीस कर लगाने से शरीर में उष्णता उत्पन्न हो जाती है।

MYRISTICACEAE FAMILY जातिफलादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष,

पत्र—अखण्ड, एकान्तर, उपपत्ररहित

पुष्प—श्वेत वर्ण, बाह्यकोष के दल ३

पुंकेसर—१०, बीजकोश—१ खण्ड वाला

फल—मांसल

बीज—बड़े और तैल युक्त

२०२. जायफल

आयुर्वेदीय पर्याय—जातिफल, जातिकोष, मालनीफल यूनानी—जोज बुजा

अंग्रेजी—Nut Meg

लैटिन—Myristica Fragrans

विवरण—इसका वृक्ष बड़ा होता है और उसकी शाखाएँ नीचे को झुकी रहती हैं। इसके पत्र जामुन के पत्तों जैसे होते हैं। किन्तु उनसे कुछ छोटे और सुगन्धित होते हैं। इनकी ऊपर की स्तर गहरे रंग की होती हैं। और नीचे की पीली मटैली वर्ण की। बरसात के बाद में छोटे, सुगन्धित और पीले रंग के घूसर फूल लगते हैं। इसका फल कुछ लम्बा गोल, छोटी नासपाती या अमरूद जैसा होता है। इसकी तीन स्तरें होती हैं, १. ऊपर का खोल जो कि पीले रंग का और मोटा होता है। इसके नीचे २. एक पतली सी झिल्ली होती है और उसके नीचे ३. बीज होता है। इस बीज की आकृति मुर्गी के अण्डे की सी होती है और उसका रंग खाकी सा होता है।

फल के पक जाने पर वह स्वयं फट जाता है और उसका खोल हट जाने के बाद पतली झिल्ली अलग हो जाती है। इसे 'जावित्री' कहा जाता है। फारसी में 'बजबाज' कहते हैं और अंग्रेजी में Mace कहते हैं। अन्दर का बीज 'जायफल' कहलाता है।

प्रयोज्य अंग—जायफल और जावित्री

मात्रा—५ से १० रत्ती

आयुर्वेदिक मूल—जायफल कटु, तिक्त, कषाय रस, लघु-तीक्ष्ण और स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और कटु बिपाक है। वातकफ शामक है। यह कारक, अग्नि दीपक है। मुख की विरसता का नाश करता, स्वर को ठीक

करता और मल की दुर्गन्ध एवम् कृष्णता का नाश करता है। यह संग्राही है, यह कास, श्वास पीनस, कृमि, वमन एवम् बलकारक होता है।

जावित्री रुचिकारक, व्रण रोपक, कास, श्वास, तृष्णा, वमन एवं विष का नाश करती है।

आधुनिक मत—जायफल एवम् जावित्री में उड़नशील तैल एवम् स्थिर तैल होते हैं। वसा भी होती है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि जायफल और जावित्री सुगन्धित पाचक और उत्तेजक होते हैं। थोड़ी मात्रा में पाचन को तीव्र कर भूख बढ़ाता, अफारा हटाता और अग्निमान्द्य एवं उदरवृल का नाश करता है। अतिक मात्रा में यह मूढ़ता एवं प्रलाप पैदा करता है। अतिसार, रक्तातिसार, मूत्र-कृच्छता और रक्तमूत्रता में लाभ करता है। सिर दर्द एवं वातव्याधि में लेप करते हैं, दूसरे तैलों में मिलाकर शोथ एवं शूल के स्थान पर अभ्यंग करते हैं।

MYRSINACEAE FAMILY

बिडंगादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः झाड़ी

पत्र—एकान्तर सादे

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्प आभ्यन्तर कोश के दल ४-५

फल—मांसल

स्वरूप—क्षुप

२०३ बायबिडंग

आयुर्वेदीय पर्याय—बिडंग, कृमिघ्न, जन्तुनाशन, अमोघा

यूनानी—विरग काबुली

जर्मनी—Babreng

लैटिन—Embelia Ribes

विवरण—इसकी बड़ी झाड़ी होती है जिसमें अण्डाकार पत्र लगे होते हैं और उनका अग्रभाग नौकीला होता है। इसमें सफेद रंग के फूल आते हैं और काली मिर्च जैसे फल गुच्छों में लगते हैं। फल के भीतर घूसर वर्ण का गूदा

पुनर्नवादि वर्ग

२४७

निकाला है और एक बीज निकलता है, जिस पर सफेद दाग होते हैं। यह भारत में पहाड़ी प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—१ से २ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु-रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह वात शामक है। यह अग्निवर्धक है। शूल, अफारा, उदर विकार, कृमि रोग एवम् विबन्धु का नाश करती है। अग्निमान्द्य, अरुचि और आन्ति नाशक है। इसका प्रयोग रसायन भी है।

आधुनिक मत—इसमें Embalic acid, tannin और christombine होता है।

डा० आर. एन. सौरी ने लिखा है कि यह रेचक है, यह अफारा मिटाती, वायु का नाश करती और कृमि रोग नाशक है। यह रसायन भी है। डा० देसाई ने इसे मस्तिष्क को बल देने वाली और रक्त को शुद्ध करने वाली भी कहा है।



N

NYCTAGINACEAE FAMILY

पुनर्नवादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप

पत्र—अभिमुख सादे, उपपत्ररहित।

पुष्प बाह्याभ्यन्तर कोष, संयुक्त

पुं केशर—अनियत, बीजकोश-उर्ध्वस्थ, एक खण्ड वाला

फल—पतली त्वचा वाला, कोश नलिका के भीतर आवृत

२०४. बिसखपरा

आयुर्वेदीय पर्याय—पुनर्नवा, शोथघ्नी, श्वेतमूला

यूनानी—हृदकूकी

अंग्रेजी—Spreading Hogweed

लैटिन—Boerhavia Diffusa

विवरण—इसकी छोटी बेल २-३ फुट लम्बी होती है जो बरसात में खूब

फैली रहती है। पत्र १ से १॥ इञ्च लम्बे, गोल और गुदेदार तथा मुलायम
रुएँ से भरे होते हैं। फूल छोटे और सफेद रंग का होता है। इसमें $\frac{1}{2}$ इञ्च
लम्बे गोल फल लगते हैं जिनमें चौलाई के बीजों के जैसे बीज निकलते हैं।
इसकी जड़ मोटी, सख्त और सफेद रंग की होती है।

इसकी एक जाति और है जो लाल रंग की होती है। यह ज्यादा मिलती
है। बिसखपरा सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़ और पूरा पौधा तथा बीज।

मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण जड़ का ३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर निक्त कषाय रस, लघु-रूक्षगुण होती है। श्वेत
बिसखपरा उष्णवीर्य और मधुर विपाक है तथा लाल पीतवीर्य और कटु विपाक
है। श्वेत कफवात का नाश करता, पाण्ड रोग, सूजन, विष विकार एवं उदर-
रोग नाशक है। रक्त कफ नाशक है, रक्त वातकारक, पित्त एवं रक्त विकार
नाशक हैं। हृदय रोग, उरक्षत, कास एवं अर्श, शूल नाशक है। यह मूत्र
ज्यादा लाता है।

आधुनिक मत—इसमें 'पुनर्नवीन' और 'पोटाशियम नाइट्रेट' होता है।
डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह हल्का दस्तावर, पेशाब साफ करने वाला, कफ
निकालने वाला और वामक होता है। इसका लेप त्वचा की शोथ मिटाता है।

NYMPHAEACEAE FAMILY

कमलादि वर्ग

स्वरूप—जलप क्षुप

पत्र—बड़े, गोल, जल पर तैरने वाले

पुष्प—एकाकी, सफेद, लाल, पीले आदि विभिन्न रंग के,

पुष्पवृन्त—लम्बा, मोटा, सच्छिद्र, पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्पा-
भ्यन्तर कोश के दल ३-६ पुंकोशर एवं स्त्रीकोशर, अनेक
बीज कोष—८ या अधिक संयुक्त, उर्ध्वस्थ, सूर्यविकाशी
अथवा चन्द्रविकाशी

२०५. कमल

आयुर्वेदीय पर्याय—कमल, पद्म, नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, पंकेरूढ़
 अंग्रेजी—Sacred Lotus लैटिन—*Nelumbium Speciosum*

विवरण—यह जल में होने वाला क्षुप है जो कीचड़ में उगता है, इसके पत्र १-३ फुट व्यास के पत्रनाल में लगे हुए पानी के ऊपर रहते हैं जो चिकने और गोल होते हैं, इसमें सुगन्धित पुष्प लगते हैं जिनका रंग श्वेत अथवा रक्त होता है। यह पुष्प सूर्योदय पर खिलते हैं और सायं समय संकुचित हो जाते हैं। पुष्पानुसार श्वेत एवं रक्त के अतिरिक्त इसकी एक और जाति भी होती है जिसमें नील पुष्प आते हैं। इसे नीलोफर कहा जाता है। कमल समस्त भारत में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—बीज चूर्ण ६ माशा, मूल स्वरस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—नीलोफर के समान

२०६. नीलोफर

आयुर्वेदीय पर्याय—कुमुद, उत्पल

यूनानी—नीलफर

अंग्रेजी—Water Lily

लैटिन—*Nymphaea Lotus*

विवरण—यह कमल की एक जाति होती है। इसकी जड़ कीचड़ में रहती है। पत्र चिकने, गोल होते हैं और फूल नीले रंग के होते हैं। कुमुद के बीज को कमल गट्टा कहा जाता है। यूनानी हकीमों का ख्याल है कि भारत में पैदा होने वाले बाहर से आने वाला नीलोफर ज्यादा गुण करता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—बीज चूर्ण ३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर, कषाय, तिक्त रस, लघु-स्निग्ध, पिच्छिल गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक है। कफ पित्तशामक है। यह वर्ण कारक, तृष्णा, दाह, रक्तरोग, विस्फोट, विष-विसर्प का नाश करता है। यह रक्तपित्त नाशक है। कमलगट्टा विष्टम्भि, वृष्य, गर्भसंस्थापक, बलकारक और संग्राहक है।

आधुनिक मत—इसके बीज और जड़ में राल, ग्लुकोज, मेटाबिन, टैनिन नेलम्बिन होते हैं।

बोस और कीर्तिकार ने लिखा है इसके फूल दस्त, हैजे, बुखार और जिगर के रोगों में फायदा करता है। हृदय के लिए पौष्टिक है। इसकी जड़ पीसकर आम्रातिसार और बवासीर में फायदा करती है।

राक्सवर्ग ने इसके बीज (कमलगट्टा) पुराने प्रमेह रोग को नाश करने वाले कहे हैं।

0

OLEACEAE FAMILY

पारिजातादि वग

स्वरूप—वृक्ष अथवा क्षुप

पत्र—अभिमुख उपपत्र रहित

पुष्प—पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ५, पुंकेसर—३

२०७ जैतून

Olea Europea.

विवरण—इसके वृक्ष बड़े होते हैं जिसमें अमरूद के जैसे पत्र लगते हैं जो कुछ गोल होते हैं। इसके फल अण्डे की शक्ल के और कलमी बेर के बराबर होते हैं। यह कच्ची हालत में हरे और पकने पर लाल और अन्त में काले पड़ जाते हैं। इसके फल की गुठली पौन इंच लम्बी और आधा इंच मोटी होती है। इसका मूलस्थान भूमध्यसागर है। बलूचिस्तान में भी पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फल, पत्र, तैल और गोंद

मात्रा—तैल 2½ तोला, गोंद ४ से ५ माशा

गुण-कर्म—इसके पत्र कब्ज करते हैं। जंगली जैतून के पत्तों को सुखाकर तथा पीसकर बदन पर मलने से यह पसीना बन्द करते हैं। इनका लेप पित्त, खुजली, दाद, ब्रणों में लाभ करता है। शहद में मिलाकर लगाने से ब्रण शीघ्र भरते हैं। पत्रों का रस कान में डालने से कान का दर्द, पीब और सूजन मिटाती है। रस में बराबर का मिलाकर थोड़ा गर्म कर कान में डालने से कान का बहरापन और फुन्सी मिट जाती है। बाग के जैतून के पत्र आंखों के

रोग दूर करते हैं। इसको सिरके में उबालकर कुल्ले करने से दांतों का दर्द और मुंह के छाले मिट जाते हैं।

इसके कच्चे फल को पीसकर लेप करना चेचक, फोड़े-फुन्सी, विकृत व्रण और अग्निदग्ध में लाभ करता है। इसको जलाकर राख बना उसमें शहद मिलाकर गंज में लगाने से लाभ होता है। पानी में उबाल कर उसके गरारे करने से दांत और मसूढ़े मजबूत होते और उनके तथा मुंह के छाले मिटते हैं। इसका पक्व फल आंखों को हानि पहुँचाता है। हलका दस्तावर होता है।

जैतुन के तैल (Olive oil) की मालिश ठंड, सूजन और दर्द को दूर करती है। पीबदार फोड़ों में लगाते हैं। मुख पर लगाने से स्निग्धता बढ़ाता और आंखों में लगाने से खुजली, जाला, पानी बहना और नजला मिटाता है। यह वात शमन करता और अर्धांग में लाभ करता तथा बल पहुँचाता है।

इसका गोंद जुकाम, नजला, सर्दी और खांसी में लाभ करता है। यह कफ निकालता और आवाज साफ करता है। मूत्रल है। मरहम में मिलाकर दाद, जलम व आद्रं पामा में लगाते हैं।

२०८. जुही

आयुर्वेदीय नाम—यूथिका, गणिका

लैटिन—*Jasminum Auriculatum*.

विवरण—इसकी लता चमेली के सदृश्य होती है। इसके एक डंठल में पांच पत्तियां लगती हैं। पुष्प श्वेत या पीत-वर्ण होते हैं। मोहक गन्ध होती है, यह विशेषतः बंगाल एवं मद्रास में होता है।

प्रयोज्य अंग—पुष्प, पत्र

मात्रा—पुष्प स्वरस १-२ तोला, पत्र क्वाथ ४-८ तोला

आयुर्वेदिक भूत—तिक्त कषाय मधुर रस लघु गुण शीतवीर्य, कटु विपाक एवम् हृद्य, प्रभाव होता है। यह पित्तशामक एवम् कफघात वर्धक है।

यह व्रण, रक्त विकार, मुखरोग, दन्तरोग, नेत्र रोग, शिरोरोग एवम् विष का नाश करती है।

२०९. बेला

आयुर्वेदीय पर्याय—मल्लिका, शीतभारु

अंग्रेजी—Arabian Jasmine

लैटिन—Jasminum Sambac

विवरण—इसका क्षुप २-४ फुट ऊँचा झाड़दार होता है। पत्र अभिमुख क्रम से निकलते हैं। सफेद रंग के फूल निकलते हैं जो सुगन्धित होते हैं। फल $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा होता है जिसमें काले रंग के १-२ बीज निकलते हैं। इसी की एक जाति में मोती के समान फूल निकलते हैं। उसे मोतिया कहा जाता है। यह भारत, बर्मा, लंका, में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फूल, मूल, पत्र**मात्रा**—क्वाथ ५-१० तोला

आयुर्वेदिक मत तिक्त कटु रस, लघु गुण, उष्ण वीर्य एवम् कटु विपाक है। वात पित्त नाशक तथा वृष्य है।

यह रक्तज रोगों, नेत्र रोगों कुष्ठ, अरुचि एवम् विष का नाश करता है।

आधुनिक मत—पुष्पों में एक उड़नशील तैल होता है।

२१०. हारसिंगार

आयुर्वेदीय पर्याय—पारिजात, मन्दार, रागपुष्पी

यूनानी—गुलजाफरी

अंग्रेजी—Night Jasmine

लैटिन—Nyctanthes Arhor tristis.

विवरण—इसका छोटा पेड़ १०-२० फुट ऊँचा होता है। पत्र ४-५ इञ्च लम्बे और २-२½ इञ्च चौड़े होते हैं। यह खुरदरे और रूएदार होते हैं। पत्र का ऊपरी स्तर और निचला स्तर सफेद सा होता है। फूल का डंठल पीले रंग का होता है। इसमें फूल सफेद और खुशबूदार होते हैं, यह रात में खिलते हैं और बर्मा में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, छाल और फूल**मात्रा**—रस १-२ तोला, चूर्ण १-५ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह कफवात नाशक एवम् पित्तसंशोधक है। दीपन, अनुलोमन और कृमि-नाशक है। रक्तशोधक, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वर नाशक एवम् विषनाशक है। कास, स्वास, मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग करते हैं। अग्निमान्द्य, विवन्ध, अर्श में लाभ करता है। इसके बीजों का लेप गंजेपन में लाभ करता है।

आधुनिक मत—पत्रों में 'निकटेनथीन' नामक क्षार तत्व होता है।

रासनादि वर्ग

२५३

केस और महस्कर ने इसके पत्रों को ३४ मलेरिया के रोगियों पर प्रयोग किया, उनमें से २६ बिलकुल ठीक हो गए ।

ONAGRACEAE FAMILY

शृंगाटकादि वर्ग

पत्र—अभिमुख या एकान्तर, सादे

पुष्प—पत्र कोण या शाखाग्र से उदभूत

पुष्प बाह्यकोष—रंगीन, नालिकाकार

२११. सिघाड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—शृंगाटक, जलफल, त्रिकोणफ

अंग्रेजी Water Caltrop

लैटिन—*Trapa Bispinosa*

विवरण—यह पानी में पैदा होने वाला बेल है । इसका पत्ता गोल, लाल धारियों वाला, कटे किनारे का २ से ३ इंच लम्बा और २ इंच चौड़ा होता है । यह लाल रंग के ४ से ६ इंच लम्बे डंठल में लगा होता है । फल तिकोना होता है । दो कोनों पर दो बड़े कांटे होते हैं । फल का छिलका हरा होता है और गिरी सफेद रंग की होती है । यह सारे भारत में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—फल की गिरी

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत्त—मधुर कषाय रस, गुरु रुक्ष गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक है । यह त्रिदोष नाशक, रक्त पित्त एवं दाह शामक है । यह वृष्य-मूत्रल एवं बलकारक है । इसे तृष्णा, अतिसार और संग्रहणी में प्रयोग करते हैं । शुक्र दुर्बलता में एवं गर्भ को बल देने के लिए गर्भावस्था में देना अच्छा होता है । यह लेप करने के काम में लिया जाता है और दाह को मिटाता है ।

आधुनिक मत्त—इसके फल में स्टार्च और मैंगनीज होता है । कम्बो-डिया के लोग इसके फल को पीष्टिक और ज्वर नाशक मानते हैं ।

ORCHIDACEAE FAMILY

रासनादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप

२५४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

पत्र—सादे अखण्ड, पुष्पबाह्यकोश के दल ६ (३-३ के दो चक्रों में)

पुं केशर—१ बीज कोष—अघःस्थ त्रिकोष्ठी

मूल—कन्दमय

२१२. सालमिश्री

आयुर्वेदीय पर्याय—मुञ्जातक

यूनानी—सालवमिश्री

अंग्रेजी—Salep

लैटिन—*Eulciphia Compestris*

विवरण—इसका क्षुप = से १२ इञ्च ऊँचा होता है। इसमें लम्बे पत्र लगते हैं जिसका अगला भाग नुकिला होता है। फूल का डंठल जड़ के पास से निकलता है और लगभग १ से २ फुट लम्बा होता है। यह सख्त और सीधा होता है। इस पर कई बड़े २ फूल लगते हैं जो नीले या बैंगनी रंग के होते हैं, जो फूल बसन्त में लगते हैं। इसकी जड़ सींग जैसी होती है। यह अच्छे स्वाद की और मीठी होती है। कन्द के आकार के अनुसार इसे दो प्रकार माना जा सकता है। एक वह जो हाथ के पंजे जैसी हो, उसे 'सालम पंजा' कहते हैं। जो लहसन की शकल की हो वह 'लहसुनियां सालम' कहलाता है। यह फारस अफगानिस्तान, बलुचिस्तान, मिश्र, नेपाल, काश्मीर और नीलगिरी में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—१ से ३ माशा

गुण कर्म—जोड़ों को ताकत देता, कामशक्ति को बढ़ाता, वीर्य बढ़ाता और उसे गाढ़ा करता है। यह वृंहण करता है। इसका चूर्ण दूध के साथ दिया जाता है या माजून बनाकर दिया जाता है। यह दिमाग और नाड़ियों को ताकत देता है।

आयुर्वेदिक मत—चरक में सूत्र स्थान अध्याय २७ में मुञ्जातक के गुण लिखे हैं। वहां इसे बलकारक, शीतल, गुरु, स्निग्ध, तर्पण करने वाला और वृंहण करने वाला कहा है। यह वातपित्त नाशक, मधुर, वृष्य होता है।

आधुनिक मत—इसमें ४८% एक तरह का गोंद होता है। इसमें भस्म ३. ६% होती है।

नारिकेलादि वर्ग

२५५

P

PALMAE FAMILY

नारिकेलादि वर्ग

स्वरूप—वृक्ष मध्यमाकार या बड़े, अकेले या झुण्डों में, काण्ड सीधे, शाखाएँ प्रायः नहीं

पत्र—एकान्तर काण्ड के अग्रभाग में संबद्ध

पुष्प—छोटा, पुंवेशर-६ बो कतारों में बीजकोश १ से ३ कोष्ठयुक्त

फल—कठिन कवचयुक्त

२१३. खजूर

आयुर्वेदीय पर्याय—खजूर

यूनानी - खुर्मा

अंग्रेजी—Date

लैटिन—Phoenix Sylvestris

विवरण—इसका पेड़ ३० से ४० फुट ऊँचा होता है जिसका तना सीधा मैले रंग का और लगभग ३ फुट मोटा होता है। पत्ते का डंठल तने से ही लगा रहता है। इसका पत्ता ६ से ७ फुट लम्बा होता है जो पक्षाकार होता है। इसकी पत्तियाँ ६-१२ इञ्च लम्बी और १ इंच चौड़ी होती हैं। इनका अगला किनारा नोकीला होता है। पत्र की जड़ में ४ इञ्च लम्बा काँटा होता है। फूल एक पेड़ में एक लिंग के लगते हैं। स्त्री जाति के फूल वाले पेड़ में फल लगते हैं और पुरुष जाति में नहीं। फल १ से १॥ इञ्च लम्बा, गोल और पीले रंग का होता है। पक जाने पर रक्ताभ हो जाता है। फल के अंदर एक सख्त बीज निकलता है। पेड़ में से एक तरह का रस निकलता है।

इसी जाति का पिण्ड खजूर होता है जिसका फल बड़ा और गूदेदार होता है। इसका लैटिन नाम Phoenix Dactyffera है। इसका फल सूखने पर 'छुहारा' कहलाता है।

खजूर सारे भारत में पैदा होता है, पिण्ड खजूर अफ्रीका, मिश्र, सीरिया और अरब में होता है, आजकल पंजाब और सिंध में भी खेती होती है।

प्रयोज्य अंग—फल और रस मात्रा—५-७ दाने, रस ५-१० तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, स्निग्ध गुरु गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक है। यह वातपित्तशामक है, यह नाड़ियों को ताकत देता, भ्रम, मूर्च्छा, कटिशूल में लाभ करता है। प्यास, बमन, अतिसार में लाभ करता है। डर, क्षतकास, श्वास, हिचकी में फायदा करता, हृद्य, वृष्य, एवं मूत्रल है। ज्वरनाशक है, दाहनाशक है।

आधुनिक मत—पिण्ड खजूर में लोहा, टेनिन और चूना होता है। कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह कफ निकालने वाला, मुदुरेचक, कामोद्दीपक होता है, यह श्वास में लाभ करता है।

२१४. सुपारी

आयुर्वेदीय पर्याय—पूग, क्रमुक, गुवाक

यूनानी—फोफल

अंग्रेजी—Betel Nut

लैटिन—Areca Catechu

विवरण—इसका पेड़ ३० से ४० फुट ऊँचा होता है जिसमें शाखाएँ नहीं होती। इसके पत्र ४-६ फुट लम्बे होते हैं। जिसमें पत्तियाँ १-२ फुट लम्बी और रूँददार होती हैं। पीले रंग के सफेद से फूल आते हैं जो गुच्छों में लगते हैं जो १-२ इञ्च लम्बे, गोल, चिकने होते हैं। कच्चे फल हरे और पकने पर पीले या लाल रंग के हो जाते हैं। इनका ऊपरी खोज सूत्रों से बना होता है जिस हटाने पर सुपारी निकलती है। यह भारत के उष्ण प्रांतों जैसे मैसूर, आसाम, बंगाल, मालावार में होता है। सलाया में भी यह पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय मधुर रस, गुरु रूक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक है। यह कफपित्तशामक है, रुचिकारक, अग्निदीपक, मुख की विरसतानाशक एवं मोहजनक होती है। कच्ची सुपारी भारी, अभिष्यन्दी, जठराग्नि का और नेत्रों की दृष्टि का नाश करती है, चिकनी सुपारी त्रिदोषघ्न है।

आधुनिक मत—सुपारी में टेनिन, गैलिक एसिड, चर्बी होती है। 'एरिकोलिन' नामक तत्व होता है जो हृदय से लगी प्राणदा नाड़ी के सूत्रों को उत्तेजित कर हृदय को अवसादित करता है और रक्तभार को कम करता है, यह एक तेज कीड़े मारने की दवा है।

नारिकेलादि वर्ग

२५७

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह लालासावर्धक, पसीना कम करने वाली, मसूढ़ों को बल देने वाली और मुंह का स्वाद ठीक करने वाली होती है, इसे आमातिसार एवं रक्तातिसार और पेट के कीड़े मारने में देते हैं।

२१५. नारियल

आयुर्वेदीय पर्याय—नारिकेल, दूढ़फल, सदाफल

यूनानी—नारजील

अंग्रेजी—Coconut Palm.

लैटिन—Cocas Nucifera

विवरण—इसका पेड़ लगभग ४०-६० फुट ऊँचा होता है। इसका तना सीधा खड़ा होता है जिसका घेरा १ से २ फुट होता है और बाहरी तरफ गोल निशान हाते हैं। इसमें शाखाएँ नहीं होती, तने से ही एक पत्ते का डंठल निकलता है जो १२-१६ फुट लम्बा होता है उस पर २ से ३ फुट लम्बी, हरे रंग की पत्तियाँ लगी रहती हैं जो अगले किनारों पर नुकीली होती हैं। इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसका फल गोल होता है जो ६-१० इंच लम्बा होता है। इसका ऊपरी खोल सख्त होता है और तन्मुय होता है। आरम्भ में सिर्फ पानी रहता है, कुछ दिनों बाद पानी कम हो जाता है और दूध जैसी मीठी गिरी बन जाती है। पक जाने पर यह गिरी सख्त हो जाती है और पानी खत्म हो जाता है। यह समुद्र के किनारे, बंगाल, उड़ीसा, लंका, वर्मा में अधिक पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, फूल

मात्रा—२ से ३ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरुस्निग्ध गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक है। यह बालों को बढ़ाता है, वातपित्तशामक है, यह देर में हजम होता, मूत्राशय का शोधन करता, संग्राहक, पुष्टिकारक, बलदायक होता है। रक्तविकार एवम् दाह का नाश करता है। कच्चा फल विशेषकर पित्तज्वर व पित्तविकार नाशक है। पुराना फल भारी, पित्त कारक, और विष्टम्भ कारक होता है। नारियल का पानी ठंडा, हृदय को प्रिय लगने वाला, अग्नि दीपक, वीर्यवर्धक हलका, तृष्णा और पित्त को नष्ट करने वाला और मूत्राशय को शुद्ध करने वाला होता है।

आधुनिक मत—नारियल के तेल में लॉरिक, मिरिस्टिक, पामिटिक स्टिम-

रिक एसिडों के गिलसरायड होते हैं। इनके अलावा 'कैप्रिलिक एसिड, भी होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसका दूध ठण्डक करने वाला, पुष्टिकारक, रेचक, मूत्रल व कृमिनाशक है। नारियल का पानी ठंडा, चिकना और ज्यादा लेने पर दस्तावर हो जाता है।

इसका तेल कार्डलिवर आयल की जगह प्रयोग किया जाता है, यह कम-जोरी दूर करता, फैंफड़ों के जल्मों को भरता है, किन्तु देर में हजम होता है, बुखार व खांसी में इसकी मालिश की जाती है। बिना समय के बाल पकने को रोकता है। यह बालों की रक्षा करता, उन्हें बढ़ाता और त्वचा के रोगों का नाश करता है। नारियल की जड़ मूत्रकारक होती है। नारियल की गिरी वृष्य है। इससे पेट के स्फीत कृमि फीते जैसे लम्बे कीड़े मर जाते हैं।

२१३. खूनखराबा

आयुर्वेदीय पर्याय—रक्त निर्यास

यूनानी—दम्मुल अख्वैन

अंग्रेजी—Dragon's blood

लैटिन—Calamus Draco

विवरण—यह एक पेड़ का गोंद है जो लाल रंग का होता है। इसमें कुछ नीलेपन की झलक आती है, किन्तु बारीक पीस लेने पर केवल लाल रह जाता है। इसके पेड़ अरब, अफ्रीका में पैदा होते हैं।

प्रयोज्य अंग—गोंद

मात्रा—१ से १॥ माशा

गुण कर्म—यह आंतों में तीव्र संकोच करती है, यह पेचिश को, दस्तों को, खून के बहाव को रोकता है, औरतों को महावारी में ज्यादा खून आए, बवासीर में खून आए, छाती से बलगम के साथ खून आए या कहीं भी भी खून बह रहा है, उसे यह रोक देता है, इसे बारीक पीसकर जल्मों पर छिड़कते हैं। यह ताजा जल्मों को सुखा देता है और उनसे खून बहता हो तो वह बन्द हो जाता है। यह वृक्कों को हानि पहुंचाता है, इसके साथ कतीरा प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक मत—इसमें 'वेज्जोइक एसिड' और 'साइनेमिक एसिड' होता है कर्नल चौपड़ा ने इसे तीव्र संकोचक और दस्त एवं पेचिश में उपयोगी बताया है।

२१७ नारियल दरयाई

अंग्रेजी — Sea Coconut

लैटिन—*Lodoicea Seychellarum*

विवरण—इसका पेड़ भी नारियल की तरह का ही होता है। इसका फल भी आकार में नारियल जैसा ही होता है। किन्तु इसका फल उससे सख्त, भारी और मोटा होता है। २० से २५ सेर तक के फल होते हैं। बाजार में इसकी गिरी के कटे हुए टुकड़े मिलते हैं जो बेडील, भारी और सफेद होते हैं। यह अफ्रीका, अमेरिका के समुद्रतट पर होता है, लंका और बम्बई में भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—गिरी**मात्रा**—४ रत्ती से १ माशा

गुण-कर्म—यह कफ और वायु के लिए लाभ करता, ठन्ड के बुखार को हटाता और शरीर की उष्णता को स्थिर रखता है। यह हैजे में और विष के असर में लाभ करता है।

हैजे में इसे अकेले या दूसरी दवाइयों के साथ गुलाब जल में घिस कर पिलाते हैं, जितना भी विष होता है सभी उलटी से निकल जाता है और प्यास भी मिट जाती है। अफीम और बच्छनाग के विष में भी पिलाते हैं। साँप, बिच्छु, भिड़ के काटे हुए स्थान पर इसको लगाने से सूजन दूर हो जाती है और विष नष्ट हो जाता है। बुखार आने से पहले ठन्ड आवे तो इसे पिलाने से लाभ होता है, यह दिल को ताकत देता है।

आधुनिक मत—कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि इसका फल ताकत देता, शरीर की रक्षा करता और हैजे में काम आता है। कुचले की जड़ के साथ बच्चों के पेट दर्द में देते हैं। इसका पानी या कच्ची गिरी पित्त को मिटाती और अम्ल पित्त को कम करती है।

PANDANACEAE FAMILY

केतक्यादि वर्ग

स्वरूप—काण्ड अनेक, अनियमित मूलों से युक्त**पत्र**—पतले वृन्तरहित, किनारे कटंकित**पुष्प**—छोटे-गुच्छों में, पुं केशर अनेक बीजकोश, एक कोष्ठीय

२१८. केवड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय — केतक, सूचीपुष्प, जम्बुक, ककच्छद यूनानी—काजी
अंग्रेजी—Screw Pine लैटिन—Pandanus Tectorius

विवरण—इसके पेड़ बहुत बड़े नहीं होते। इसके तने से डालियाँ निकलती हैं और इधर-उधर फैलकर झाड़ी का आकार बना लेती हैं। इसका तना बेड़ा होता है और उसमें गूदा नहीं होता। इसके तने से जटाएँ निकलती हैं, जो जमीन में आकर घुस जाती हैं। इसके पत्ते ४-१२ फीट लम्बे और २ से ३ फुट चौड़े होते हैं। इनका अग्रभाग नुकीला और किनारे कांटेदार होते हैं। तने के मध्य भाग से फूल निकलते हैं। पुरुष जाति के वृक्ष के फूल सफ़ेद और कम सुगन्धित होते हैं। स्त्री जाति के वृक्ष का फूल पीले रंग का, छोटा और अधिक सुगन्धित होता है। इसका फल नारंगी जैसा किन्तु सख्त होता है। यह सारे भारत में, ईरान एवं अरब में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, जड़ **मात्रा**—अर्क ४-६ तो०, शर्वत २-४ तोला

आयुर्वेदिक मूल—केवड़ा तिक्त मधुर, कटु रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफ पित्त शामक, नेत्रों को हितकारक, व्रणकारक, केशों की दुर्गन्ध नाशक, रसायन, बलकारक एवं देह को दृढ़ करने वाला है।

आधुनिक मूल—इसके फूलों में उड़नशील तेल होता है। डा० आर. एन. क्षोरी ने लिखा है कि केवड़े का फल गर्म होता है और पसीना लाने वाला तथा आक्षेप को मिटाने वाला है, यह कमजोरी, बेहोशी और चक्कर को मिटाने वाला है। सिर की बीमारियों में लाभ करता है। कान के दर्द में और कान के बहने में इसके तेल की दूब डालते हैं। केवड़े की जड़ को दूध के साथ पीसकर पीने से गर्म गिरने का भय नहीं रहता।

तैल व्रण रोपक है, इसके अभ्यंग से कमर दर्द और जोड़ों का दर्द दूर होता है।

PAPAVACEAE FAMILY

अहिफेनादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप,
पत्र—एकान्तर सादे और दन्तुर

अहिफेनादि वर्ग

२६१

पुष्प—पत्रकोणोद्भूत, पुष्प बाह्यकोश के दल २-३ आभ्यन्तर कोश के दल ४-६ या १-१२ दो चक्रों में

पुं केशर—अनेक, अनियत, स्त्रीकेशर—एक
बीजकोष अधःस्थ,

फल—लम्बगोल

बीज—सूक्ष्म और अधिक

विशेष—सफेद या पीला दूध निकलता है।

२१६. अफीम

आयुर्वेदीय पर्याय—अहिफेन, आफूक, तिलभेद, खसतिल, यूनानी—अफयून
अंग्रेजी—Opium लैटिन Papaver Somniferum

विवरण—इसका पौधा ३, ४ फुट ऊँचा होता है। जिसे 'पोस्ता' कहते हैं। इसका तना हरे रंग का मूलायम रूएँदार और चिकना होता है इसके पत्ते लंबे चौड़े और बिना डंठल के होते हैं। इसमें जाति भेद से तीन रंग के फूल लगते हैं। (१) खसखस सफेद—जिसमें पीलापन लिए हुए सफेद फल लगते हैं। (२) खसखस मंसूर—इसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। (३) खसखस स्याह इसमें अनार जैसे छोटे फल लगते हैं इसे डोडा कहते हैं। फल के छिलके को पोस्त कहते हैं। बीज सफेद या काले रंग के होते हैं इनको खसखस कहते हैं, यह फारस, चीन, नेपाल और भारत के बिहार, बंगाल, यू. पी. में होता है। कच्चे फल के चारों ओर संध्या समय गहरे क्षत लगाकर छेड़ देते हैं।

उससे जो दूध जसा रस निकलता है, वह जम जाता है और उसे सुरत कर इकट्ठा कर लेते हैं, इसे अफीम कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—अफीम

मात्रा— $\frac{1}{4}$ से १ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—तिक्त कषाय रस, सूक्ष्म रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक एवं मादक प्रभाव है। आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता राजनिघण्टु एवं भावप्रकाश निघंटु में इसका वर्णन मिलता है।

भाव प्रकाश में लिखा है कि यह शोधक, आही, कफनाशक, वात पित्त-कारक है। जो पोस्त की डोडियों के गुण हैं वही गुण इसके हैं।

पोश्त की डोड़ी, ग्राही, वातकारक, कफ एव कास नाशक, धातुओं का शोषण करने वाली, मदकारी, वाक्शक्ति वर्धक, मोह जनक तथा रुचिकारक है। लगातार सेवन से नपुंसकता पैदा करती है।

राजनिघंटुकार ने खसखस को मधुरपाक कहा है। यह कान्ति, वीर्य और बल करने वाला बताया है।

आधुनिक मत—अफीम में बहुत तत्व होते हैं—जिनमें सबसे अधिक मात्रा 'मार्फीन' होता है जो दर्दों को मिटाता है, फिर उससे कम 'नाकोटीन' होता है जो मलेरिया को दूर करने वाला होता है। इसके अतिरिक्त 'कोडीन' आदि क्षार तत्व होते हैं।

अफीम औषधोपयोगी मात्रा में सेवन करने पर पहले निःश्वासोच्छवास, मस्तिष्क और हृदय की उत्तेजना को पैदा करती है। पश्चात् सारे शरीर में अधसाद पैदा करती है। यह साधारणतः वेदनाहर, निद्राजनक, आक्षेप नाशक, मादक व मस्तिष्क की स्फूर्ति की नाशक है। अफीम की क्रिया अधिकतर मस्तिष्क व सुषुम्ना प्रान्त की नाड़ियों पर होती है। अतएव नाड़ियों के द्वारा अपने प्रभाव को शरीर पर फैलाती है। इससे त्वगाश्रित नाड़ियों में शोथ होता है। अतः पहले कर्ण पाली की (Externalear) उष्णता तथा कण्डू पैदा करती है। पुनः परिणाम स्वरूप गात्र व अंगुलि शीतल हो जाती है। अफीम के प्रभाव से जननेन्द्रिय में उत्तेजना हुआ करती है। औषधोपयोगी मात्रा में यदि अफीम कुछ दिनों तक सेवन की जाए तो वह पसीना बढ़ाती है। और पित्त श्लेष्मा व रसादि का स्राव कम कर देती है। अधिकतर यह मुंह व श्वास प्रणाली को शुष्क तथा अमाशायिक रस का स्राव कम कर देती है। अतएव भूख इसके सेवन से जाती रहती है। पित्त स्राव की अल्पता पैदा करती है, अतः कोष्ठ बद्धता पैदा होती है। हृदय की क्रिया वेग से होने के कारण नाड़ी वेगवती हो जाती है। मस्तिष्क के अन्यथा भाव होने से नई २ चिन्ताओं का प्रादुर्भाव हुआ करता है। हलका नशा होने के कारण तन्द्रा तथा जितनी ही निन्द्रा हो वह स्वप्न पूर्ण और जग जाने पर सिर भारी मालूम पड़ता है। भोजन जीर्ण नहीं हुआ करता तथा कोष्ठ परिष्कार

अहिफेनादि वर्ग

२६३

नहीं हो पाता और शरीर में स्फूर्ति नहीं मालूम होती। हर तरह की तकलीफ को अफीम दूर कर सकती है, किन्तु मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ानी पड़ती है। पूर्ण-मात्रा में अफीम सेवन करने से मस्तिष्क में उत्तेजना मूलक चिन्ह दिखलाई पड़ने लगते हैं। किन्तु यह उत्तेजना स्थाई नहीं होती। इसके प्रभाव के प्रकाश में ये लक्षण पाये जाते हैं, मुख की शुष्कता, अन्न न पचना, वमन होने जैसी चेष्टाओं का होना, वमन होना तथा पसीना प्रचुर प्रमाण में निकलना। हृदय में क्लान्ति पैदा होती है तथा रक्त का बहाव मन्द हो जाता है। घातूष्मा के द्वारा पाक (Oxidation) कम होता है। साथ ही शरीरोष्मा की भी कमी पाई जाती है। चक्षु में पुतली का संकोच, नासिका कण्डू और मूत्र कृच्छ हो जाता है। मस्तिष्क में अवसाद होने के कारण, सिर पीड़ा, सिर का घूमना, मस्तिष्क की जड़ता मन्द निःश्वासोच्छ्वास की उत्पत्ति होती है।

अफीम अत्यधिक मात्रा में विषवत् कार्य करती है। इसमें गले से घड़-घड़ की आवाज के साथ श्वास-प्रश्वास का आना, सन्यास (Coma) का उपास्थित होना, नाड़ी क्षीणता, हिमांगता, पसीना, पुतलियों में संकोच व विस्तार इत्यादि चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। पश्चात् जिस समय मृत्यु निकटवर्ती हो जाती है उस समय मुख-मण्डल हस्त पाद इत्यादि से रक्त स्राव के अन्तिम प्रत्यावर्तन के फल स्वरूप मुख व हस्त-पादांगुली का नील वर्ण का होना, घोर संज्ञाहीनता श्वासोच्छ्वास की कमी होती है और अन्त में मृत्यु होती है।

मस्तिष्क प्रदाह से भिन्न जिन रोगों में प्रदाहशमनार्थ अथवा कोई उत्तेजना शक्ति के लिए अफीम प्रयोग की जाती है, अधिकतर आक्षेपहर रूप में ही प्रयोग होती है। अनिन्द्रा, गृध्रसी (Sciatica) निउरलजिया, कटिवात, अर्बुद, विविधशूल (Intestinal Renal and Hepatic Colic) व पथरी प्रभृति पीड़ाओं में तथा घनुष्टंकार व तीव्र मारात्मक कोष्ठ प्रदाह, अंत्रवृद्धि मूत्र व शुक्राशय सम्बन्धी पीड़ाओं में अफीम सेवन से तकलीफ कम व यन्त्रणा कम हो जाती है। निन्द्रा आ जाती है। अतिसार तथा रक्तातिसार, नाड़ी जन्य वमन (Nervous and Sympathetic Vomiting) अतिरिक्त ह्लेष्मागमन, बहुमूत्र प्रचुर लाला स्राव में स्राव इत्यादि की शक्ति को हास करने के लिये अफीम का सेवन अत्युपयोगी है।

२२०. सत्यानासी

आयुर्वेदीय पर्याय—स्वर्णक्षीरी, पीतदुग्धा, कटुपर्णी

अंग्रेजी—Mexican Poppy

लैटिन—Argemone Mexicana

विवरण—इसका पौधा १ से ३ हाथ ऊँचा होता है। इसके सभी अंग काँटेदार होते हैं। इनको तोड़ने से पीले रंग का दूध निकलता है। पत्र काँटेदार होते हैं जिनके किनारे कटे-फटे होते हैं और इन पर सफेद रंग की धारियाँ होती हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। इसमें गोल से फल लगते हैं जिसमें काले रंग के बीज होते हैं। इसकी जड़ को 'चोक' कहते हैं। इसकी एक जाति और होती है। जो इससे बड़ी होती है। उसे जंगली बैंगन कहते हैं। इसका पौधा बैंगन के पौधे से मिलता-जुलता है। सारे भारत में होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़, दूध, बीज, पञ्चांग

मात्रा—जड़ का चूर्ण १० से ३० रत्ती, बीज चूर्ण २ से ३ माशा, दूध ३ से ६ माशा, रस $\frac{1}{2}$ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, लघु-रूक्ष गुण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। यह रेचक, भेदक व उत्कलेशकारक है। कृमि-कण्डु, विष का नाश करती है। आनाह नाशक है। कुष्ठरोग, रक्तरोग एवम् कफपित्त नाशक है। यह मूत्रकृच्छ, अश्मरी, शोथ, दाह एवम् ज्वर का नाश करती है।

आधुनिक मत—इसके पत्रों और फलों में Berberine और Protopine होता है। डा० क्षीरी ने लिखा है कि बच्चों के कफज बुखार में इसे खिलाते हैं। यह शोथ नाशक है। पत्रों के रस के लगाने से हाथ-पैर नहीं फटते। जड़ का लेप फोड़े वा ग्रन्थियों को नष्ट कर देता है। इसके पत्रों के द्वारा पका हुआ तैल फोड़े-फुन्सी को नष्ट कर देता है।

PASSIFLORACEAE FAMILY एरण्डकर्टी वर्ग

स्वरूप—प्रायः वृक्ष**पत्र**—बड़े डंठल में लगे हुए कटे-फटे**पुष्प**—एकलिंगी

२२१. पपीता

आयुर्वेदीय पर्याय—एरण्ड कर्कटी

अंग्रेजी—Papaya

यूनानी—शुज्जतुलबतीख

लैटिन—Carica Papaya

विवरण—इसका वृक्ष २०-२५ फुट ऊँचा होता है। इसका तना सीधा रहता है। किसी तरह की शाखाएँ नहीं होती। पत्र ताड़ के पत्रों जैसा छत्राकार होते हैं। पत्र फैला हुआ और सात भागों में बंटा हुआ होता है। पत्र एक डठल में लगा रहता है जो ३ फुट लम्बा और खोखला होता है। फूल एकलिंग के होते हैं। फल लम्बे गोल होते हैं जो कच्चे रहने पर हरे और पक जाने पर पीले रंग के हो जाते हैं। कच्चे फल को काटने से गाढ़ा दूध निकलता है। इसमें छोटे २ घूसर रंग में बीज निकलते हैं। यह अमेरिका और ब्राजील में पैदा होता था, वहाँ से पुर्तगालियों ने इसे भारत में लगाया। अब सारे भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, पत्ते, दूध और बीज

मात्रा—बीज-चूर्ण ४-८ रत्ती, दूध १/२ से १ तोला

गुण-कर्म—यह पाचक, दीपक, अनुलोमक, पेशाब साफ करने वाला और पत्थरी को तोड़ कर निकालने वाला होता है। यह पेट के कीड़ों को मार डालता है और शरीर से बाहर निकालता है। कच्चे पपीते के दूध को दाद पर लगाते हैं। इस दूध में कपड़ा भिगोकर स्त्री की योनि में रक्खा जाए तो मासिक स्राव आने लगता है और गर्भ भी गिर सकता है। गर्भवती स्त्री को पपीता हानि करता है।

आधुनिक मत—इसमें एक पाचक तत्व होता है जिसे 'पापेन' कहते हैं। ताजा गूदे में वसा, राल, अलब्युमिनाइड, पेक्टिन, साइट्रिक एसिड, टारटरेरिक एसिड, मेलिक एसिड आदि तत्व होते हैं। इसके बीजों में 'Caricin' नामक खराब स्वाद और गन्ध वाला तैल होता है।



PEDALIACEAE FAMILY

तिलादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप

२६६

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

पत्र—अभिमुख अखण्ड उपपत्ररहित

पुष्प—पुष्पआभ्यन्तर कोश के दल ५, नीचे से जुड़कर नलिकाकार,
पुंकेशर ४ (दो छोटे, दो बड़े), बीजकोश २ खण्डों, का

बीज—अनेक

२२२ तिल

आयुर्वेदीय पर्याय—तिल

यूनानी—कुन्जद

अंग्रेजी—Sesamum

लैटिन—Sesamum Indicum

विवरण—तिल की खेती की जाती है। इसका पौधा १ से २ फुट तक ऊँचा होता है जिसके तने पर मुलायम रुएँ लगे होते हैं। पत्र ३ से ५ इंच लम्बे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के होते हैं। ऊपर की पत्तियाँ कुछ लम्बी होती हैं और नीचे की अण्डाकार होती हैं। कोमल रुएँदार, नीलापन लिए हुए सफेद होते हैं। इन पर लाल, पीले निशान होते हैं। बीज छोटे, चिकने और रंग में सफेद, लाल या काली जाति के अनुसार होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होते हैं।

प्रोज्यय अंग—बीज, तैल

मात्रा—बीज चूर्ण ३-६ माशा

आयुर्वेदिके मत—मधुर-कषाय-तिक्त रस, गुरु-स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य व मधुर विपाक है। केश्य प्रभाव है। त्रिदोषनाशक है। बलकारक, त्वचा को हितकारक, स्पर्श में शीतल, दुग्धवर्धक, व्रणरोग में हितकारक, दांतों को अच्छा करने वाला मूत्र की मात्रा घटाने वाला, ग्राही, अग्नि को बढ़ाने वाले और बुद्धिवर्धक है। वृष्य एवम् स्नेहन है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में ५०-६०% तैल होता है। तैल में दो सत्व होते हैं। 'सिसेमिन' और 'सिसेमॉल'।

बोस और कीर्तिकार के अनुसार इसके बीज ताकत देने वाले और मासिक घर्भ नियामक हैं। ऐसा ख्याल है कि ज्यादा लेने पर यह गर्भ गिरा देता है। इसमें लोहा, चूना और फास्फोरस भी होता है।



PIPERACEAE FAMILY

पिप्पल्यादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः लता, काण्ड मुड़ने वाला, आधार मिलने पर आरोही पत्र -अखण्ड, एकान्तर, हृदयाकृति

पुष्प—छोटे, काण्ड पर, एक स्थान पर जमे हुए पत्रकोण या पत्र के सामने से निकलते हैं

२२३. कबाबचीनी

आयुर्वेदीय नाम—गन्धमारिच

यूनानी—हब्बुल उरूस

अंग्रेजी—Cubeb.

लैटिन—Piper Cubeba

विवरण—इसकी बेल दूसरे पेड़ों पर चढ़ी होती है जिसमें ५-६ इंच लंबे अण्डाकार पत्र लगते हैं। इनका अग्रभाग नुकीला होता है और पिछले भाग पर बहुत-सी उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। इसके फूल छोटे और पीताभ श्वेत होते हैं जो सदियों में गुच्छों की शकल में लगे दिखाई देते हैं। इसके फल गोल काली मिर्च के जैसे होते हैं और इनमें तेज गन्ध आती है। इसे चबाया जाए तो यह चरपरा लगता है और मुँह में में ठण्डक अनुभव होती है। कंकोल जावा, सुमात्रा, मलाया में पैदा होती है। भारत के मैसूर प्रान्त में इसकी खेती की जाती है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफवात शामक, मुख की दुर्गन्धता नाशक एवम् दीपन, रोचन, पाचन अनुलोमन है। तृष्णानाशक एवम् वृष्य है। हृदय को बलदायक एवम् हृदयरोग नाशक है।

आधुनिक मत—इसमें क्रियाकारी तत्व ३%, उड़नशील तेल जो हरे नीले रंग का होता है, १०-१५% होता है। इसमें Cubebin और Cubabic acid १% होता है Calcium and Magnacium के Salts होते हैं।

डा० आर० एन क्षीरी का कहना है कि यह एक उत्तेजक और मूत्रल दवा है। यह मूत्र मार्ग की शोथ एवं तत्सम्बन्धी रोगों को मिटाती है। इसका नस्य लेने से या सिगरेट में रखकर पीने से यह गले और साँस की नलकियों की बीमारियों में लाभ करती है, इनसे कफ निकलता है।

२२४. काली मिर्च

आयुर्वेदीय पर्याय—मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण यूनानों—फिलफिल स्याह
अंग्रेजी—Black Pepper लैटिन—Piper Nigrum

विवरण—इसकी लता मोटी होती है जो नारियल, सुपारी आदि के वृक्षों पर चढ़ी रहती है। इसकी शाखाओं से ग्रन्थि स्थान से मूत्र से बाहर निकलते हैं जो वृक्षों पर चिपट जाते हैं। इसके पत्ते ५-७ इंच लम्बे और २-५ इंच चौड़े होते हैं, जो सुपारी पत्रों के जैसे होते हैं। इनके पृष्ठ पर ५ धारियाँ होती हैं। इसमें फूल एकनिगी होते हैं। फल गोल और गुच्छों में लगे होते हैं कच्चे फल हरे रंग के होते हैं, पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। सूख जाने पर यह फल काले रंग के हो जाते हैं।

इसकी एक जाति सफेद मिर्च भी है, बाजार में काली मिर्च के पके फलों को पानी में भिगोकर छिल्का उतार कर सफेद मिर्च के नाम से बेचा जाता है मिर्च मलाया, सिंगापुर, आसाम, मालावार और कोंकण प्रदेश में उत्पन्न होती हैं।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—३ से १० रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु, रस, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है। यह कफ वातशामक है, पित्तकारक है, यह दीपन, पाणन, शूलनाशक तथा कृमिनाशक है, यह कफनिःसारक है, अतः कास, श्वास में लाभ करती है, यह नेत्रों के लिए हितकारक है। कुष्ठ आदि चर्म-रोगों में इसका बाह्य प्रयोग एवं आन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—फल के छिलके में Piperine और Piperidine नामक तत्व होते हैं। अन्दर फल के गूदे में Chavicin नामक पदार्थ होता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह उत्तेजक दवा है। पेट के अफारे में, हैजा में, भूख बन्द होने पर, कब्ज में और दूसरी पाचन की खराबियों में लाभ करती है। इसको घी के साथ मिलाकर त्वचा के रोगों में लगाया जाता है। ऊपर लिखे गुणों के अतिरिक्त डिमक ने बताया है कि इसका तत्व Piperine विषम ज्वर में बहुत लाभ करती है। यह ३ ग्रैन की मात्रा में दिया जाता है,

पिप्पल्यादि वर्ग

२६६

डा० देसाई ने बताया है कि यह अर्श की उत्तम औषध है और नूत्र की मात्रा को बढ़ाती है ।

२२५. चव्य

आयुर्वेदीय पर्याय—चव्यम्, चविका, ऊष्णा

लैटिन—Pipe chaua

विवरण—यह लता जाति की वनस्पति होती है जो आकार में पिप्पली सदृश होती है । इसका काण्ड सख्त होता है और शाखाओं पर फूली हुई गांठें होती हैं । इसके पत्ते पान जैसे होते हैं जिनका ऊपर पृष्ठ चिकना होता है । पुष्पदण्ड अनेक शाखा-प्रशाखायुक्त होता है । इसका फल पिप्पली सदृश किन्तु उससे कुछ मोटा एवम् लम्बा होता है । कुछ वैद्य इसके फल को 'गज पीपल' कहते हैं । इसका आदिम स्थान मलाया है । सम्प्रति भारत में विशेषकर बंगाल एवम् बिहार में होती है ।

प्रयोज्य अंग—मूल, फल

मात्रा—चूर्ण ५-१० रत्ती

आयुर्वेदिक भूत—कटु रस लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य एवम् कटु विपाक होती है । कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न है ।

यह अर्श के लिए विशेष उपयोगी कही गई है । उदर विकार, अनाह, अजीर्ण, अग्निमान्द्य कास एवं श्वास में लाभ करती है ।

आधुनिक भूत—कर्नल चौपड़ा के मतानुसार इसका फल सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के अफारे को दूर करता है । जुकाम एवम् खांसी में लाभ करता है ।

२२६. पान

आयुर्वेदीय पर्याय—नागबल्लरी, ताम्बूल

यूनानी—तंबूल

अंग्रेजी—Betel

लैटिन—Piper Bettle

विवरण—इसकी फैलने वाली लता होती है जिसका तना सख्त और मजबूत होता है । इसके पत्र ३-८ इंच लम्बे, हृदय की आकृति के और अग्रभाग में नुकीले होते हैं । ३ से ६ इंच लम्बे डंठल में एक लिंग वाले फूल लगते हैं । इनमें छोटे लगभग $\frac{1}{4}$ इंच के फल लगते हैं । भिन्न-भिन्न प्रदेश में

२७०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

पैदा होने के कारण इसकी कई जातियां होती हैं। पान गर्म और तर प्रदेशों में पैदा होता है। यह बिहार, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण भारत और लंका में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—पत्ता

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त कषाय रस, विशद, तीक्ष्ण, सर एवं लघु गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह रुचि उत्पन्न करता, बल बढ़ता एवं रक्तपित्त को प्रकुपित करता है। कफ, मुख की दुर्गन्ध, मल, वात तथा श्रमनाशक है। यह क्षारीय होता है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल, जिसे 'पान का तैल' कहते हैं, इस में तारपीन और फेनाइल जैसे पदार्थ होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह उत्तेजक, पाचक, पाक हटाने वाला है। यह पेट के अफारे, मुंह की दुर्गन्ध, अपचन, पेट के दर्द में चबाया जाता है। इसके उड़नशील तेल में एक तो सुगन्धित होता है जिसे Betel oil कहते हैं और दूसरा शीघ्र उड़ जाने वाला तत्व जिसे चविकल बहुत अच्छा एन्टिसेप्टिक है। यह कार्बोनिक एसिड से ५ गुना अधिक और एजिनोल से दुगुना अधिक काम करता है। पान का रस भी एन्टिसेप्टिक होता है। यह कफ के रोग रोहिणी और गले के रोगों में लाभ करता है।

२२७ पीपल

आयुर्वेदीय पर्याय—पिप्पली कणा, कृष्णा, चपला यूनानी - दारफिलफिल

अंग्रेजी—Long pepper

लैटिन—Piper Longum

विवरण—पीपल की लता होती है। यह जमीन पर फैलती है या दूसरे वृक्षों के सहारे ऊपर चढ़ जाती है, पत्ते २-३ इंच लम्बे पान के पत्तों जैसे होते हैं। इन पर ५ सिराएँ होती हैं। इसमें फूल एकलिंगी होते हैं। पुरुष जाति के फूल १ से ३ इंच लंबे डठल में लगे रहते हैं जब कि स्त्री जाति फूल का डठल $\frac{1}{2}$ से १ इंच लंबा होता है। यह फूल बरसात में लगते हैं। सर्दियों में लंबे फूल लगते हैं जो पक जाने पर लाल रंग के होते हैं—यह फल सूख जाने पर काले रंग के होते हैं। इसका जड़ को 'पिप्पली मूल' या 'पीपला मूल'

कहा जाता है। यह बंगाल, बिहार, आसाम, ट्रावनकोर, नेपाल, भूटान, मलाया, सिंगापुर में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फल, मूल

मात्रा—चूर्ण ५ से १० रस्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, स्निग्ध एवम् लघु गुण, अनुष्ण वीर्य एवम् मधुर विपाक होती है। आर्द्र पिप्पली मधुर, गुरु एवं स्निग्ध तथा शीतल होती है। आर्द्र कफकारक व पित्त शामक होती है जब कि शुष्क वातकफ शामक और पित्तकारक होती है। यह अग्निवर्धक, वीर्य वर्धक तथा रेचक होती है। यह कास, श्वास, ज्वर, उदररोग, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहा, शूल और आमवात को ठीक करती है।

शहद के साथ पीपल खाई जाए तो यह मेदरोग और कफ नाशक होती है। वीर्य बढ़ाती है। बुद्धि तथा अग्नि को बढ़ाती तथा कास-श्वास ज्वर को शान्त करती है।

गुड़ के साथ पीपल का प्रयोग किया जाये तो खांसी, अजीर्ण, अरूचि, हृदय रोग, पाण्डु रोग, कृमिरोग तथा जीर्ण ज्वर का नाश होता है।

आधुनिक मत—इसमें रेजिन, उड़नशील तैल, स्टार्च, गोंद, एलकलायड होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह उत्तेजक, पाचक, मृदु रेचक और रसायन गुण वाली होती है। यह फेफड़ों के रोग और पुरानी खांसी में लाभ करती है। अजीर्ण में प्लीहोदर में और उदर के दूसरे अवयवों की शोथ में लाभ करती है। 'गांउट' और 'लम्बेगो' में लाभ करती है। इसको पाषाण-भेद के साथ पीसकर चुचक पर लगाने से दूध ज्यादा आता है।

पीपलामूल

आयुर्वेद में पीपलामूल का वर्णन अलग किया गया है। इसे कटुरस, लघु रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक माना है। कफवातशामक, पित्तकारक, दीपन, पाचन, मलभेदक होता है। उदररोग, आनाह, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षय नाशक है।

२७२

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

PLANTAGINCEAE FAMILY अश्वगोलादि वर्ग

पुष्प— पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५

पुं केशर—४

फल—बिदारी

बीज—बहुत पानी में डालने से लुआव करने वाले

२२८. ईसबगोल

अंग्रेजी—Spogel Seeds

लैटिन—Plantago Oxata

विवरण—यह एक वर्षायु क्षुप होता है जिसका तना सख्त होता है और और रोमावृत होता है। इसके पत्र लम्बे होते हैं, दन्तुर होते हैं जिनमें तीन सिरायें होती हैं। फूल अण्डाकार और सूक्ष्म रोग युक्त होते हैं। बीजकोश द्विकोष्ठी होता है और प्रत्येक में एक बीज निकलता है। यह बीज हलके गुलाबी रंग के होते हैं जो देखने में घोड़े के कान के सदृश दिखाई देते हैं। बीजों से छिलका (भूसी) अलग करके भी प्रयोग करते हैं। यह ईरान, सिन्ध एवं पंजाब में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, भूसी

मात्रा—१/२ से १ तोला

गुण-कर्म—यह वातपित्त पर शामक कर्म करती है। यह अन्न नलिका की रुक्षता को दूर करती और पिच्छिल के कारण मल को बाहर निकलने में सहायक होती है। आन्त्रगत व्रणों पर इसका आवरण बन जाता है। यह मूत्रल एवम् दाह नाशक है। बल्य एवम् वृंहण है।

प्रायः अतिसार, प्रवाहिका, मूत्रकृच्छ, तृष्णा, दाह, ज्वर आदि में प्रयोग करते हैं। शुष्क कास में भी लाभ होता है।

PLUMBAGINACEAE FAMILY चित्रकादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप

पत्र—आभिमुख या एकान्तर सादे

चित्रकादि वग

२७३

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश के दल-५ नीचे से जुड़कर नलिकाकार हुए छोटी २ ग्रन्थियों से युक्त, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल-५

पुं केशर—५

स्त्रीकेशर—१

फल—छोटे और कठिन

२२६. चित्रक

आयुर्वेदीय पर्याय—चित्रक, अनल, व्याल

यूनानी—शीतरज

अंग्रेजी Lead wort

लैटिन—Plumbago Zeylanica

विवरण—इसका पौधा ४-६ फुट ऊँचा होता है। जिसका तना गोल, पतला मुलायम और गांठदार होता है। पत्र एक तरफ लगे हुए लम्बे, गोल लगभग ३ इंच लम्बे और १॥ इंच चौड़े होते हैं। एक ४-१२ इंच लम्बा डंठल होता है जो कई शाखाओं में विभक्त होता है। इसमें सफेद रंग के बिना गन्ध वाले फूल गुच्छों में लगे रहते हैं। इनमें फली जैसा फल लगता है जिसमें बम्बा-सा बीज निकलता है। यह बंगाल, उत्तर-प्रदेश, लंका में पैदा होती है। पुराने शास्त्रों में फूल के रंग के अनुसार चार प्रकार की चित्रक बताई है—ऊपर सफेद रंग की चित्रक का वर्णन किया है। पीले रंग के फूल वाली, काले रंग के फूल वाली और लाल रंग के फूल वाली तीन प्रकार की अन्य होती हैं। लाल रंग वाली को Plum-bago Rosea कहते हैं। यह खासिया की पहाड़ियों में, सिक्किम में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़ की छाल

मात्रा—२ से ८ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु रस लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होती है। वातकफ शामक व पित्त वर्धक है। अल्प मात्रा में यह नाड़ी दुर्बलता और वातव्याधि पर अच्छा कार्य करती है और अधिक मात्रा में मादक कर्म करती है, यह दीपन, पाचन, पित्तसारक, संग्राही व कृमिनाशक है शोथ, कास, जुकाम में लाभ करती है। औरतों की रुकी हुई महावारी, प्रसूता के रोग और मक्कलशूल में लाभ करती है। पुराने ज्वर व विषम ज्वर में लाभ करती है, श्वित्र व कुष्ठ आदि दूसरे त्वचा के रोगों में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसमें Slumbagin and acric Principle होते हैं। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि चित्रक रसायन, पाचक व अग्निवर्धक है। जड़ शोथ, संग्रहणी, अजीर्ण, अग्निमन्दता में व्यवहार की जाती है। इसका लेप आमवात, कुष्ठ और वातव्यादि में लाभ करता है। कच्चा व्रण इसके लेप करने से पक जाता है। योनि मार्ग में इसके प्रवेश से गर्भस्राव हो जाता है।

POLYGONACEAE FAMILY

चुक्रादि वर्ग

स्वरूप—कांड गोल

पत्र—एकान्तर, सवृन्त

पुष्प—पुं केशर—५-६, एक या दो चक्रों में,

बीजकोष—२-३ खण्डों वाला, उर्ध्वस्थ

२३०. अञ्जुवार

Polygonum Aviculra

विवरण—इसका पौधा कम लंबा होता है जिसमें शाखाएँ फैली रहती हैं। इसके पत्र तरम होते हैं और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल लाल रंग के घन्बेदार होते हैं जो छोटे और तिकोने होते हैं। यह हिमालय पर्वत पर ६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है

प्रयोज्य अंग मूल

मात्रा—२ से ६ माशा

गुण कर्म—यह रक्तस्राव को रोकती है, विशेषकर फुफुस, छाती, अर्श और पुराने दस्तों में निकलने वाले रक्त को रोकती है। ज्वर हटाती है एवं मूत्रल है। पेट की जलन और मूत्राशय के विकार में लाभ करती है। हाथी पाँव और विमर्ष में लाभ करती है। यह उष्णप्रकृति वालों को हानि पहुंचाती, इससे बचने के लिए इसके साथ सौंठ मिलाकर देनी चाहिए। आयुर्वेद के ग्रंथों में इसका वर्णन नहीं मिलता है, यूनानी के पुराने 'हकीम डिसकोरिडस' और 'प्लाइनी' ने इसका वर्णन किया है।

आयुर्वेदिक मत—इसमें 'पोलीगानिक एसिड' 'टेनिक एसिड' 'गैलिक-एसिड' 'कैल्शियम ऑक्सलेट' और उड़नशील तैल पाया जाता है।

चुक्रादि वर्ग

२७५

कनॅल चौपड़ा के मत से यह संकोचक व. कृमिनाशक है। यह शोथ ठीक करती और संकोचक होती है। इसका क्वाथ प्रदर में लाभ करता है।

२३१ चूका

आयुर्वेदीय नाम—चुक्र, चुक्रिका, पत्राम्ला, शतवेधनी यूनानी—हुम्माज
अंग्रेजी—Country So-rel. लैटिन—Rumex Vesicarius

विवरण—इसका पौधा ६ से १२ इञ्च लंबा होता है। पत्र अण्डाकार १-३ इंच लंबे होते हैं। इसमें ३-५ घागियां होती हैं। छोटे, सफेद या लाल रंग के फल आते हैं। फल में छोटे २ बीज आते हैं। इन बीजों को यूनानी में 'तुल्म हुम्माज' कहते हैं। यह सारे भारत में विशेषकर पहाड़ी प्रदेशों या उनकी तराइयों में पैदा होना है।

प्रयोज्य अंग रस व बीज मात्रा—रस ३ से ५ तोला, बीज ३-६ माशा
आयुर्वेदिक मत—मधुर अम्लरस, लघु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य और अम्ल विपाक है। इसके बीज पिच्छिल और शीत होते हैं।

चूका वातनाशक, कफपित्तकारक, रुचिकारक, दीपन वातगुल्म नाशक होता है। इसका शाक बैंगन के साथ मिलाकर खाया जाए तो अधिक रुचिकारक होता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में 'Rumiciu' और 'Lapathin' नामक दो तत्व होते हैं जिनके गुण 'क्राइसोफेनिक एसिड' जैसे होते हैं।

२३२. रेवन्दचीनी

अंग्रेजी—Indian Rhubarb लैटिन—Rheum emodi

विवरण—इसका पौधा ५-६ फुट ऊँचा होता है जिसका रंग हरा, मटैला होता है। इसका तना मोटा होता है, सख्त होता, इसमें शाखाएँ और पत्र लगे होते हैं। यह पत्र एक सख्त डंठल में जो १२ से १८ इंच लम्बा होता है, में लगे रहते हैं। पत्र पीपल के पत्रों जैसे लेकिन उससे कुछ कम चौड़े होते हैं। इसमें मदार के जैसे फूल लगते हैं और १/२ इंच लंबे बैंगनी रंग के फल लगते हैं। इसकी जड़ मोटी, सख्त और भूरे पीले रंग की होती है। इसकी शाखाओं को गूथ कर बाजार में बेचा जाता है। यह "अम्ल बेत" कहलाती

२७६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

हैं। यह हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक ७-१२ हजार फुट की ऊँचाई पर मिलती हैं। सिक्कम, चीन, तातार, खोतान में भी होती हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल और अम्लबेत

मात्रा—१ से ३ माशा

गुण कर्म—यह जैसी चीजों के साथ मिलाया जाए वैसा ही काम करती है। क्योंकि यह रेचक भी है और विबन्ध भी करती है।

इसका बाह्य प्रयोग त्वचा के रोगों को मिटाता है, शोथ को मिटाता है। इसे सिरका में पीसकर भाई, दाद, त्वचा के दाग और घब्वों पर लगाया जाता है। इसका लेप शोथ को हटाता है।

मुख द्वारा प्रयोग करने से यह फेफड़ों से कफ निकालती है। खांसी, दमा, कफ के रोगों में लाभ करती है। कम मात्रा में देने से यह आमाशय को ताकत देती, वायु को निकालती और विबन्ध पैदा करती है। यह शरीर को बल देती एवम् यकृत को बल देती है। अधिक मात्रा में देने से लाल रंग के दस्त लाती और अन्त में कब्ज करती है। यह पेशाब ज्यादा लाती और मूत्र विषयक रोगों को दूर करती है। यह औरतों को मासिक स्राव लाती है। कमजोर लोगों को इससे दस्त दिलाना अच्छा नहीं होता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में 'क्राइसोफेनिक एसिड' 'एमोडिन' 'रैपो-ण्टिसिन' 'रिओ-टैनिक एसिड' टैनिक व गैलिक एसिड आदि तत्व होते हैं।

कनरल चौपड़ा ने लिखा है कि रेवन्दचीनी पश्चिमी चिकित्सा-शास्त्र में एक दस्तावर दवा के रूप में प्रयोग होती है। बच्चों के रोगों में यह एक उप-योगी और घरेलू दवा मानी जाती है।



POLYPODIACEAE FAMILY हंसराजादि वर्ग

यह अपुष्प वनस्पति का वर्ग है।

२३३. बिस्फेज

Polypodiumvulgare

विवरण—यह एक छोटी जाति की वनस्पति है जिसके पत्र कंगूरेदार

हंसराजादि वर्ग

२७७

होते हैं। इसमें अनेक मूल होते हैं। ताजी हालत में इसके मूल का रंग हरा और सूखने पर भूरा हो जाता है। इसमें कुछ पीताभा होती हैं। इसके मूल की प्रत्येक गांठ में बारीक २ सूत्र लगे रहते हैं। अच्छी जड़ वह होती है जो मोटी और ताजी और ताजी हो तथा ऊपर से रक्ताभ और पीलापन लिए हुए अन्दर से पिस्ते के मगज की जैसी हो। चबाने से उसका स्वाद कुछ कड़वा और मीठा हो और जिह्वा में संकोच पैदा करे। यह यूरुप, अमरीका और तुर्की में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—५ से १० रत्ती

गुणकर्म—दिल को ताकत देती और और प्रसन्न करती है। दिल और दिमाग की खराबी ठीक करती है। यह वायु कफ वात रक्त के विकारों और उदर विकारों को ठीक करती है। आमवात और कुष्ठ में लाभ करती है। अनीसून और मुलहठी के साथ उबाल कर पीने से लाभ करती है। इसका जोशादा कालिक पेट दर्द को मिटाता है। इसको अमलतास के साथ लेने पर बवासीर, पेट का पुराना दर्द और अपस्मार में लाभ होता है। इसे अधिक मात्रा में खाने से मनली पैदा होती है, छांती और वृक्कों को हानि पहुंचाता है। यह पेट में जलन पैदा करती है।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल होता है। इसमें व्युटिरिक, हेक्सो-इकल्युरिक और सक्सनिक एसिड होते हैं।

यह पित्त को पतला करता, दस्त साफ करता और पेट के कीड़े मारता है।

२३४. हंसराज

आयुर्वेदीय नाम—हंसपदी, कीटमारी, रक्तपादी यूनानी—परसियावशा

अंग्रेजी—Maiden Hair लैटिन—*Adiantum Lunulatum*

विवरण—इसका पौधा १ से २ फुट ऊंचा होता है जिसकी शाखाएँ लाल रंग की, पतली और मुलायम होती हैं। छोटे २ पक्षाकार पत्तों के किनारे कुछ गोलाकार और कटे हुए होते हैं। पत्तों से ही नए पौधे पैदा हो जाते हैं इसकी जड़ मुलायम और लाल रंग की होती है। यह पानी के स्थानों में और पर्वतों के शीत स्थानों में पैदा होता है इसमें पुष्प फल नहीं होते।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला, चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त कषाय रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य मधुर विपाक होता है।

यह रक्त विकार, विष विकार, व्रण विकार, विसर्पदाह, अतिसार, शोथ, मूत्रा विष, अग्नि रोहणी में लाभ करता है।

आधुनिक मत—आज के वैज्ञानिकों ने इसके विषय में लिखा है कि यह मृदुरेचक, मूल एवं मासिक स्राव नियामक है। कास, श्वास एवं पसली के बलों में लाभ करता है। इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर प्रयोग किया जाता है।

PORTULACEAE FAMILY

लोणिकादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप

पत्र—मांसल और अखण्ड

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश के दल—२ पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५

पुंकेसर—४ या अधिक, स्त्रीकेसर—१

२३५. चाय

अंग्रेजी—Tea Plant

लैटिन—Camellia Theifera

विवरण—चाय के पौधे ४ से ६ फुट ऊँचे होते हैं जिसके पत्र सदैव हरे रहते हैं। इन पत्तों को तोड़कर मशीनों के द्वारा इनको काटकर रस निकाल कर और शुष्क कर के बाजारों में बेचने योग्य बनाया जाता है। यह शीघ्र सूखने पर हरे रंग की और देर तक सूखने पर काले रंग की होती है। इसकी बहुत क्वालिटियाँ होती हैं। चाय आसाम, चीन, जापान, इंग्लैंड, अमेरिका में होती है।

गुण कर्म—यह श्रमहर, उष्ण, आनन्दप्रद एवं स्वेदकारक है। अधिक सेवन से हृदय, मस्तिष्क, वातनाडियों एवं पाक स्थली की क्रिया में विघात पैदा करती है और अरुचि, वमन, आघ्रमान, ग्रहणी हस्तपादकप, मुखविवरणता नाडी क्षीणता, मत्तता, स्वप्नदोष आदि विकारों को उत्पन्न करती है।

दाड़िमादि वगं

२७६

नाइट्रोजन व हाइड्रोजन युक्त खाद्य पदार्थ चाय के पान से पच जाते हैं। चाय में टैनिन नामक पदार्थ रहता है जो आहार द्रव्य में मिलकर अव्यवस्था पैदा करता है, अतः संग्रहणी व कोष्ठबद्धता पैदा होती है।

मूर्च्छा, अनिद्रा, हृत्स्पन्दन, हृदय के कोष्ठों की विकृति व मस्तिष्क रोग वालों के लिए चाय बहुत हानि करती है।

डा० डिमक का कहना है कि पहले यह विश्वास किया जाता था कि चाय में 'थाइन' नामक तत्व है जो शरीर के श्रम को मिटाती है किन्तु बाद में डा० एडवर्ड स्मिथ ने बताया कि यह श्वास की वृद्धि करती और शरीर का क्षय करती है। डा० एडवर्ड स्मिथ ने बताया है कि चाय मांस उत्पादक है एवं भोजन के पाचन में सहयोग देती है। बहुत भोजन के अभाव में भी चाय से शरीर का क्षय होता है। सिर दर्द, न्यूरलजिया, वात नाड़ीजन्य अन्य पीड़ाओं में चाय उत्तेजक औषधि के रूप में लाभ करती है।

PUNICACEAE FAMILY

दाड़िमादि वगं

स्वरूप — झाड़ी

पत्र — अभिमुख, सादे

पुष्प — शाखाग्रोद्भूत, अकेला या गुच्छों में, पुष्पवाह्यकोष-रंगीन नलिकाकार, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ५-७

फल — गोलाकार, बहुबीज युक्त

२३६. अनार

आयुर्वेदीय पर्याय — दाड़िम, दन्तबीज. लोहित पुष्पक यूनानी — रूम्मान

अंग्रेजी Pome Granate लैटिन — Punica Granatum.

विवरण — इसका वृक्ष १०-१५ फुट ऊँचा होता है जिसमें छोटे २ पत्र लगभग २-३ इंच लम्बे और १ इंच चौड़े होते हैं, दोनों किनारों पर नौकीले होते हैं। इसमें लाल रंग के फूल आते हैं और गोलाकार फल लगते हैं। फल में बीज होते हैं जिनमें रस भरा रहता है। यह अफ्रीका, काबुल, ईरान में अधिक होता है, अब भ रत में भी पैदा होता है।

२८०

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

प्रदोष्य अंग—फल, मूलत्वक्, पुष्प पत्र

मात्रा—स्वरस २ से ५ तोला, क्वाथ ४ से ८ तोला,

आयुर्वेदिक मत—मधुर कषाय, अम्लरस, लघु स्निग्ध गुण, अनुष्ण वीर्य एवं मधुर विपाक है। मधुर फल त्रिदोष नाशक है। तूष्णा, दाह, ज्वर का नाश करता है। हृदय रोग, कण्ठ रोग एवम् मुख रोग नाशक है। यह तर्पण करता एवम् शुक्रल होता है। यह ग्राही है तथा बल, बुद्धिवर्धक है।

मधुराम्ल फल दीपन, रुचिकारक एवं कुछ पित्तकारक होता है। अम्ल दाडिम पित्तकारक, आमवात नाशक एवं कफ नाशक होता है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह ग्रहणी, एवं ज्वर में लाभ करता है। अनार का छिलका या फूल लेकर उसमें जावित्री, दालचीनी, घनिया, मिर्च मिलाकर बच्चों के पुराने अतिसार में देते हैं। अनार के फूल को इनके रस के साथ पीसकर देने से नासिका से रक्तस्राव रुक जाता है। मूल त्वक् क्वाथ स्फीताकार उदर कृमि का नाश करने के लिए प्रयोग करते हैं। डा० डिमक ने भी इसे उदर कृमि की अव्यर्थ औषध बताया है।

R

RANUNCULACEAE FAMILY वत्सनाभादि वर्ग

स्वरूप—प्रायः क्षुप, कहीं २ लता

पत्र—पर्ण विन्यास मूलोद्भव, एकान्तर, क्वचित् अभिमुख

पुष्प—पूर्ण दल ५ एवं रंगीन, पुं केशर अनियत स्त्रीकेशर अनेक
मूल कन्द क्वचित् सूत्रवत्

२३७. अतीस

आयुर्वेदीय पर्याय—अतिविषा, शृंगी, घुनवल्लभा

यूनानी—बज्जिरकी

लैटिन—*Aconitum Heterophyllum*

विवरण—आधुनिक विज्ञान ने इसे विष वर्ग में माना है। परन्तु आयुर्वेद के विषों में इसकी कहीं गणना नहीं की और न ही इससे कोई विषाक्त लक्षण ही होता है।

इसका क्षुप २ से ४ फुट ऊँचा होता है। इसका तना सीधा और शाखाएँ चपटी होती हैं। पत्र २ से ४ इंच लम्बे अण्डाकार या हृदयाकार होते हैं। पौधे के नीचे के पत्र बड़े और पाँच भागों में बंटे और ऊपर के पत्र छोटे, दन्तुर किनारे के होते हैं। इसमें नीले, हरे रंग के एक डेढ़ इंच लम्बे, चमकदार बैंगनी धारी के फूल लगते हैं जो बहुत सारे होते हैं। इसका फल पाँच कोष्ठों वाला होता है। इसकी जड़ में प्रायः दो जड़े निकलती हैं जो १ से २ इंच लम्बी और १/२ इंच मोटी होती है। जड़ का ऊपरी भाग मोटा और नीचे का कुछ पतला होता है। यह भूरे रंग की, तोड़ने पर अन्दर से सफेद और बीच में ४-५ बिन्दियों वाली होती है, पुराने ग्रन्थों में इसकी तीन जातियाँ बताई हैं। सफेद, लाल और काली, सफेद ही उत्तम होती है। यह हिमालय में ६-१२ हजार फुट ऊपर, सिन्ध से कुमाऊँ तक पंदा होती है। अतीस के लिए एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि इसे कीड़े लगने का डर होता है, अतः इसको बालू (रेत) में रख देनी चाहिए।

प्रयोज्य अंग—जड़ (कन्द)

मात्रा—५ से ३० रत्ती

आयुर्वेदिक मत—तिक्त और कटु रस, लघु और रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। पित्तकफ शामक, दीपन, पाचन, छिदि, निग्रहण, संग्रहि, अर्शोघ्न, रक्तस्तम्भक, रक्तशोधक, ज्वरघ्न, वाजीकरण है। बाल रोगों के लिए यह उत्तम औषध है, विशिष्ट योग अतिवेषादि चूर्ण, बाल चतुर्भद्रा।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण से इसमें अतीसिन (Atisine) एकोनाइटिक एसिड (Aconitic acid) टैनिक एसिड (Tunic acid) पैक्टिन (Pectin) आदि तत्व पाए हैं। साथ ही साथ स्टार्च, फेट, चीनी और क्षार भी मिले हैं। कुछ ग्लिसराइडों (Glycerides) का मिश्रण भी होता है। (R. N. Khory)।

डा० कोमान ने इसे पेचिश और आँतों की सूजन के लिए श्रेष्ठ बताया

है। कर्नल चौपड़ा का कहना है कि यह मुख्यतः नियत काजल ज्वरनिवारक और पोष्टिक (Tonic) है। डा० डिमक ने कम मात्रा में (Tonic) और २ ड्राम या इससे ज्यादा मात्रा में Antiperiodic माना है। क्षीरी के मतानुसार मलेरिया में इसका प्रयोग करने से लाभ होता है, लेकिन क्युनाइन से हल्का असर करता है।

२३८. ऊदसलोब

अंग्रेजी—Official peony

लैटिन—*Peonia emodi*

विवरण—इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा होता है। इसमें ६-१२ इंच लंबे पत्ते होते हैं जो २-३ भागों में बंटे रहते हैं। फूल लम्बे, टेढ़े और बैंगनी रंग के ढंठल पर लगते हैं—जिसमें पत्तियाँ ५ से १०, सफेद रंग की और आगे से कटी हुई होती हैं, फलों का रंग नीला होता है। फूल मई के महीने में आते हैं। इसमें १-३ इंच लंबे और $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच मोटे गाय की पूंछ के आकार के फल होते हैं। इनमें गांठें होती हैं जिसमें बीज निकलते हैं। यह दाने रक्ताभ वर्ण के होते हैं और इसकी जड़ सफेद रंग की निकलती है। यह काश्मीर से कुमाऊँ तक पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल, बीज

मात्रा—१ से ३ माशा

गुण-कर्म—इसमें तिक्त और कषैला रस होता है। पुराने हकीम इसे अपस्मार, गर्भाशय के रोगों आक्षेप और जलोदर की दवा के रूप में प्रयोग करते रहे। यह मूत्राशय के रोगों को दूर करता और मूत्र की मात्रा बढ़ाता है तथा बच्चों की पथरी तोड़ता है। इससे मासिक स्राव आने लगता है। दूध के साथ लेने पर यह रक्तविकारों को ठीक करता है।

आधुनिक मत—इसमें एक उड़नशील तैल, चीनी, चर्बी मैलेट, आक्जेट फास्टफेट और टेनिन होते हैं।

डिमक ने लिखा है कि हकीम जालीनूस के समय में इसके बीजों का ताबीज अपस्मार दूर करने और बच्चों के दांत आसानी से निकल आने के लिए पहनाते हैं।

कर्नल चौपड़ा के ख्याल में यह पेट दर्द और पित्त के रोगों को दूर करने

वत्सनाभादि वर्ग

२८३

वाला, दस्तावर और उल्टी लाने वाला है। अपस्मार में इसका प्रयोग किया जाता है। यह सूजन मिटाने वाला है।

२३६. कलौंजी

आयुर्वेदीय पर्याय—कालाजाजी, उपकुंचिका, पृथ्वीका यूनानी—शोनीज
अंग्रेजी—Small Funnel लैटिन—Nigella Sativa

विवरण—इसके पौधे सोंफ या घनिये की तरह खेतों में बोए जाते हैं। जिसमें दोनों तरफ पत्ते जोड़े से निकलते हैं। इसमें सफेद, नीले या पीलापन लिए हुए फूल निकलते हैं। फल गोल होते हैं जिनमें तिकोने, काले रंग के गन्ध वाले बीज निकलते हैं। बीज की झिल्ली उठाते ही अन्दर सफेद रंग का गूदा दिखाई देता है। वास्तव में यह पौधा दक्षिणी यूरोप का है, वैसे अब सारे यूरोप में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—इसके बीज काम में आते हैं मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—यह कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। कफ वातशामक, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, ग्राही और कृमिघ्न है। यह गर्भाशय संकोचक, स्तरजनन, मूत्रल, और स्वेदजनन है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में ३८% फिक्स आयल, १.५% वालेटायल आयल, अल्ब्युमिन, मुसिलेज, आर्गेनिक एसिड, मेटाविन, मेलान्थिन, अरेबिक, एसिड आदि तत्व मिले हैं।

डा० आर. एन. क्षौरी ने इसे कृमिनाशक, मूत्रकारक, दुग्धवर्धक, मासिक स्राव कराने वाली और वायुनाशक कहा है।

कनल चौपड़ा का कहना है कि बिच्छु के डंक पर भी यह औषधि उपयोगी है। खुजली और दूसरे चर्मरोगों पर इसका लेप किया जाता है।

कोमान का कहना है कि यह प्रसूतावस्था में लाभ करती है।

Beng. Pharm. की एक official preparation Tincture of Murgela में कलौंजी पड़ती है।

२४०. निविषी

आयुर्वेदीय नाम—निविषी, विषहा, विषभवा

यूनानी—जद्वार

लैटिन — Delphinium Denudatum.

विवरण—यह बहुत शाखाओं वाला २ से ३ फुट ऊँचा पौधा है, इसके पत्र घनिए के पत्रों की तरह छोटे, बड़े डंठल वाले और ५-६ पक्षाकार भागों में बंटे रहते हैं। इसमें बसन्त के शुरू में फूल आते हैं जो छोटे और नीले से रंग के होते हैं। इसमें फल लगता है जो १ से ८ तक बीज वाला होता है। इसकी जड़ १ से $1\frac{1}{2}$ इंच लम्बी, तकवा की तरह की घूसर रंग की होती है।

यूनानी के ग्रन्थों में इसकी पाँच जातियाँ बतलाई हैं जिनमें जद्वार खताई और जद्वार अकरबी मुख्य हैं। जद्वार खताई को जीभ पर रखा जाए तो उस का स्वाद पहले मीठा और बाद में कड़वा लगता है। जद्वार खुरासान, तिब्बत नेपाल में पैदा होती है। यह काश्मीर से कुमाऊँ तक पैदा होती है।

यूनानी हकीमों का कहना है कि जद्वार में नकली चीजें भी मिलाते हैं। अतः उसका रंग एवं स्वाद देखकर लेना चाहिए।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—४-८ रस्ती

आयुर्वेदिक मत—इसका विशेष वर्णन यूनानी के ग्रन्थों में किया गया है, राजनिघंटुकार ने निर्विषा को कटु, उष्ण और कफ वात और रक्त विकारों को दूर करने वाला कहा है। अनेक विष दोषों को दूर करती और व्रण संरोहण करने वाली है।

आधुनिक मत—इसमें दो मुख्य क्षार तत्व बतलाए हैं—(i) Delphinine (ii) Staphisagrine. डा० चौपड़ा आदि के ख्याल में यह तिक्त, उत्तेजक रसायन, बलकारक, दाँतों का दर्द दूर करने वाला और बच्छनाग के विष को दूर करने वाला है।

२४१. बच्छनाग

आयुर्वेदीय पर्याय—वत्सनाभ, विष

यूनानी—बिस सलगमी

अंग्रेजी—Aconite.

लैटिन—Aconitum Ferox

विवरण—इसका पौधा १ से २ फुट ऊँचा होता है। जिसके पत्र तरबूज की तरह के किन्तु उससे कुछ छोटे होते हैं। पत्रों पर रोम होते हैं। तने के दोनों तरफ फूल लगे होते हैं, फल के डंठल सीधे होते हैं और फूल का बाह्य

भाग नीले रंग का और रोमवाला होता है। बाहर से देखने पर फूल मटर के फूल जैसे लगते हैं। इसका फल हुलहुल के फल के जैसा कांटेदार, छोटा और मोटा होता है जिसमें काले रंग के बीज निकलते हैं। इसकी जड़ १ से ३ इंच लम्बी $\frac{1}{4}$ से १ इंच मोटी, बाहर से घूसर रंग की और भीतर से कुछ सफेद, चिकनी और चमकीली होती है।

प्राचीन आयुर्वेदिक पुस्तकों में लिखा है, "जो जड़ गाय के थन जैसी हो, पांच अंगुल से बड़ी न हो, थन से मोटी भी न हो वह मिट्टी के रंग वाला बच्छनाग होता है।" (२० २० स०) भावप्रकाश ने लिखा है कि इसके पौधे के पास और पौधे पैदा नहीं होते। विशेष बात यह है कि जिस जगह यह पैदा होता है उसके पास की जमीन काली और चिकनी नजर आती है। इस में फूल आने पर कोई जानवर इसके पास नहीं आता, एक किस्म का चूहा इस में रहता है जो इसे खाकर जीवित रहता है।

बच्छनाग हिमालय प्रदेश में सिकम से गढ़वाल तक १० से १४ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा है। इसकी लगभग १८० जातियों का पता अब तक लग चुका है।

प्रयोज्य अंग—जड़ को शुद्ध करके

मात्रा—१/८ रस्ती

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, रूक्ष, तीक्ष्ण, लघु, व्यवायि, विकाशी, गुण, मधुर विपाक और उष्णवीर्य होता है। विशेषकर वात कफ शामक है। उचित मात्रा में रुचिकारक, दीपन, पाचन शूल प्रशमन है। शुद्ध हृदयोत्तेजक, रक्त-भारवर्धक और शोथ नाशक है। मूत्रजनन, आतर्वजनन, बल्य, वृंहण, ज्वर-नाशक और कुष्ठघ्न, है।

विशिष्ट योग—मृत्युञ्जय रस, आनन्द भैरव रस, रामबाणरस।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें निम्न वत्व मिले हैं—Pseudo Aconitine जो अधिक मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त एकोनाइटिन, एकोनिन, पिक्रो-एकोनिन, वैञ्जोइल-एकोनिन और होमोनेपेलिन कम मात्रा में मिले हैं।

चौपड़ा आदि ने इसे ज्वर, विसूचिका और आमवात की उत्तम दवा

२८६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

माना है। बी० पी० के नुस्खे—इस औषध से कई दवाईयाँ आज आधुनिक चिकित्सक भी प्रयोग में लाते हैं, उनमें से कुछ यह हैं—

1. Linimentum Aconiti 2. Tinctura Aconiti 3. Aconitins
4. Unguentum Aconitinae.

विष लक्षण—अधिक मात्रा में लेने पर कुछ मिनट बाद ही मुँह में और अन्न मार्ग में झुनझुनी और जलन होती है। पसीना ज्यादा आता है, नाड़ी मन्द हो जाती है, साँस तेज हो जाता है। आँखें रुक जाती हैं और अक्षेप आ जाता है। इसमें श्वास रुकने या हृदयगति के रुक जाने से मृत्यु हो सकती है। विष लिए देर न हुई हो तो तभी वमन करावे, और कस्तूरी, जठार, शराब देनी चाहिए।

RHAMNACEAE FAMILY

बदरादि वर्ग

स्वरूप—झाड़ी

पत्र—एकान्तरा यअभिमुख सादे, उपपत्र सूक्ष्म, आशुपाती या कांटों में रूपान्तरित

पुष्प—पुष्प बाह्याभ्यन्तर कोष, या पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५

स्त्रीकोश १, गर्भाशय १ से ४ गोष्ठी

फल—मांसल और अविदारी

२४२. उन्नाब

आयुर्वेदीय पर्याय—राजबदर

यूनानी—सेलान

अंग्रेजी—Jujuba Fruit

लैटिन—Zizyphus Sativa

विवरण—यह बेर की जाति का एक वृक्ष होता है जिसके पत्ते बेर के पत्तों के समान, किन्तु कुछ बड़े और बरछाकार होते हैं। यह अफगानिस्तान में बहुत होता है। बगदाद का उन्नाब सबसे अच्छा माना जाता है। इसके फल पकने पर गहरे लाल रंग का हो जाता है और उसमें गुठली होती है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—४ से १० दाने

गुणकर्म—यह एक प्रसिद्ध द्रव्य है जिसे यूनानी हकीम प्रयोग करते हैं।

वदरादि वर्ग

२७७

यह शुष्क कफ को आद्र करके शरीर के बाहर निकालता है और अधिक कफ बनने को रोकता है, अतः नई व पुरानी खांसी, स्वास संस्थान के दूसरे रोगों को दूर करने के लिए प्रयोग करते हैं। इससे प्यास और जलन मिट जाती है। मृदु रेचक है। रक्त को शुद्ध करता, वृक्क और मूत्राशय के रोगों को दूर करता और यकृत प्लीहा के विकारों को दूर करता है। उन्नाव का चूर्ण वीर्य को कम करता है और मैथुन शक्ति घटा देता है।

आधुनिक मत—फलों में एसिड, स्निग्ध पदार्थ और शर्करा पाई जाती है। कर्नल चौपड़ा का कहना है कि यह शान्तिदायक और कफ निःसारक है।

२४३. बेर

आयुर्वेदिक पर्याय—वदरीफल, कोल, कर्कन्धु, सौवीर

अंग्रेजी—Jujuba Fruit.

लैटिन—Zizyphus Jujua

विवरण—बेर के वृक्ष प्रायः सभी जानते हैं। इसमें हरे रंग के पत्ते होते हैं और कांटे होते हैं, फल लम्बे होते हैं। भारत में सर्वत्र होता है।

प्रयोग्य अंग—फल, मूल, त्वक्, पत्र

मात्रा—मूलत्वक ३-६ माशा, पत्र कल्क ६ माशा से १ तोला

आयुर्वेदिक मत—बड़ा बेर शीतल, दस्तावर, गुरु, शुक्ल, पुष्टिकारक, होता है। पित्त, दाह, रुधिर विकार, क्षय, तृष्णा को नष्ट करता है।

कोल बेर (छोटे बेर) आही, रुचिकारक, उष्ण वातनाशक है, कफ तथा पित्तकारक है, गुरु व रेचक है, कर्कन्धु (भाड़ी देर) खट्टा, कषला, किचित्, मीठा, स्निग्ध एवं वातपित्तशामक है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि बेर की छाल संकोचक होती है भित्तसार, प्रदर एवं रक्त प्रवृत्ति को रोकती है। प्रलेप करने से कच्चा फोड़ा पक जाता है। इसकी जड़ की छाल ज्वर नाशक होती है।

RUBIACEAE FAMILY

सजिष्ठादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, सादे, अर्खंडित

बुष्प—पुष्प बाह्यकोश एवं पुपाभ्यन्तर कोश के दल ४-५ शाखाग्र पर पत्र कोणउद्भूत

२४४. काफी

अंग्रेजी—Coffee

लैटिन—*Goffea Arabica*.

विवरण—इसके पौधे झाड़ी के समान छोटे २ लगभग ८ फुट तक लम्बे होते हैं। यह बगीचों और खेतों में बोए जाते हैं। इसका बीज चपटा और बूसरी तरफ गोल होता है। यह सख्त होता है और मीठी हलकी गन्ध आती है। इसके बीजों को थोड़ा घी लगाकर सेक लेते हैं और फिर पीसकर रख लेते हैं। यह आरम्भ में अरब देश में उत्पन्न हुआ, किन्तु बाद में मद्रास, मैसूर अफ्रीका, अमेरिका और लंका में भी उत्पन्न होने लगा है।

प्रयोज्य अंग—बीज और पत्ते

मात्रा—बीज १ से २½ रत्ती, पत्तों का क्वाथ २ से ४ तोला

गुणकर्म—काफी में वैज्ञानिकों ने निम्न तत्व प्राप्त किए हैं केपिन, एडोनाइन, भुन्टाइन आदि। जिनमें केपिन ने चिकित्सा जगत में बहुत उच्च स्थान प्राप्त किया है। इसके द्वारा यह द्रव्य अधिक कार्य करता है।

यूनानी हकीमों का कहना है कि कहवा रक्त की उष्मा बढ़ाता है, और पित्त की तेजी को कम करता है। मृदु रेचक, पित्त के ज्वर, चेचक, खसरा, बिलिया, शीतपित्त, रक्तज रोग कफज, कांस को दूर करता है, मूत्र अधिक आता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि यह दिमाग आमाशय और वृक्कों को उत्तेजना देता है। मृदुरेचक, कोथ नाशक, (ऐन्टिसेप्टिक) मूत्रल और पथरी को बनने से रोकने वाला है। इससे पेशाब में निकलता हुआ यूरिकएसिड कम हो जाता है, थकावट दूर होती है।

यह हृदय पर उत्तेजक कर्म करती है जिससे रक्त का दबाव बढ़ जाता है और ऐसी अवस्था में जब कि रक्त की गति में कठिनाई हो रही हो, काफी अच्छा काम करती है। यह साँस की क्रिया को उत्तेजना देती है। मूत्रल होने के कारण यह जलोदर, सर्वांग शोथ और उरस्तोभ (Wet pluerisy) में

मजिष्ठदि वगं

२८६

लाभ करती है। कहवा का विशेष तत्व केफिन और ददों के लिए प्रयोग किया जाता है, एस्प्रिन के साथ मिलाकर देने से यह उसके हृदय पर होने वाले घातक प्रभाव नहीं होने देता और अर्धावभेदक तक के ददों को ठीक करता है, Strychnine के साथ मिला देने से यह श्वास के आक्षेप को ठीक करता है।

अधिक मात्रा में काफी का प्रयोग करने से प्यास, गले में जलन, पेट दर्द उल्टी, दस्त, चक्कर, कम्पन, आक्षेप और अर्धाग तक हो जाता है। ऐसी अवस्था में दूध, घी, मक्खन आदि देने चाहिए।

२४५ कदम्ब

आयुर्वेदीय पर्याय—कदम्ब, नीप, प्रियक, वृत्तपुष्प, हलिप्रिय

लैटिन—*Anthocephalus Cadamba*.

विवरण—इसके पेड़ ५०-६० फुट ऊँचा गहरी छाया वाले होते हैं। पत्ते महुए के पत्तों के समान चिकने होते हैं और उन पर सिराएँ स्पष्ट होती हैं। केशर के रंग छोटे २ फूल लगते, गोल एवं कठिन फल लगते हैं। यह बगाल उत्तर प्रदेश एवं मलाया में उत्पन्न होते हैं।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, पत्र, फल

मात्रा—त्वक् चूर्ण ६ से १२ रत्ती, स्वरस १-२ तोला

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त, कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाक है, विषनाशक है एवं त्रिदोषनाशक है। वीर्यवर्धक एवं शोथनाशक है। व्रणरोपक, कासघ्न, दाहशामक है। रक्तपित्त आघ्रमान, अरोचक एवं अतिसार में लाभ करता है।

२४६. गन्ध प्रसारिणी

आयुर्वेदीय पर्याय—प्रसारिणी, प्रतानिनी, सरणी, भद्रपर्णी, राजबला, सारणी
अंग्रेजी—Chinese Flower Plant. लैटिन—*Faederia Fcetida*.

विवरण—इसकी विशाल प्रतानिनी रोमवती लता होती है। पत्र आमने-सामने लगे रहते हैं। यह भालाकार, लटकार या हृदयाकृति २ से ६ गंच लंबे और $\frac{3}{4}$ इंच से $2\frac{1}{2}$ इंच चौड़े होते हैं। पत्तों को मसल कर सूँघने से तीव्र गंध आती है, नीललोहित वर्ण के पुष्प पीताकार आते हैं। पीले रंग के फल

२६०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

लगते हैं, बीज दानेदार एवं छोटे होते हैं। यह नेपाल, बंगाल, आसाम में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल एवं पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, गुरु सर गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। वृष्य, बलवर्धक, सन्धानकारक है। यह रेचक त्रिदोषनाशक है। अर्श, शोथ, वातरक्त एवं कब्ज में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसमें एक दुर्गन्धित उड़नशील तैल अल्फा पिडेरिन और विटापिडेरिन नामक दो क्षार तत्व होते हैं।

डा० आर० एन० क्षौरी ने बताया है कि यह रसायन, आक्षेप निवारक एवं विशेषरूप से वामक है।

२४७. मंजीठ

आयुर्वेदीय पर्याय—मज्जिष्ठा, विका, अरुणा,

यूनानी—फुव्व

अंग्रेजी—Indian Madder

लैटिन—*Rubia Cordifolia*.

विवरण—यह बहुत शाखाओं वाली, सहारा लेकर चढ़ने वाली लता होती है। इसका तना चौकोर सा लाल रंग का होता है। इसके पत्ते २-४ इञ्च लंबे, तीक्ष्ण नोक वाले, हृदयाकार होते हैं, जिनका ऊपर का भाग खुरदरा और नीचे का रूएंदार होता है। पत्तों का डंठल पत्तों से दुगना लम्बा होता है जिस पर काँटों जैसे टेढ़े से उभार होते हैं। इसमें १/५ इञ्च लम्बे, गोल, गूदेदार बैंगनी रंग के फल लगते हैं। इसकी जड़ लालरंग की लम्बी और मोटी होती है। यह नीलगिरी और हिमालय प्रदेश में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—२-४ माशा

आयुर्वेदिक मत—रस में कषाय, तिक्त और मधुर है। गुरु और रुक्ष, गुण वाला, उष्ण वीर्य और कटु विपाक वाला होता है। यह कफ पित्तशामक दीपन, पाचन; स्तम्भन और कृमिघ्न है। शोणितस्थान होने से रक्त के रोगों को ठीक करता है। प्रमेह, कुष्ठ और ज्वर का नाश करता है। स्तन्यशोधक एवं आतर्धजनन है। त्वचा का रंग निखारने वाला, बल देने वाला और विष नाश करने वाला होता है।

मजिष्ठादि वर्ग

२६१

आधुनिक मत—इसमें दानेदार लाल रंग का द्रव्य *Purpurium* होता है। इसमें ये ग्लूकोसाइड पाए गए हैं—*Maujistin*, *Garaucin* *Allzarin* *Xanthine* इसकी जड़ में एक तेल निकलता है।

इसकी क्रियाएँ तीन अवयवों पर होती हैं। मस्तिष्क पर, जहाँ थोड़ी मात्रा दी जाए तो वह बेचैनी दूर करता है और अधिक मात्रा होजाए तो चक्कर पैदा कर देता है, दूसरे गर्भाशय में सिकुड़न पैदा करता है और तीसरे त्वचा में रक्त की मात्रा बढ़ा देता है। इन क्रियाओं से ही यह अपने कर्म करता है।

२४८. मैनफल

आयुर्वेदीय पर्याय—मदन फल, छद्दन, राठ, विषपुष्प यूनानी—जीजुलकै
अंग्रेजी—*Emetic Nut* लैटिन—*Raudia Dumetorum*

विवरण—इसका पौधा छोटा, झाड़ीदार और कांटे वाला होता है, इस के पत्र कुछ गोलाई लिए हुए अपामार्ग के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं, पत्तों के निकट से दोनों तरफ लम्बे तेज कांटे निकलते हैं। इसमें सफेद या कुछ पीले सफेद रंग के फूल गर्मियों में लगते हैं। छोटी नासपाती जैसा फल पीला या मिट्टी के रंग का होता है जिसका गूदा अखरोट जैसा गोल होता है। इसे तोड़ने से काले रंग के बीजों के चार भाग हो जाते हैं, जो बड़ी इलायची जैसे लगते हैं। इसको मैनफल की 'पिप्पली' कहते हैं। मैनफल हिमालय की निचली पहाड़ियों में जम्मू से लेकर सिक्किम तक, स्निग्ध, कूच बिहार, महाराष्ट्र में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, बीज

मात्रा—१-२ मासे (वमनार्थ ३-६ माशा)

आयुर्वेदिक मत - यह मधुर, तिक्त, कषाय, कटु रस, लघु रूक्ष गुण, उष्णवीर्य, कटु विपाक और वामक प्रभाव वाला होता है। यह दातकफनाशक एवं पित्त निःसारक होता है। रक्तशोधक, शोथहर, ज्वरघ्न; कुष्ठघ्न एवं आतर्वजनन है। आमवात और दूसरी ऐसी अवस्थाओं, जिनमें शोथ एवं शूल हो में इसका लेप करते हैं, पेट दर्द में सिर के दर्द में इसे पीसकर लेप करते हैं।

आधुनिक मत—मैनफल में $\frac{1}{3}$ हिस्सा एक तत्व होता है जिसे *Saponin*

कहते हैं, इसके अतिरिक्त Valerianicacid पाया जाता है। कुछ मोम और राल भी होते हैं।

डा० आर. एन. क्षोरी ने लिखा है कि आज के वैज्ञानिकों ने खोजकर यह मत व्यक्त किया है कि इसका छिलका और बीज वमन नहीं लाते' केवल इस का गूदा ही वमन लाता है। छिलका और बीज पेट के कीड़ों को मारते हैं। बच्चों के पित्त विकार में इनका प्रयोग उत्तम होता है। इसमें Valerianic acid होता है। इसलिए इसका टिचर नाड़ियों को उत्तेजना देने और काली खांसी को दूर करने के लिए दिया जाता है।

आधुनिक मत—वैज्ञानिक इसे इपिकाकुआना के स्थान पर प्रयोग करने के लिए उत्तम औषध मानते हैं।



ROSACEAE FAMILY

तरुण्यादि वगं

स्वरूप—प्रायः क्षुप

पत्र—एकान्तर, संयुक्त, पक्षाकार

पुष्प—शाखाग्रोद्भूत पुष्पबाह्यकोश एवं पुष्पाभ्यान्तरकोश के दल ५

पुं केशर—अनियत

२४६. आलू बुखारा

आयुर्वेदीय पर्याय—आरूक

यूनानी—इज्जास

अंग्रेजी—Bokhara

लैटिन—Prunns Communis

विवरण—इसका पौधा झाड़ीदार लगभग १० हाथ तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ सीधी और एक साथ दो-दो डड्डियाँ निकली हुई होती है। इसके पत्र अण्डाकार और कटे हुए किनारों के होते हैं। बसन्त में पूरा पतझड़ हो जाता है और फूल रह जाते हैं जो रंग में सफेद, पीले और छोटे २ गुच्छों में होते हैं। इसमें गोल, आंवला या बेर के बराबर आलू के समान काला या पीला फल लगता है। सुख जाने पर इसका रंग गहरा भूरा हो जाता है और झुरियाँ पड़ी होती हैं। इसके अन्दर बादाम की सी गिरी निकलती है, उसमें से तेल निकाला जाता है। इसकी कई जातियाँ हैं परन्तु मुख्यतः उद्यान का

तरुण्यादि वर्ग

२६१

और पहाड़ी ही प्रकार का होता है। आरम्भ में समरकन्द में पैदा हुआ था। अब यह हिमालय में गढ़वाल से काश्मीर तक ५ से ७ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—३ से ५, दस्तावर १५ से २० तक

गुण कर्म—यह एक प्रसिद्ध द्रव्य है जिसका प्रयोग यूनानी हकीम अधिक करते हैं। इसके पत्र रक्त को शुद्ध करते हैं। नकसीर को बन्द करते हैं और तालु प्रदाह को दूर करते हैं इसका फल खट्टा, मीठा, हलका दस्तावर और ज्वर का दूर करने वाला होता है। यह फोड़ों को दूर कर खुजली मिटाता है। मीठा आलुबुखारा आमायश को सुस्त करता है। इसके पत्रों का लेप पेड़ पर किया जाए तो आन्तों के कीड़े निकाल देता है। इसका गोंद खाँसी, फेफड़े और छाती के दर्द को दूर करता है। यह वृक्क और मूत्राशय की पथरी को तोड़कर निकाल देता है। इसके गोंद के बारीक चूर्ण को घाव पर डालने से या इसके पार्न से घाव को घोंने से घाव सूख जाता है। सिरके के साथ पिसा हुआ गोंद, दाद, साज और सिर की गञ्ज को मिटाने वाला है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ मदनपाल निघंटु में पुष्पादि भेद से चार प्रकार के 'आरुक' का वर्णन किया है और इधर निघंटु रत्नाकार में कच्चे और पके फलों के अनुसार इसके गुण बताए हैं। इसे मधुर एवम् अम्ल रस, लघु एवम् स्निग्ध गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक कहा गया है। यह वातपित्त एवम् रक्त शामक, तृष्णानिग्रहण, अनुलोमन, मूत्रल, ज्वरघ्न एवं बल्य कहा गया है।

आधुनिक मत—इसमें Malic Acid (मैलिक एसिड) Citric Acid (साइट्रिक एसिड) पेक्टिन, अल्ब्युमिनाइड और शर्करा पाई जाती है।

डिमक ने लिखा है कि खाली पेट खाने से आलूबुखारा खट्टा, ठंडा, पाचक और मृदुरेचक होता है। शरीर की रुक्षता और उष्णता को दूर करता है।

२५०. पद्माख

आयुर्वेदीय पर्याय—पद्मगन्धि, पद्मक

अंग्रेजी—Bird cherry

लैटिन—Prunus Girasoides

विवरण—इसके वृक्ष बड़े होते हैं। जिसका तना गोल, लाल से रंग का

और ग्रन्थि युक्त होता है। इसमें से कमल के समान गन्ध आती है। पत्र ३ इञ्च से ५ इञ्च लम्बे दन्तुरधार चिकने तथा रोमश होते हैं। फूल कदम्ब के फूल के समान होते हैं। आड़ू के समान फल लगते हैं जो पीले या लाल रंग के होते हैं। इसमें सख्त बीज होता है और गूदा कम होता है। शिमला, गढ़वाल, सिक्किम, नेपाल, भूटान में होता है।

प्रयोज्य अंग—कांड, त्वक्, बीजमज्जा मात्रा—चूर्ण ५ से १५ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त रस, लघू स्निग्ध गुण, शीतवीर्य, कटु विपाक एवम् प्रभाव में त्रिदोषहर है। रक्त पित्त नाशक है। ज्वर, छर्दि एवं विष का नाश करता है। मोह, दाह, भ्रान्ति, कुष्ठ, व्रण एवम् तृष्णा का नाश करता है। यह गर्भ स्थापक होता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में हाइड्रोसायनिक एसिड नामक तत्व पाया जाता है। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि इसकी छाल तिक्त, बलकारक एवम् अवसादक होती है। पुराने रोगों के बाद जो दुर्बलता आती है उसे मिटाने के लिए और हृदय की घड़कन के लिए यह उत्तम द्रव्य है।

२५१. बादाम

आयुर्वेदीय पर्याय—वाताद, वातवैरी, नेत्रोद्यमफल यूनानी—लौजुल

अंग्रेजी—Almond लैटिन—Prunus Amygdalus

विवरण—इसका वृक्ष मध्यमाकार होता है जिसमें चौड़े, लम्बे, भूरे रंग के पत्र लगते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। इसका कच्चा फल अम्ल और पका हुआ मधुराम्ल होता है। इसके बीज बादाम के नाम से प्रयोग किए जाते हैं। बादाम की दो जातियाँ होती हैं। एक मीठा और दूसरे कड़वा। इनमें कड़वा बादाम विषाक्त होता है क्योंकि उसमें 'हाइड्रोजन एसिड' होता है। यह यूरोप और तुर्की में पैदा होता है, भारत में भी काश्मीर में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—बीज, तैल मात्रा—७-११ बीज, तैल १/४ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु एवं स्निग्ध गुण उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। वातशामक एवम् कफपित्त को बढ़ाता है। नाड़ी संस्थान

नीम्बुकादि वर्ग

२६५

को ताकत देता दीपन, स्नेह, अनुलोमन, एवम् मृदू रेचन है। कफ सरलता से निकलता, शुक्र और दूध बढ़ाता और वाजीकरण होता है यह बृंहण भी है।

कड़वे बादाम का लेप खारिश मिटाता, कुष्ठ और कीड़ों को नष्ट करता है रंग को निखारता है।

आधुनिक मत—मीठे बादाम में Fixedoil ५६%, इमलिशन, शर्करा, प्रोटीन पाए जाते हैं। पोटेशियम, कैल्शियम, और मैगनीशियम फास्फेट होते हैं। वैज्ञानिकों ने गिरी को मृन्निघता करने वाला, उत्तेजक और वातवाहिनियों को बल देने वाला बताया है।

RUTACEAE FAMILY

नीम्बुकादि वर्ग

स्वरूप — प्रायः वृक्ष

पत्र — एकान्तर

पुष्प — नियमित शाखाग्रोद्भूत, पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ४-५ पुंकेसर ८ से १०, बीजकोष उर्ध्वस्थ

२५२. अम्लवेत

आयुर्वेदीय पर्याय — अम्लवेतस, शतवेधी

अंग्रेजी — Pomelo

लैटिन — Citrus Decumana.

विवरण — इसका वृक्ष ३०-४० फुट ऊँचा होता है। पत्र ६-९ इंच, अण्डाकृति, सूक्ष्म रोमश होते हैं। अग्रभाग नो नीला होता है। पुष्प बड़े एवम् श्वेत वर्ण के होते हैं। फल बड़े, ताल फूल के सदृश्य होते हैं। कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर पीले होते हैं। अब यह भारत में भी पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग — फल, पत्र

मात्रा — स्वरस ३-६ माशा, पत्र स्वरस १/४ से १ तोला

आयुर्वेदिक मत — अत्यन्त अम्ल, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य एवम् अम्लाविपाक है। मलभेदक, अग्निप्रदीपक, पित्तकारक, रोमहर्षक है। हृदय रोग, गुल्म, मूत्र दोष, प्लीहा, उदावर्त, हिक्का, आघ्मान, अरुचि, कास, श्वास अजीर्ण, वमन नष्ट करता है यह वात कफ शामक है।

२६६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

आधुनिक मत—इसके फल में साइट्रिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, शर्करा होती है। फल और त्वचा में सुगन्धित तैल होता है।

विशेष—सम्प्रति बाजार में जो अम्लबैत के नाम पर विकती है। वह रेवन्द चीनी की शाखाएं होती हैं।

२५३. कैथ

आयुर्वेदीय नाम—कपित्थ, दधित्थ, सुरभिच्छद

अंग्रेजी—Wood Apple

लैटिन—*Feronia Elephantum*

विवरण—इसका वृक्ष बिल्व के सदृश २०-३० फुट ऊँचा होता है। शाखाओं पर दृढ़ कांटे होते हैं। पत्र मेहदी के पत्रों से बड़े होते हैं, एकान्तर होते हैं और संयुक्त होते हैं। रक्ताभ श्वेत रंग के फूल लगते हैं। फल गोल, छोटे बिल्व फल के समान होते हैं। यह समस्त भारत में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, फल, पत्र

मात्रा—कवाथ ५-१० तोला, फल स्वरस, १-२ तोला

आयुर्वेदिक मत—कषाय, अम्ल, मधुर रस, लघु रुक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाक है। कच्चा फल संग्राही लेखन होता है। और लघु होता है परन्तु पक्व फल गुरु होता है, तृष्णा हिकका का नाश करता है, वात पित्त नाशक होता है। श्वास, कास, अरुचि, तृष्णा एवम् कण्ठ रोगों का नाश करता है।

आधुनिक मत—फल मज्जा में साइट्रिक एसिड प्रचुर परिमाण में होता है। पिच्छिल द्रव्य होता है। क्षार होते हैं जिनमें पोटेशियम, लोह व खटिक होते हैं। पत्तियों में एक सुगन्धित तैल पाया जाता है।

२५४. तुम्बरू

आयुर्वेदीय पर्याय तेजबला

यूनानी—कवाबा खेंदा

अंग्रेजी—Toothach Tree

लैटिन—*Zanthoxylon Alatum*

विवरण—इसकी एक छोटी कांटे वाली झाड़ी होती है। जिसके पत्र १ से ६ इंच तक लम्बे होते हैं। फूल छोटे और लम्बे होते हैं। घनिए के से फल होते हैं जिनमें चमकीले बीज होते हैं और उन पर तैल वाली छोटी २

नीम्बूकादि वर्ग

२६७

गांठें होती हैं। यह जम्मू से भूटान तक २ से ५ हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल, छाल

मात्रा—फल ५ से १० रत्ती और छाल १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—यह रस में कटुतिक्त, लघु-रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफवात शामक एवं पित्तवर्धक है। यह नाड़ी उत्तेजक, दीपन, पाचन, कृमिघ्न है। मूत्र जनन, ज्वरघ्न और कुष्ठघ्न है।

इसका चूर्ण ब्रणों पर छिड़कते हैं। मुँह दांत और गले के रोगों में इसके स्वरस या क्वाथ से कतल करते हैं। यह ऊर्षाग एवम् आमवात में भी लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके फल में उड़नशील तैल, राल और एक दानेदार ठोस तत्व Zanthoxylol पाया जाता है। फल के छिलके में तारपीन के तैल और युकेलिप्टस जैसा तैल पाया जाता है।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह सुगन्ध वाला और ताकत देने वाला है। यह बुखार हटाता है अग्निमान्द्य और विशूचिका को ठीक करने वाला होता है।

२५५. नीम्बू

आयुर्वेदीय पर्याय—निम्बुक, जम्बीर, दन्तशठ

अंग्रेजी—Lemon

लैटिन—Citrus Mebica

विवरण—प्रायः तीन प्रकार नीम्बु होते हैं। जम्बीरी नीम्बु, कागजी नीम्बु और मीठा नीम्बु। इनका अन्तर केवल फल के स्वरूप के अनुसार होता है। यह प्रायः समस्त भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल स्वरस

मात्रा—२-५ तोला

आयुर्वेदिक मत जम्बीरी नीम्बु गरम, भारी, खट्टा, वात कफ मलबन्ध, शूल नाशक है। कास, कफोत्क्लेश, छर्दि, तृष्णा, आमदोष, मुख की विरसता, हृदय की पीड़ा, अग्निमन्दता तथा कृमिरोग नाशक है।

कागजी नीम्बु अम्ल, वातनाशक, दीपक, पाचक और लघु होता है। नींबु

कृमि समूह को नष्ट करने वाला है। तीनों दोष अग्नि मन्दता, वात व्याधि, मलबन्धता एवम् बिसूचिका में लाभ होता है।

मीठा नीम्बु मधुर एवम् गुरु है। विष, रक्तविकार, अरुचि, तृष्णा तथा वमन को नष्ट करता है यह बलदीपक एवम् पुष्टिकारक है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि नीम्बु के रस के सेवन से मूत्र से यूरिक एसिड, अलग होकर तलछट से (Deposits) रूप में आ जाता है, अतः अश्मरी होने की संभावना रहती है। नींबू के रस के या साइट्रिक एसिड के अधिक सेवन से अग्नि दुर्बल हो जाती है और रक्त का संगठन बिगड़ जाता है। यह शरीर के भीतर की ग्रन्थियों को बिलीन करने की शक्ति रखता है, अतः अष्ठीलारोग (Atherma) में हितकर है। इसका ताजा रस बच्चों की स्नायुविक दुर्बलता (स्कर्बी) में उपकारी है। त्वचा या वृक्क की कार्य शक्ति बढ़ाने या ज्वर में तृष्णा के शान्त्यर्थ जितने शीतल या मूत्रल पानीय हैं, उन सबों में वह अन्यतम उपादान है। यह प्रदाह मूलक पीड़ा वा अम्ल पित्त में हितकर है। नींबू का रस रक्त में अपना क्षारीय गुण प्रदान कर देता है। अतः वातव्याधि (गृध्रसी) वा कटि शूलादि पीड़ा में हितकारक है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह स्थूलता को दूर कर देता है संग्रहणी रोग में देशी चिकित्सक मधु व यवक्षार के साथ इसके रस की व्यवस्था करते हैं। इसका बाह्य प्रयोग कण्डू, घूप सेवन से उत्पन्न पीड़ा वा प्रसवान्त रक्तस्राव में हितकर है। नींबू का छिलका पाचक, उष्ण, वायु नाशक वा आध्माहर है। इसके क्वाथ शीत-कषाय इत्यादि को सुगन्धित करने के लिए रेचक वस्तुओं में प्रयुक्त होते हैं। इसका तैल वात में हितकर है। अग्निपक्व नींबू का रस अतिसार की उत्तम औषध है।

२५६. बैल

आयुर्वेदीय पर्याय—बिल्व, शांडिल्य, कंटकी, श्रीफल यूनानी—बेह हिंदी

अंग्रेजी—Bengal Quince

लैटिन—Aegle Marmelos

विवरण—इसका वृक्ष २५-३० फुट ऊँचा होता है जिसमें एक डंठल में मिली हुई तीन २ पत्तियाँ होती हैं। इन पत्रों में सुगन्ध आती है और साथ में

नीम्बूकादि वर्ग

२६६

काटे लगे होते हैं। पत्र गर्मियों में झड़ जाते हैं। मई मास में इसमें फूल आते हैं जो सफेद रंग के होते हैं और ४-५ दल वाले होते हैं। दूसरे वर्ष मार्च में फल आते हैं जो बड़े, गोल और ऊपर से बहुत सख्त होते हैं, इनमें ६-१५ तक कोष्ठ रहते हैं जो बीज और गूदे से भरे होते हैं। यह सारे भारत में विशेषकर बंगाल, बिहार, मध्य भारत में पाया है।

प्रयोज्य अंग—फल का गूदा, पत्र, जड़, छाल

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा, रस १-२ तोला

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद में इसे एक श्रेष्ठ औषध माना है। यह कषाय तिव्र रस, लघु और रुक्ष गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक है। यह कफवात शामक है। कच्चा फल दीपन, पाचन, ग्राही है यह। यह अतिसार प्रवाहिका और उदरशूल में लाभ करता है, कच्चे फल का गूदा आग पर पकाकर चीनी के साथ मिलाकर देने से रक्ततिसार, प्रवाहिका और रक्तार्श में लाभ होता है। पका हुआ फल कषैला, मीठा और अनुलोमक होता है। इसका ज्यादा प्रयोग करने से यह अरुचि उत्पन्न करता है। यह हृद्य होता है, सूजन को हटाता है और ताकत देता है। इसके पत्र का रस सूजन और दर्द मिटाता है यह जुकाम, खांसी और श्वास में भी लाभ करता है। पत्र रस से इक्षुमेह भी दूर होता है, इसकी जड़ नाड़ी तन्तुओं को शान्त करती और ज्वर को हटाती है। यह शोथ को भी दूर करती है।

आधुनिक मत—इसके फल के गूदे में एक कार्यकारी पदार्थ होता है जिसे Marmelosine कहते हैं। इसमें म्यूसिलेज, पेक्टिन, टैनिन और शर्करा होती है। डा० आर. एन. क्षीरी ने लिखा है कि पका हुआ वेल का फल मीठा, ताकतवर और हलका दस्तावर होता है। क्रूरकोष्ठ होने से जिन्हें मृदव मल त्याग की प्रवृत्ति बनी रहती है उनके लिए यह बहुत लाभ करता है। इसका शर्वत संग्रहणी को दूर करता है। और अतिसार में लाभ करता है।

डा० देसाई ने लिखा है कि इसकी जड़ दिल की घड़कन, नौद न आना और पागलपन में लाभ करती है। इसका क्वाथ विषम ज्वर में देते हैं विषाक्त जीव के दंश स्थान पर इसकी जड़ का लेप करते हैं। बच्चों के उल्टी और दस्तों में चावलों के माण्ड में जड़ को उबाल कर दिया जाता है।

कर्नल चौपरा ने लिखा है कि इसके पत्र पुल्टिस की तरह त्रण एवम् शोथ पर बांधने से लाभ करते हैं ।

२५७. रतनजोत

यूनानी—सखजार

लैटिन—*Clausena Pentaphylla*

विवरण—इसका पौधा एक छोटी झाड़ी के आकार का होता है जो १ फुट से २½ तक ऊँचा होता है । इसमें गहरे हरे या सांवले रंग के पत्ते लगते हैं जो काहू के पत्रों से मिलते हैं । इसमें रक्ताभ सा पीला फूल लगता है, इसकी दूसरी जाति और है जिसमें काला फूल आता है । इसमें पीले रंग के छोटे २ रसदार फल लगते हैं । इसमें लाल रंग की जड़ होती है जो तैल आदि के रंगने में प्रयोग की जाती है । यह नेपाल, कुमाऊं आदि में पैदा होती है ।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—३ माशा से ५ माशा

गुण-कर्म—प्रायः इसको बाह्य रूप में प्रयोग किया जाता है । इसे सिरके के साथ पीसकर भाई, व्यंग, तिल और दूसरे त्वचा के रोगों में लेप करते हैं । तेल में मिलाकर मालिश करने से अधिक पसीना आना बन्द हो जाता है । गर्भाशय के रोगों में, गर्भ गिराने के लिए, मासिक स्राव लाने के लिए और कमर दर्द में इसकी बत्ती बनाकर स्त्री के योनि मार्ग में रखते हैं । इसे जलाकर तेल में पीसकर उस तैल की मालिश गंजेपन और बाल झड़ने में की जाती है ।

इसका चूर्ण आमाशय, यकृत, प्लीहा, अश्मरी और वृक्कों के रोगों में दिया जाता है । क्वाथ बनाकर भी प्रयोग करते हैं । अर्घांग, अर्क्षित और कण्ठमाला में भी लाभ होता है ।

२५८. सिताब

यूनानी—सुदाव

अंग्रेजी—*Garden Rue*

लैटिन—*Ruta Graveolens*

विवरण—इसका छोटा सा पौधा होता है, जिसके पत्ते पतले, घूसर रंग के और बहुत बंदबुदार होते हैं । इसके फूल पीले रंग के होते हैं । फल में तीन कोष्ठ होते हैं जिनमें ३ बीज निकलते हैं । यह ईरान, अफगानिस्तान, पंजाब आदि स्थानों पर पाया जाता है ।

नीम्बूकादि वर्ग

३०१

प्रयोज्य अंग—पूरा पौधा, विशेषकर पत्ते

मात्रा—रस २ से ३ माशा, चूर्ण ५ से १० रत्ती, फाण्ट १ से २ तोला

गुणकर्म—यह कफ और वायु को शान्त करता है। यह आक्षेप दूर करता, नाड़ियों को बल देता, अपस्मार आदि को दूर करता है। यह भूख बढ़ाता, पाचन करता और पेट के कीड़े मारता है। अफारा और पेट दर्द को दूर करता है। जुकाम और खांसी में लाभ करता और पेशाब अधिक लाता है। यह पसीना अधिक लाता और बुखार हटा देता है। इससे औरतों को कष्टार्तव और आवि दूर होते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसे अधिक मात्रा में न प्रयोग किया जाये क्योंकि यह नशा कर देता है।

आधुनिक मत—विश्लेषण से पता चला है कि इसमें ग्लुकोसाइड, एक पदार्थ Rutin और एक उड़ने वाला तैल होता है। तैल में ६०% 'मेथिलना' निलकेटीन होता है। इसे एन्टीसैण्टिक उत्तेजक और मासिक स्राव लाने वाला बताया है। इसके पत्ते आमवात के दर्द को दूर करते हैं।

२५६. हरमल

यूनानी—इस्पन्द

अंग्रेजी—Syrian Rue

लैटिन—Peganum Harmala

विवरण—इसका पौधा १ से ३ इंच लम्बे कटे फल होते हैं। पत्ते की जड़ में सफेद रंग के फूल निकलते हैं। इसके फूल जुलाई में आते हैं और सितम्बर में फल आता है जो गोल होता है और अन्दर तीन कोष्ठों में बंटा रहता है, जिनमें १-१ बीज होता है। यह बीज तिकोने और घूसर वर्ण, तम्बाकू जैसी गंध वाले होते हैं। कहा जाता है कि इनको आग में डालने से आग बुझ जाती है। यह अरब, ईरान, सिन्ध एवम् काश्मीर में होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—१ से ३ माशा

गुणकर्म—यूनानी हकीम इसे दो तरह की मानते हैं—१. इस्पन्द अरबी और दूसरे इस्पन्द सोख्तनी जो लाल होती है, यही श्रेष्ठ भी मानी गई है। यह वाजीकरण, बृंहण, कफ वात शामक है। पेट के कीड़े मारता और मूत्रल तथा आर्तवजनन होता है। यह खांसी, स्वास, अर्घाग और अर्दित को दूर

करता है। बीजों को जैतुन के तैल में पकाकर कान में बहरेपन में बूँद २ डालते हैं। दान्तों के दर्द में इसके बीजों की घूनो देते हैं। यह खून साफ करती, दूध बढ़ाता, कुष्ठ और ज्वर को दूर करता है। यह नशीली चीज है।

आधुनिक मत—बीज में तीन क्षार तत्व होते हैं, हरमलोल, हरमलिन, हरमिन। हरमलिन कुनैन की तरह काम करती है। कहा गया है कि हरमल नींद लाने के लिए अच्छा है।

S

SALICACEAE FAMILY

वेतसादि वर्ग

पत्र—एकान्तर,

पुष्प—बीज कोष-ऊर्ध्वस्थ, १ खण्ड वाला

बीज—अनेक, रोममुक्त

२६०. बेंत

आयुर्वेदीय पर्याय—वेतस, नम्रक, वानीर

यूनानी—वेदेमुस्क

अंग्रेजी—Broaleaved Willow

लैटिन—*Salixcaprea*

विवरण—इसका पौधा १५ से ३० फुट ऊँचा होता है, जिसमें पत्र एकान्तररित लगे हुए, नोकदार, भिनारे कटे हुए और हरे रंग के होते हैं। इसके फूल पीले रंग के बहुत सुगन्धित होते हैं। रूएँदार बीज होते हैं। यह ईरान, यूरोप में तथा भारत के पंजाब और काश्मीर में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग लाल और फूल

मात्रा—रस २ से ५ तोला, अर्क ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—वेतस कषाय, कटु, तिक्त रस, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक और त्रिदोषहर है। यह मेघ्य, दीपन, यकृतुत्तजक, ग्राही, हृदय, मूत्रजनन, वृष्य एवं कुष्ठघ्न है। ज्वरघ्न एवं दाह प्रशमन है। सिर दर्द और आखों की सूजन में इसके अर्क का परिषेक करते हैं। यह दाह, शोथ, अर्श, योनिविकार, विसर्प और अश्मरी नाशक है।

वेतरादि वर्ग

३०३

आधुनिक मत—इसकी छाल में नोम, गोंद, बसा रहती है। साथ ही साथ Salicine होती है। यह Salicine मुंह में Sliva(लाला रस) के साथ मिल कर Salligeuin और Suger में बदल जाती है। Saligeuin का भी कुछ भाग Salieylicacid में बदल जाता है।

डा० डिमक ने लिखा है कि यह दीपक, उत्तेजक, और कामोद्दीपक है। सिर दर्द और आँखों के रोगों में इसका लेप किया जाता है। इसकी राख रक्तचमन को बन्द करती है। इसको सिरके के साथ पीसकर खूनी बवासीर पर लगाया जाता है, डा० देसाई ने लिखा है कि बुखार की बेचैनी, सिर दर्द, जोड़ों के दर्द और सूजन को मिटाता है।

२६१. जलबेंत

आयुर्वेदीय पर्याय—जलवेतस, निकुञ्चक, नादेयी,
लैटिन - Salix Tetra Sperma

यूनानी - वेद सादा

विवरण—इसका वृक्ष बेंत से कुछ बड़ा होता है जिसकी लम्बाई ५० फुट तक हो सकती है। इसकी छाल सफेद और काष्ठ लाल होता है। इसके पत्र ३-६ इंच लम्बे, रूएँदार, गोल और कटे किनारे के होते हैं। पत्र का ऊपरी पृष्ठ हरा और पीछे का सफेद होता है। फूल पीले रंग के मुलायम और गन्ध वाले होते हैं। यह बसन्त में खिलते हैं। वर्षा में फूल आते हैं जो ५ इंच लंबे होते हैं और उसमें ४-६ बीज निकलते हैं। यह काश्मीर आदि प्रदेशों में होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल, फूल, पत्र

मात्रा - पत्तों का रस २-५ तोला, अर्क १०-१५ तोला

गुण-कर्म—आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जलबेंत के गुण वेंत के समान बनाए गए किंतु यूनानी ग्रन्थों में इसे कुछ हल्का बताया है। गर्मी दूर करता, दिल को शक्ति देने वाला, पेशाब साफ लाता और दर्द दूर करता है। इसके पत्रों पर लेटने से उष्ण प्रकृति वालों के हृदय और यकृत की उष्णता और पित्त और रक्तविकार मिट जाता है। ताजा पत्रों का रस पीने से रक्तातिसार बन्द हो जाते हैं। इसका रस कान में टपकाने से कान के दर्द को मिटाता है। पीलिया

३०४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

यकृत और प्लीहा की शोथ को दूर करता है। ताजा फूल सूँघने से दिमाग ताजा होता और गर्मी का सिरदर्द मिट जाता है। अर्क पागलपन, गर्मी, तपे-दिक और बुखारों को दूर करता है।

आधुनिक मत—इसमें भी बेदमुश्क की तरह Salicin होती है।

SALVDORACEAE FAMILY

पील्वादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, अखण्ड, चर्म सदृश

पुष्प—छोटे, श्वेत या पीत, पुष्प बाह्यकोष के दल ३-५ पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल-४, पुंकेसर-४, स्त्रीकेसर-१

फल—मांसल

२६२. पीलु

आयुर्वेदीय पर्याय—पीलु, गुड़फल, सत्सी

अंग्रेजी Tooth Brush Tree-

लैटिन—Salvadora persica.

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का ८-१० फुट ऊँचा होता है। यह बहुत कमजोर होता है और इसकी शाखाएँ झुकी हुई होती हैं। इसमें अण्डाकृति, मांसल पत्र लगते हैं। हरे-पीले रंग के फल शाखाओं के अग्रभाग में लगे रहते हैं। गर्मियों में काली मिर्च सदृश छोटे मांसल फल लगते हैं जो पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं और इनमें एक बीज निकलता है। यह भारत लंका, ईरान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, बीज, पत्र, मूलत्वक्

मात्रा—फल स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ तोला, बीज चूर्ण १-३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त, मधुर रस, लघु स्निग्ध, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक है। कफ वातशामक है, यह मलभेदक, गुल्म नाशक होता है।

आधुनिक मत—मूलत्वक में राल, रंजक द्रव्य होते हैं। इनके अतिरिक्त साल्वोडोरिफ (Salvadorine) और ट्राइमेथिल एमिन (Tri-Methylamine)

चन्दनादि वर्ग

३०५

होते हैं, यह रक्तशोधक द्रव्य है, मूत्रल है, चर्म रोगों में, मूत्रकृच्छ में, दुर्बलता में, कास, श्वास में लाभ करता है।

आमवात, अर्श, अश्विन्द आदि पर इसके पत्तों को गरम कर बांधते हैं। बीजों का तैल भी अम्यंग के लिए प्रयोग किया जाता है।

SANTALACEAE FAMILY

चन्दनादि वर्ग

पत्र—एकान्तर या अभिमुख प्रायः सादे क्वचित् खण्डित

पुष्प—छोटे, बीजकोश-उर्ध्वस्थ तीन कोष्ठ वाला

बीज—चिकने-चमकीले चित्रित लम्बे गोल

विशेष—इस वर्ग के पौधे तोड़ने से प्रायः दूध निकलना है

२६३. सफेद चन्दन

आयुर्वेदिक मत—श्रीखण्ड, मलयज, गन्धसार

यूनानी—सन्दले अब्यज

अंग्रेजी—Sandal wood

लैटिन—Santalum Aldum

विवरण—इसका वृक्ष ३० से ४० फुट ऊँचा और सदैव हरा रहने वाला होता है। वृक्ष की छाल बाहर से घुँघले रंग की कुछ कालापन लिए हुए और भीतर से रक्ताभ होती है। यह जल्दी टूट जाने वाली होती है। उस पर लम्बे चीरे लगे होते हैं। बाहरी लकड़ी सफेद और कम गन्ध की तथा भीतरी गूदा घूसर वर्ण का तेज सुगन्ध वाला होता है। यह सख्त होता है और इसमें से तेल निकाला जाता है। १ से २ इंच लम्बे अण्डाकार नुकीले पत्र होते हैं। वर्षा के बाद इसमें पीलापन लिए हुए बैंगनी रंग के फूल आते हैं। इसके पत्तों और फूलों में गन्ध नहीं होती। गोल सा फल लगता है जो पक जाने पर काले रंग का हो जाता है। यह मैसूर और मालाबार में सबसे ज्यादा होता है।

प्रयोज्य अंग—लकड़ी और तेल

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा, तेल ५ से २० बूँद

आयुर्वेदिक मत—तिक्त और मधुर रस, लघु रूक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक है। यह मेध्य और नींद लाने वाला है। प्यास मिटाता है। आमाशय, आंते और जिगर को ताकत देता है,

कुमि नाशक है और कब्ज करता है। दिल को ताकत देता, खन साफ करता और कफ निवाहता है। यह मूत्रजनन, स्वेदजनन, दाह प्रशमन, कुष्ठघ्न और विषघ्न है। इसका लेप पैत्तिक गिरःशूल, दाह, विसर्प और अन्य त्वचा के रोगों को दूर करता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ और लकड़ी में उड़नशील तैल २ से ५% निकलता है जिसमें Santaloil नाम का तत्व ६०% होता है। तैल जड़ में ज्यादा होता है इसमें टैनिक एसिड भी होता है।

डा० आर. एन. क्षीरी ने लिखा है कि चन्दन की लकड़ी तिक्त, शीत व वेदना शामक एवं संकोचक है। तेज बुखार में रोगी के सारे बदन में दर्द रहने पर इसका लेप किया जाता है। गुलाब जल और कपूर के साथ इसका लेप सिर दर्द, जलन और त्वचा की सूजन को दूर करता है।

इसका तैल पेशाब साफ करता, कफ निकालता और उत्तेजना देता है। यह इलायची और वंशलोचन के साथ गनोरिया, खांसी वृक्ष एवं मूत्राशय की शोथ को दूर करता है।

SAPINDACEAE FAMILY

अरिष्टकादि वर्ग

पत्र—एकान्तर ववचित अभिमुख, एकाकी या संयुक्त

पुष्प—पुष्प बाह्यकोष एवं पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५

पुं केशर—५-१०

फल—मांसल

२६४. रीठा

आयुर्वेदीय पर्याय—अरिष्टक, मंगल्य, रक्तबीज, गर्भपात यूनानी बुन्दुक हिन्दी

अंग्रेजी—Soap Nut

लैटिन—Sapindus Trifoliata

विवरण—इसका वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचा होता है। इसमें नीम के पत्तों के समान एक-एक डठल में ६-६ जोड़े पत्ते लगे रहते हैं। जिसकी पत्तियाँ १ से ६ इंच लम्बी, १ से ४ इंच चौड़ी होती हैं। शरद् ऋतु में सफेद रंग का फूल आता है, बसन्त आने पर गोल २ फल गुच्छों में आते हैं। यह पकने पर धुंधले

मधूकादि वर्ग

३०७

रंग के हो जाते हैं। इनमें तीन धाराएँ होती हैं। बीज रक्ताभ, कृष्ण होते हैं, जिनके अन्दर पीले रंग की मींगी निकलती है।

प्रयोज्य अंग—फल का छिलका

मात्रा—५ से १० रत्ती, वमनार्थ ३-६ माशे, रेचनार्थ ४ से ८ माशा

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त कटु रस, लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक और वामक प्रभाव वाला होता है। यह त्रिदोष नाशक है। यह वामक, रेचक, कृमिघ्न, रक्त शोधक, कफ निःसारक, गर्भाशय संकोचक कुष्ठघ्न और विषघ्न है। सूजन और दर्द में लेप करते हैं। कुष्ठ, कण्डु गंड-माला, साँप और बिच्छु के काटे हुए स्थान पर लेप करते हैं।

आधुनिक मत—इसके फल 11½% Saponin 10% Sugar और कुछ लुग्माब होता है।

डा० मुडीन शरीफ ने लिखा है कि मैंने इसको बहुत प्रयोग किया है और पाया कि यह उत्तम वमनकारक, अर्घावभेदक और श्वास को दूर करने वाला है। अपस्मार में यह कुछ समय के लिए आराम दिखाती है परन्तु उसे दूर नहीं कर सकता। अफीम के विष को दूर करने में भी यह एक उत्तम औषध है।



SAPOTACEAE FAMILY

मधूकादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, सादे, अखंड, चर्म सदृश, उपपत्ररहित।

पुष्प—पत्रकोणोद्भूत, दुग्धवत रस से युक्त

फल—मांसल, विदारी

२६५. मौलसरी

आयुर्वेदीय पर्याय—बकुल, मधुगन्ध, चिरपुष्प, स्थिरपुष्प

लैटिन—Mimusops Elengi.

विवरण—मौलश्री के पेड़ बहुत बड़े होते हैं। इसकी त्वचा मटमेली व कुछ सफेदी लिए होती है। पत्र चिकने और जामुन के पत्रों की तरह होते हैं, पत्रवृत्त कुछ मोटे शिंच लंबे होते हैं। पत्र प्रान्त तरंगीय होते हैं। पुष्प सफेद

३०८

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

व इषीत्पीत अनीदार, चक्रादार छोटे २ होते हैं। यह पेड़ दो जातियों का होता है। स्त्री-जाति व पुरुष-जाति, पुरुष-जाति में फल नहीं आते, इसके पुष्प कुछ बड़े होते हैं। इसके फल भी सिन्दूरी करींदे की तरह होते हैं। पकने पर मधुर, कषाय लगता है। लड़के इसे खाते हैं; फूल में महक सूख जाने पर भी बनी रहती है। जंरी मौलसरी के भी यही रूप रंग हैं। पुष्प बड़ा होता है। फल के भीतर काले रंग के बीज पाए जाते हैं।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, पत्र, पुष्प

मात्रा—त्वक् क्वाथ २-५ तोला, पुष्पचूर्ण १-२ मासे, बीजचूर्ण १-२ मासे

आयुर्वेदिक मत—कटु कषाय रस, गुरु रुक्ष अनुष्ण वीर्य, कटु विपाक है। कफपित्तशामक, विषनाशक, श्वित्रनाशक, कृमिनाशक और दन्त रोग नाशक है। यह सुगन्धित और हृदय पदार्थ है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में कषाय रस, कुछ रबड़, मोम, रंजकद्रव्य स्टार्च और क्षार होते हैं। पुष्पों में एक उड़नशील तैल होता है। बीजों में एक स्थिर तैल होता है जिसका व्यवहार तंजौर में बहुत होता है। फल मज्जा में कर्करा तथा सैपोनिन होता है।

यह प्रदर, हृदय रोग, कृमिरोग, ज्वर में प्रयोग की जाती है। दांतों को मजबूत करती है, पूयदन्त में लाभ करती है।



SAXIFRAGRACEAE FAMILY पाषाणभेदादि वर्ग

पत्र—एकान्तर अथवा अभिमुख

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश के दल ४-८ पुष्प अभ्यन्तर कोश के दल ४-८

पुंकेसर—८-१६

२६६. पथर चूर

आयुर्वेदीय पर्याय—पाषाणभेद, अश्मघ्न

यूनानी—पत्थर फोड़ी

लैटिन—*Saxifraga Ligulata*.

विवरण—यह पहाड़ों और चट्टानों में दरारें करके बाहर निकलने वाला

हरिद्रादि वर्ग

३०६

पीछा है। पत्र गोल, ३ इंच से ५ इंच व्यास के मोटे, कटे हुए किनारों के ऊपर से हरे और निचले भाग में रक्ताभ होते हैं। प्रायः एक साथ ३ से ६ पत्र ही होते हैं। इसमें सफेद, नीले या लाल फूल लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंग की मोटी लगभग १ इंच की होती है। पहाड़ी स्थानों पर ज्यादा पैदा होता है।

प्रयोग्य अंग—जड़, पत्र

मात्रा—१ से ३ माषा

आयुर्वेदिक मत—यह रसु में कषाय तिक्त, गुण में लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, शीतवीर्य और कटु विपाक है। इसका प्रभाव अश्मरी भेदन का है। यह त्रिदोष-नाशक, मूत्रल, हृदय, भेदक है। यह गुल्म, अर्श मूत्रकृच्छ, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहाशूल एवं व्रण का नाश करता है। यह अहिफेन के विष का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में टैनिक एसिड, गैलिक एसिड, मोटाबिब, ग्लुकोज और मिनरल साल्ट होते हैं। यह भूख बढ़ाता, मल का भेदन करता, बल देता, मूत्र संस्थान के अवयवों को शक्ति देता और भेदक है।



SCITAMINACEAE FAMILY

हरिद्रादि वर्ग

पत्र—एकान्तर

पुष्प—पुष्प बाह्यकोश एवं पुष्प आभ्यन्तर कोश के दल २-३

पुं केशर-१, बीजकोश—अधःस्थ त्रिकोष्ठी

२६७ अदरक

आयुर्वेदीय पर्याय—आर्द्र, शृंगवेर, कटुभद्र

यूनानी—जंजबीलतर

अंग्रेजी—Gingerfresh

लैटिन—Zingiber Officinale

विवरण—इसका पीछा ३-४ फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते अग्रभाग में नुकीले होते हैं। इसके बैंगनी रंग के फूल लगते हैं जिसका डंठल २-३ इंच लम्बा होता है। इसमें फल नहीं लगता। इसकी जड़ गांठों वाली होती है उसे अदरक कहा जाता है। यह गर्म और गीली जमीन में अधिक होता है।

शाल, मद्रास, ट्रावनकोर, कोचीन में पैदा होता है।

अद्रक के कन्द का छिलका हटा कर सुखा लेते हैं। वंहे 'सौंठ' कहलाती है सौंठ को नागर, विश्वा आदि भी कहा जाता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द

मात्रा—अद्रक का रस $\frac{1}{2}$ तोले से २ तोला, सौंठ का चूर्ण ५-१० रत्ती

आयुर्वेदिक मत—अद्रक एवं सौंठ कटु रस, उष्ण वीर्य और मज्जुर विपाक होते हैं, गुणों में अद्रक गुरु, रूक्ष और तीक्ष्ण होता है और सौंठ लघु और स्निग्ध होता है। कफवात शामक, रोचन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, तृप्तिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, श्वासहर, अशोघ्न, वृष्य, ज्वरघ्न है। इसका बाह्य प्रयोग शीत प्रशमन, शोथहर एवम् वेदना स्थापन है।

विशेषकर अरुचि, अजीर्ण अफारा, अग्निमन्दता, पीलिया, अर्श, आमवात कास, श्वास और ज्वर का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसमें १ से ५% उड़नशील तैल होता है। दो विशेष तत्व और होते हैं।

डा० क्षीरी ने इसे वायुनाशक औषध बताया है। उनका कहना है कि पेट का अफारा एवं दर्द को दूर करता है। पेचिश को ठीक करता, पाचन ठीक करता और लहसन के रस के साथ खाने से कास, श्वास को दूर करता है।

डा० देसाई का कहना है कि यह आंतों के रोगों के लिए श्रेष्ठ द्रव्य है।

२६६. छोटी इलायची

आयुर्वेदीय नाम—एला, सूक्ष्मा, उपकुचिका, त्रुटि **यूनानी—**हीलबुआ

अंग्रेजी—Lessereardamom **लैटिन—**Elettaria Cardamomum

विवरण—इसका पौधा छोटा और पत्तों से भरा हुआ होता है, इसके पत्र खुशबूदार होते हैं और लम्बाई में १ से २ फुट तथा चौड़ाई में १ से २ इंच होते हैं। इसका पुष्पदण्ड लम्बा होता है जिसमें बहुत सारे फल लगते हैं। इन्हीं फलों का प्रयोग इलायची के नाम से करते हैं। इनके अन्दर तेज गन्ध वाले काले रंग के बहुत से बीज निकलते हैं। इलायची गुजरात, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन, लंका और बर्मा में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—५ से १० रत्ती

हरिद्रादि वर्ग

३११

आयुर्वेदिक ग्रन्थ—कटु एवं मधुर रस, लघु एवं रुक्ष गुण, शीत वीर्य एवं मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोषहर, हृद्य, मूत्रजनन, कफ निःसारक, दाह प्रशमन और बल्य है। यह दीपन, पाचन, रोचन, और अनुलोमन है। छिदि निग्रहण और तृष्णा निग्रहण है। यह कास, श्वास, दाह दूर करता, आघ्मान, उदरशूल, वमन को मिटाता है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में स्थिर तैल १०% उड़नशील तैल ५% पोटाशियम साल्ट ३%, स्टार्च ३%, मैगनीज युक्त भस्म ६-१०% होती है।

डा० आर. एन. क्षौरी ने लिखा है कि इलायची पाचन करती, आघ्मान दूर करती, उत्तेजना देती और रोचक होती है। रेचक, द्रव्य कभी २ मरोड़ या पेट दर्द पैदा कर देना है, उनके साथ इलायची दी जाए तो ऐसा नहीं होता।

कर्नल चौपड़ा ने छोटी इलायची को अग्निवर्धक और मूत्र निःसारक माना है। इसे बिच्छु के दंष्ट्र स्थान पर लगाते हैं।

२६६. इलायची बड़ी

आयुर्वेदीय पर्याय—बृहदेला, स्थूला, बहूला, त्रिपुटा **यूनानीन**—हील कर्ला
अंग्रेजी Greater Cardamom **लैटिन**—Amomum Subulatum

विवरण—पौधा छोटी इलायची की तरह का होता है, इसमें अन्तर इतना रहता है कि पत्र कुछ बड़े और फल भी उसकी अपेक्षा बड़े होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल वर्षा में लगते हैं और शीत में फल पकते हैं। यह पूर्वी हिमालय में विशेषकर नेपाल में और लंका में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल **मात्रा**—५ से १० रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटुतिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य और कटुविपाक है। यह त्रिदोषनाशक है, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृद्योत्तेजक, कफ निःसारक, मूत्रल, वेदना स्थापन कर्म करती है। सिर दर्द, कण्डू और त्वचा के रोगों में इसका लेप करते हैं। यह कास, श्वास और ज्वर को दूर करती है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में एक सुगन्धित तैल पाया जाता है जिसमें साइनिओल की मात्रा होती है।

मद्रास के सर्जर् मेजर पारकर का कहना है कि यकृत की विकृति में, विशेष कर जब कि विद्रधि का सन्देह हो यह द्रव्य लाभ करता है।

२७०. कचूर

आयुर्वेदीय नाम—कचूर, वेदमुख्य, द्राविड

यूनानी—जरन्वाद

अंग्रेजी—Long Zedoarea

लैटिन—Curcuma Zedoria

विवरण—इसका पौधा हल्दी के समान होता है। जो हल्दी के समान किन्तु सफेद रंग की और कपूर जैसी गंध के कन्द वाला होता है। इसके पत्र १ से २ फुट लम्बे और फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। यह हिमालय प्रदेश और दक्षिण भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—कन्द और पत्र

मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण १ से २ माशा

आयुर्वेदीक मत—कटु तिक्त रस, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफ वात शामक रोचन, दीपन, अनुलोमन, कृमिघ्न, आर्तवजनन, मूत्रजनन, वाजीकरण और कुष्ठघ्न है। इसका लेप सन्धिवात, शोथ और चर्म रोगनाशक होता है अरुचि, अशं शोथ, मूत्रघ्न, ज्वर, और कष्टार्तव में प्रयोग होता है।

आधुनिक मत—इसमें एक सुगन्धित तैल, सर्करा और Zedearine नामक क्षर तत्व होता है। आधुनिक वैज्ञानिक मुख्य रूप से कृमिनाशक और क्षुधा वर्धक मानते हैं। कर्नल चौपड़ा का कहना है कि इसकी जड़ शीतल, मूत्रल और सुगन्धित होती है।

२७१. कपूर कचरी

आयुर्वेदीय नाम—शटी, गन्धमूलिका, षडग्रन्था, सुप्रता गन्धारिका

लैटिन—Hedychiumspicatum.

विवरण—इसका वर्षायु क्षुप हल्दी की तरह होता है जिसकी जड़ लम्बी आलु जैसी, सुगन्धित होती है। जड़ के टुकड़े करके, सुखाकर बाजार में बेचते हैं। इसके पत्र १ फुट लम्बे होते हैं और सफेद रंग का फूल आता है। गोलसा फल लगता है, जिसमें बीज निकलते हैं। ये हिमालय प्रदेश, नेपाल, भूटान और कुमाऊँ में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त-कषाय रस, लघु और तीक्ष्ण गुण उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफवात शामक, रोचक, दीपन, शूल प्रशामक और संग्राही है। यह रक्तशोधक, कासहर, स्वासहर, त्वग्दोषहर, ज्वरघ्न और हिकका निग्रहण होता है। इसका लेप करने से जोड़ों की सूजन, पेट का अफारा दूर होता है। इसका मंजन मुखशोधक और दन्त शूल नाशक है। इसका चूर्ण तेल के साथ मिलाकर लगाने से गंजापन मिटता है और उसे सूँघने से शिरोरोग दूर होते हैं।

आधुनिक मत—इसमें स्टार्च, शर्करा एल्ब्युमिन तेल तथा Methy Paracumarin Acetate होते हैं।

कर्नल चौपड़ा ने लिखा है कि यह अग्निवर्धक, उदर को शान्ति देने वाली पौष्टिक और उत्तेजक है। यह सर्पदंश में प्रयोग होती है।

२७२. कुलंजन

आयुर्वेदीय नाम—मलयवचा, सुगन्धा, उग्रगन्धा
यूनानी—खुलंजान
अंग्रेजी—Java Galangal
लैटिन—Alpinia Galanga

विवरण—इसका पौधा ६-७ फुट ऊँचा होता है जिसकी शाखाओं में पत्र लगे रहते हैं। इसके १ से २ फुट तक लम्बे ४ इंच से ६ इंच तक चौड़े तथा ऊपरी तड़ चिकनी और नीचे वाला भाग रोमश होता है। हरे, सफ़ेद रंग के छोटे और टेढ़े फल गर्मियों में निकलते हैं। लाल रंग का गोल नींबू जैसा फल लगता है जिसमें तिकोने हलके, भूरे रंग के चपटे बीज होते हैं। इसकी जड़ आलू जैसी होती है जिसके टुकड़े बाजार में बिकते हैं। सुमात्रा, जावा और बंगाल में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—१ से २ मासे

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु तीक्ष्ण रुक्ष गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। कफवात शामक, मुखशोधक, रोचक, दीपक और अनुलोमक है। नाड़ियों के लिए बलप्रद और उत्तेजक है। स्वासनलिकाओं को फैलाता और स्वर यन्त्र को ताकत देता है। हृदय अवसादक है, मूत्र की मात्रा घटा

३१४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

देता है, बाजीकरण है और त्वचा की ठण्ड को मिटाने वाला है। त्वचा के रोग और भाई में भी इसका चूर्ण लगाया जाता है।

आधुनिक मत—इसकी जड़ में Camcheride Galangin और Aepin पाये जाते हैं। इसके सत का इन्जेक्शन देने से रक्त दबाव कम हो जाता है और श्वासप्रणाली उत्तेजित हो जाती है।

२७३ केला

आयुर्वेदीय पर्याय—कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसार

यूनानी—मौज

अंग्रेजी—Banana

लैटिन—Musasapientum

विवरण—इसका पौधा ४ से १२ फुट ऊँचा और ४ से ६ फुट लम्बे पत्र से भरा होता है। इसमें लाल रंग के फल पत्रों के बीच से निकलते हैं और फल गुच्छों में लगते हैं। यह समस्त भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, फूल और काण्ड

मात्रा—रस १ से २ तोला, क्षार ४ से ८ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—मधुर कषाय रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक होता है। वात, पित्त शामक, मेध्य, रोचक, ग्राही, विष्टम्भी, कफ निःसारक, वृष्य, वृंहण बल्य है। इसका रस मृत्तल है। उन्माद, अपस्मार नाशक है। रक्त पित्त अतिसार में फूल काम में आते हैं। जले हुए पर फूल या फल का लेप करना लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसके पके हुए फल में शक्कर, स्टार्च तथा लोहा, चूना तथा क्लोरिन पाए जाते हैं, इसमें विटामिन 'सी', 'बी' और 'ए' होते हैं। इसके छिलके में भी कई क्षार उपस्थित रहते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी का कहना है कि केले का फल तर्पक, पोषक होता है, केले की जड़ कृमिनाशक है, रक्त पित्त और रक्त, वमन में केले के डंठल का रस पिलाना चाहिए।

एसरसन का कहना है कि अमरीका के केले का शर्वत पुरानी खांसी की एक मात्र दवा है।

२७४. हल्दी

आयुर्वेदीय नाम—हरिद्राकाञ्चनी, निशा, गोरी, कृमिघ्ना यूनानी—जर्दचोब

अंग्रेजी — Turmeric

लैटिन — Curcum Longa

विवरण— इसका पौधा अदरक जैसा होता है जिसमें १ से १॥ फुट लम्बी और चौड़ी पत्तियाँ लगती हैं जिनमें आम-सी गन्ध आती है। ४-६ इंच लम्बे डण्ठल में हल्दी के रंग के १ इंच लम्बे फूल लगते हैं, फूल वर्षा में आते हैं। गाँठदार गोल और लम्बा फल लगता है जिसका भीतरी भाग पीला होता है। यह सारे भारत में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग— जड़ **मात्रा**— रस १ से २ तोला, चूर्ण १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत— तिक्त कटु रस, रुक्ष, लघु गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। त्रिदोषनाशक, वेदना स्थापन, रुचिकारक, अनुलोमक, पित्त-रेचक और कृमिनाशक है, खून बढ़ाता, मूत्र का वर्ण ठीक करके उसकी अधिकता को कम करता है। यह कुष्ठनाशक, दुग्धशोधक और शुक्रशोधक है। प्रमेह, ज्वर, रक्त विकार जलोदर और नाड़ी शूल में लाभ करता। इसका लेप सूजन, दर्द, खारिश और व्रणों को ठीक करता है। इसका घूँस सूँघने से श्वास, हिचकी और बेहोशी दूर होती है। इसका घुँआ बिच्छू के काटे हुए स्थान के दर्द को मिटा देता है। पित्त और उर्दद में खिलाते हैं।

आधुनिक मत— इसमें उड़नशील तैल १% Curcumin नामक सत्व और Turmeric Oil पाया जाता है।

डा० आर. एन. क्षीरी ने लिखा है कि हल्दी ताकत देती है, पीलिया या पुराने कफ के रोग दूर करती है। यकृत और मूत्र संस्थान सम्बन्धी रोगों में लाभ करती है। बिना दर्द की सूजन को मिटाने के लिए सज्जीक्षार के साथ हल्दी का लेप किया जाता है। पिसी हुई हल्दी को तिल के तेल में मिला कर खगाने से चर्म रोग दूर होते हैं। बढ़ते हुए खून पर विशेषकर जो जोँक लगने के कारण बहता हो, हल्दी का चूर्ण लगाने से रुक जाता है।

दुखती आँखों में टपकाने के लिए और उममें कपड़े को तर करके आँखों पर रखने के लिए हल्दी का क्वाथ बनाया जाता है।

डा० देमाई का कहना है कि नजला, ठंड, प्रमेह और प्रदर तथा चर्म रोगों के लिए हल्दी उत्तम द्रव्य है।

SCROPHULARIACEAE FAMILY तिक्तादि वर्ग

२७५. कुटुकी

आयुर्वेदीय पर्याय—कटुका, तिक्त, शतयर्वा, चक्रांगी यूनानी—खरबकेशाह

विवरण—इसका पौधा मूली जैसा होता है। पत्ते २ से ४ इंच लम्बे और किनारों पर दन्तुर होते हैं। सख्त और ऊपर की तरफ उठे हुए डण्ठल में बहुत सारे फूल लगे होते हैं। इसकी जड़ ६ से १० इंच लम्बी और उंगली जितनी मोटी है। बाजार में इसके १ से २ इंच लम्बे भूरे रंग के मुड़े हुए टुकड़े मिलते हैं। कुटुकी हिमालय में, कश्मीर से सिक्किम तक ७ से १४ हजार फुट तक होती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—साधारण मात्रा ५ से १० रत्ती और दस्त लाने के लिए २ से ६ माशा ।

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रस, रुक्ष लघु गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होती है। यह कफ, पित्तहर होती है। थोड़ी मात्रा में रुचिकारक दीपक पित्त-सारक एवं कृमिनाशक है। अधिक मात्रा में दस्तावर है। यह दिल को ताकत देती, खून साफ करती और सूजन मिटाती है। कफ निःसारक, प्रमेह नाशक कुष्ठ नाशक और दुग्धशोषक है। विषम ज्वर और दाह युक्त ज्वरों में लाभ करती है।

आधुनिक मत—इसमें Picrorrhigin नामक तत्व १५% होता है और Cothartic acid $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत होता है। यह दस्त साफ लाती है। इन के अतिरिक्त मोम और कुछ ग्लूकोज होता है। इनमें कोई विपाक पदार्थ नहीं होता।

डा० आर० एन० क्षौरी ने लिखा है कि कुटुकी रसायन, पाचक, और पित्त निःसारक है। यह अजीर्ण, संग्रहणी स्वास, पीलिया आदि रोगों में लाभ करती है। यकृत के लिए लाभदायक है। यह विषम ज्वर और बच्चों के कृमिरोग की उत्तम औषधि है।

SOLANCEAE FAMILY

कण्टकार्यादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, सादे क्वचित विभक्त, उपपत्ररहित

पुष्प—पत्रकोण या शाखाग्र से उद्भूत, पुष्पवाह्यकोश स्थायी ५-१० दलयुक्त, पुष्पाभ्यान्तर कोश के दल ४ से ५, पुंकेसर ५, स्त्रीकेसर प्रायः १, गर्भाशय दो खण्डवाला,

• **फल**—गोल व लम्बा अविदारि

२७६. असगन्ध

आयुर्वेदीय पर्याय—अश्वगन्धा, वारहकर्णी, बलदा, **यूनानी**—मेहेमत वररी
अंग्रेजी—Winter Cherry **लैटिन**—*Withania Somnifera*

विवरण—इसका क्षुप १ से ५ फुट ऊँचा होता है, शाखायें चारों तरफ फैली रहती हैं, पत्ते २ से ४ इंच लम्बे गोलाई लिए और श्वेत रोमश होते हैं। हरे रंग के फूल, चिलम की आकृति के होते हैं और गुच्छों में लगे होते हैं। इसमें फल छोटे, गोल रसभरी की तरह खोल में ढका रहता है। बीज चिकने और चपटे होते हैं। इसकी जड़ अंगुली जितनी मोटी १ से 1½ फुट तक लम्बी होती है। कच्ची जड़ में अश्व (घोड़ा) जैसी गन्ध आती है, इसी लिये इसे अश्वगन्धा कहते हैं। यह भारत में सब जगह पैदा होती है। मालवा में विशेषकर इसकी खेती की जाती है।

प्रयोज्य अंग—जड़

मात्रा—३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मूल—मधुर कषाय और तिक्त रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण विर्य और मधुर विपाक है। कफ वात शामक, नाड़ी दुर्बलता मूर्छा, और अनिन्द्रा में हितकारक, दीपक, अनुलोमक और कृमिनाशक है। दिल को ताकत देती, खून साफ करती और सूजन को मिटाती है। कुष्ठ, श्वास और प्रदर-नाशक है। यह बाजीकरण, रसायन, वृंहण, बल्य और मूत्रल है। इससे सिद्ध तेल की मालिश वातव्याधि नाशक है। इसके पत्ते या जड़ का लेप गलगड़ और कंठमाला में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसमें *Somniferin* नामक तत्व होता है जो नींद लाता है। डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि असगन्ध बल्य, रसायन और

अवसादक है। बच्चों का सूखा रोग मिटाती है। अर्घांग, वात शूल और दूसरी वात व्याधियों में लाभ करती है। प्लेग की गांठों पर इसकी ताजा जड़ का लेप गांठ को पका कर फोड़ कर ठीक कर देता है।

२७७. खुरासानी अजवायन

आयुर्वेदीय पर्याय—पारसोक यवानी

यूनानी—तुलूमबंग

अंग्रेजी—Henbane

लैटिन—Hyoscyamus Reticularus

विवरण—इसका पौधा अजवायन से कुछ बड़ा होता है। तना छोटा और रोमश होता है। श्याम हरितवर्ण के लम्बे, चौड़े, मोटे और किनारे कटे पत्र होने हैं। फूल अनार जैसे आते हैं। तीन प्रकार के रंग पाए गए हैं, सफेद, लाल और काले। बीज अजवायन से कुछ बड़े, वृक्काकार और भूरे या काले रंग के होते हैं। यह भारत में काश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊँ में तथा यूरोप, मिश्र, खुरासान एवं साईबेरिया में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज, पत्र

मात्रा—चूर्ण २ से ५ रत्ती

आयुर्वेदिक भूत—तिक्त-कटु कषाय रस, गुरु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य, कटु विपाक और मादक है। वानकफशामक, रुचिवर्धक, पाचन, कृमिनाशक, शूल प्रशमन, निद्राजनन, घातु शोषक है। इसका लेप शीथ और शूल को मिटाती है। अनिद्रा, प्रलाप और श्वास में लाभ करती है। अतिमात्रा में सेवन करने से भ्रम, उन्माद, सत्यास उत्पन्न करती है।

आधुनिक भूत—बीजों में $\frac{1}{4}$ भाग स्थिर तैल होता है। Hyoscyne और Hyoscyamine नामक क्षारत्व होते हैं।

डा० आर० एन० क्षौरी का कहना है कि यह अवसादक, आक्षेपहर, वेदनानिवारक, निद्राजनक है। यह श्वास उच्छ्वास में सहायक मांस पेशियों में अवसाद उत्पन्न करती और मृत्यु तक हो जाती है।

२७८. कटेली

आयुर्वेदीय नाम—कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री यूनानी—बांदजान बरी

अंग्रेजी—Wild egg plant

लैटिन—Solanum Xanthocarpum

विवरण—इसका कण्टकित गुल्म १-४ फुट ऊँचा, चमकीले, हरे रंग का

होता है। ४-५ इंच लम्बे व २-२ इंच चौड़े डिम्बाकृति इसके पत्र होते हैं। पत्तियों के पृष्ठ पर तीक्ष्ण कांटे होते हैं, इसके पुष्प नील वर्ण के होते हैं। फल गोलाकार अण्डे के समान, कच्ची अवस्था में हस्तिवर्ण और श्वेतरखांकित तथा पकने पर पीतवर्ण हो जाते हैं। ग्रीष्मकाल में पुष्प और फल आते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं, नीलपुष्पा और श्वेतपुष्पा। नीलपुष्पा सामान्यतः मिलती है और इसका वर्णन ऊपर किया गया है। श्वेतपुष्पा कण्टकारी कम मिलती है और उसका प्रयोग अनेक वैद्य लक्ष्मणा के स्थान पर करते हैं। इस का क्षुप भी श्वेताभ होता है। अतः चन्द्रपुष्पा, दुर्लभा, श्वेत लक्ष्मणा आदि नामों से इसका व्यवहार होता है। यह विशेषतः बंगाल, आसाम, पंजाब और दक्षिण भारत में प्राप्त होता है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

आयुर्वेदिक मत—कण्टकारी, दस्तावर, कड़वी, चरपरी, अग्नि को दीपन करने वाली, हल्की रूखी, गरम, पाचन और कास, श्वास, ज्वर, कफ, वायु, पीनस, पसली पीड़ा, कृमि तथा हृदय रोग नष्ट करने में प्रशस्त है। इन दोनों के फल चरपरे, वीर्यरेचक, भेदक, कड़वे, पित्त तथा अग्नि को बढ़ाने वाले, हल्के और वात, कफ, खुजली, खांसी, मेद, कृमि और ज्वर को दूर करने वाले हैं। सफेद मूल की कण्टकारी के भी गुण कटेरी के सदृश हैं, विशेषकर गर्भ-कारक हैं।

आधुनिक मत—इसमें मोम, बसा कुछ अम्ल और सोलेनिन रहता है। यह घर्मकारक, उष्ण, मूत्रकारक व कफ निःसारक है। ज्वर, कफरोग व मूत्र-कृच्छ में व्यवहृत होती है।

२७६. तम्बाकू

आयुर्वेदीय पर्याय—घूम्रपत्रिका

यूनानी—बेहारे भंग

अंग्रेजी—Indian Tobace

लैटिन—Nicotiane Tobacum.

विवरण—तम्बाकू का क्षुप छोटा होता है जो खेतों में उत्पन्न किया जाता है। इसके पत्र बड़े २ और हरे रंग के होते हैं और पौधे का तना मुलायम होता है। वास्तव में तम्बाकू अमेरिका में पैदा होने वाली वनस्पति थी किन्तु अब सारे भारत में भी पैदा की जाती है।

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

प्रयोज्य अंग—पत्र

मात्रा—उलटी कराने को ३-६ मास।

आयुर्वेदिक अत—कटु तिक्त रस, तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होती है। यह मादक है। कृमिनाशक, मृदुरेचक और आघ्मान नाशक है। बाँतों की दुर्गन्ध, चर्मरोग और बिच्छु के विष में लाभदायक है।

विष प्रभाव—यह मनुष्य शरीर में लाभ के स्थान पर हानि करता है। इसको ज्यादा खाने से स्नायुजाल की शक्ति क्षीण हो जाती है। अग्नि मन्द करता और यकृत पर बुरा कर्म करता है। इससे दिल और दिमाग पर बुरा असर पड़ता है। गर्म मिमाज वालों के लिए यह हानि करता है। इसमें 'निकोटिन' नामक विष का नाश करता है।

२६०. घतूरा

आयुर्वेदीय पर्याय—घत्तूर, घुस्तूर, कनक, शिवप्रिय, मातुल, मदन अंग्रेजी—Thornapple

लैटिन—(कृष्ण) *Daturastramonium* (श्वेत) *Datura fastuosa*

विवरण—घतूरे के पौधे प्रायः सर्वत्र पाए जाते हैं। जिनमें श्वेत घतूरा तो शुलभ है। इसके पुष्प बिल्कुल श्वेतवर्ण के होते हैं। इसकी आकृति घंटे की तरह होती है। पुष्प के अग्रभाग में भीतर की तरफ गंधकवर्ण की रेखा और बाहर की तरफ मामूली बैंगनी रंग के चिन्ह होते हैं। फूल एक ही होता है, पत्र पान के आकार के कुछ नोकदार, अनीदार कड़े, बड़े तथा कोमल होते हैं। फल गोल सेव की तरह होते हैं किन्तु ऊपर, छोटे २ कोमल कांटे होते हैं। इसके चार भेद हैं—श्वेत, कृष्ण, नील और पीत। कृष्ण घतूरे का रंग काला गाढ़े रंग का, पत्ते, डंठल तथा पुष्प सब काले होते हैं, एक २ पुष्प में ३ से ७ तक पुष्प एक के भीतर दूसरा, दूसरे के भीतर तीसरा यों ही ७ तक पाए जाते हैं। यही वर्णन पीत और नील घस्तूर का भी है। इनमें फूलों व पत्तों के रंग वृथक् होते हैं, बाकी और आकार-प्रकार सब एक से रहते हैं। फल का आकार बड़ा व लम्बा होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल, पत्र, बीज

मात्रा—मूल २-४ आ० मात्रा—पत्र स्वरस $\frac{1}{4}$ से १ तोला उन्मत्त कुत्ते व शृगाल के वंश पर। अन्यत्र ५ बूँद। बीज दो रस्ती तक।

कण्टकार्यादि वर्ग

३२१

आयुर्वेदिक मत—घतूरा—मदकारक, वर्ण को उत्तम करने वाला, अग्नि तथा वायु को करने वाला, गरम, भारी, कसैला, मधुर, कड़वा, जूँ, लीख नष्ट करने वाला और ज्वर, कोढ़, व्रण, कफ, खुजली दृमि तथा कृमिनाशक है।

आधुनिक मत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि घतूरे की पत्तियों में एक क्षारीय डेटुराइन, म्युसिलेज, श्वेतक, और भस्म १६ प्रतिशत होता है जिसमें २५ प्रतिशत क्षार (पोटाशियम नाइट्रेट) रहता है। इसके बीज, डेटुराइन, राल, म्युसिलेज, प्रोटीड, मैलिक एसिड तथा भस्म ३ प्रतिशत के मिलने से बने हैं।

घतूरा मदकारी व वेदना हरने वाला है। अन्य गुणों में यह 'बैलाडोना' की तरह है बल्कि उससे भी तीक्ष्ण है मोटर किम्बा सेन्सरी नाड़ी तन्तुओं पर इसका प्रभाव न दिखाई देकर सिम्पेथेटिक नाड़ियों पर ही इसका प्रभाव देखा गया है। पूर्णमात्रा में इसका प्रयोग करने पर यह हृदयक्रियावैषम्य कर देता है एवं भयावह प्रलाप भी प्रारम्भ हो जाता है। एड्रोमीन की तरह यह भी आंख की पुतलियों को फैला देने वाला है। यकृतशूल कण्ठध्वंस व कोरिया एवं गद्-गद् रोग में घतूर आक्षेप-निवारक रूप से व्यवहृत होता है। यह निडरत्जिया रजःकृच्छ्र मुखमंडल के रोग या साइट्रिक रोग में हितकर है। कामोन्माद एवं आत्मघातेच्छालक्षणयुक्त सूतिकोन्माद में घस्तूर बहुत लाभदायक है, घस्तूर का घूँघ्रगन श्वासरोग के लिए हितकर है। घतूर बीज उर्दद इत्यादि चर्मरोगों में हितकर हैं। कृमिभक्षित दांत में भी वेदना निवारक रूप से यह व्यवहृत होता है। घतूरे के रस से पकाया हुआ तैल, शिरःपीड़ा कुरण्ड, स्फोटक एवं अन्यान्य चर्मरोगों में हितकर होता है। घतूरे को पत्र स्वरस अफीम और पुनर्नवामूल के साथ पीस कर लेा करने से वातवेदना एवम् हाथ-पैर का शोथ दूर हो जाता है। रक्ताशं, गुदक्षत, किवा, गुह्यदार की अन्यान्य पीड़ाओं में वार २ मलत्याग की प्रवृत्ति होने पर घतूर घटित मलहम को वेदना निवारण के लिए देना चाहिए।

२८१. बेंगन

आयुर्वेदीय पर्याय—वृन्ताक, वार्ताकु, भण्टाकी, भाण्टिका

अंग्रेजी—Bringle

लैटिन—Solanum Melongena

विवरण—इसका पीघा वर्षाय या द्विवर्षाय कटकित होता है यह ३-४ फुट ऊँचा होता है। पत्र में भी कांटे होने हैं। पत्तियां ३-६ इंच लम्बी, अण्डाकार त्रिस्तृत और अनेक भागों में विभक्त होती हैं। पुष्प नीलाभ या बैंगनी रंग के होते हैं। फल ३-६ इंच लम्बे, श्वेत, बैंगनी या रक्ताभ होते हैं। फल का प्रयोग शाकार्य होता है। फल के अनुसार यह कई प्रकार का होता है। फल की आकृति लम्ब-गोल जाति को बैंगन और गोल जाति को भण्टा कहते हैं। वर्णभेद से भी यह श्वेत बैंगनी और रक्ताभ होता है। गोलाकार श्वेत-वर्ण का कोमल भण्टा प्रशस्त माना गया है। यह भारत में सर्वत्र होता है।

प्रयोज्य अंग फल, बीज, मूल, पत्र

मात्रा—बीज चूर्ण ५ से १० रत्ती, मूल चूर्ण ५ से १० रत्ती, पत्र स्वरस ४ से ६ माशे।

आयुर्वेदिक मत—बैंगन मधुर, तीक्ष्ण, गरम, पाक में चरपरा, पित्तकारक नहीं, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, हलका ज्वर, वात तथा कफ को नष्ट करता है। छोटे बैंगन कफ तथा पित्तनाशक और बड़े बैंगन पित्तकारक और भारी हैं। अग्नि में पकाए हुए बैंगन अर्थात् बैंगन का भुर्ता किंचित् पित्तकारक है। और अग्निदीपक, कफ, मेद, तथा आमनाशक है। जो इनमें नमक और तेल डाला हो तो बैंगन भारी और स्निग्ध होता है। और एक प्रकार का श्वेत बैंगन मुरगी के अण्डे के सदृश होता है। यह बैंगन अशरोग में फायदा पहुंचाने वाला होता है और काले बैंगन से गुणों में हीन होता है।

आधुनिक मत—आर्द्रफल में ८८-२६ प्रतिशत आर्द्रता होती है। सूखे फल में ईथर एक्स्ट्रैक्ट ४-२० प्रतिशत, अल्युमिनारड १६-३७ प्रतिशत विलेय कार्बोहाइड्रेट ५५-२३ प्रतिशत, काष्ठ सूत्र १७ प्रतिशत और भस्म ७-२० प्रतिशत होते हैं। हरि पत्तियों में विटामिन 'सी' होता है।

२८२. सकोय

आयुर्वेदीय पर्याय—काकमाची, वायसी, घ्वांक्षमाची **यूनानी**—इनबुसालब
अंग्रेजी—Garden Night Shade **लैटिन**—Solanum Indicum

विवरण—इसके क्षुप १ से ३ फुट ऊँचा होता है। पत्र २ से ३ इंच लम्बे

कण्टकार्यादि वर्ग

३२३

और १ से $1\frac{1}{2}$ इंच चौड़े होते हैं। छोटे २ सफेद रंग के फूल आते हैं। फल छोटे चिकने, गोल होते हैं जो गूच्छों में लगे रहते हैं। कच्चे फल हरे रंग के और पकने पर बैंगनी रंग के होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—पूरा पौधा, मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण १ से ३ माशा
आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त रस, लघु स्निग्ध गुण, चूर्ण १ से ३ माशा और कटु विपाक होती है। यह त्रिदोषघ्न है। दीपन, यकृतोत्तेजक, पित्तसारक और रेचन है। रक्तशोधक, शोथहर श्वासहर, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न और विषघ्न है। प्लीहा, आमवात, अर्श, शोथ, कुष्ठ में विशेष उपयोगी है। यह वृष्य और रसायन भी है।

विष प्रभाव इसका फल अधिक मात्रा में देने से उल्टी, दस्त, प्यास, उदरशूल, भ्रम, प्रलाप, सन्यास हो जाता है।

आधुनिक मत—इसके फल में 'सोलेनिन' नामक तत्व होता है जिसमें शर्करा, सैपोनिन, सोलेनिडिन होता है। इसके पौधे में Pitroglycian होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह रसायन, मूत्रल, शोथहर, कफनाशक है। यह ज्वर नाशक है। गर्म पत्र बांधने से शोथ एवम् शूल मिटती है।

२८३. लाल मिर्च

आयुर्वेदीय नाम—कटुवीरा

यूनानी—फिलफिले ग्रहमर

अंग्रेजी—Red chillies

लैटिन—Capsicum Frutescens.

विवरण—इसका क्षुप छोटा होता है जिसके पत्र लम्बे और आगे के भाग में नुकीले होते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे और पकने पर लाल-पीले हो जाते हैं। इसकी खेती सारे भारत में की जाती है वैसे यह दूसरे देश से आई है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा— $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के निघंटुओं में इसका वर्णन उपलब्ध नहीं होता। आत्रेय संहिता में एक सूत्र दिया है। वहां लिखा है कि "लाल मिर्च" अग्नि वर्धक, कफनाशक, दाहकारक, अजीर्ण, विसूचिकी और व्रणों के लिए हितकारक है। तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभेद व अरुचि नाशक है। यह ऐसे

३२४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

सन्निपात के रोगी को भी बचा देती है जिसकी नाड़ी दुर्बल हो गई हो और बोलने, सुनने और देखने की ताकत न रही हो ।”

STERCULIACEAE FAMILY पिशाचकर्म्यासादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, एकाकी या संयुक्त

पुष्प—पुष्प प्रायः नियताकार पुष्पबाह्यकोश एवं पुष्पान्तरकोश क

दल—५ संयुक्त, पुं केशर ५-२० तक, स्त्रीकेशर २-५ बीज.

कोश उर्ध्वस्थ तथा संयुक्त

फल—विटारी

२८४ मुचकुन्द

आयुर्वेदीय पर्याय—मुचकुन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक

विवरण—इसका वृक्ष बड़ा होता है। छाल लम्बाई में फटी होती है और काण्डसार रक्ताभ होता है। शाखायें खूब घनी होती हैं। पत्र छत्राकार, सूक्ष्म लोमयुक्त, कर्कश, अखरोट के समान होते हैं। उनका ऊपरी भाग हरित तथा निचला भाग श्वेत या ईषत्पीत होता है। पुष्प ४-५ इञ्च लम्बे, रक्तपीताभ और सुगन्धित होते हैं। फल लम्बगोल, कोष्ठवत् होते हैं जिनके परिपक्व होने में लगभग एक वर्ष का समय लगता है। बीज पक्षयुक्त होते हैं। बसन्त ऋतु में पुष्पोद्गम होता है। भारतवर्ष के जांगल प्रदेश, विशेषतः उड़ीसा, कर्नाटक, बर्मा आदि स्थानों में मिलता है।

प्रयोज्य अंग—पुष्प

मात्रा—३ रत्ती से १२ रत्ती तक

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्तरस, रुक्षगुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक है। कफ नाशक, विषनाशक, रक्तपित्त शामक एवम् व्रणरोपक है। यह सिर दर्द, कास, त्वचा के रोग, शोथ और कण्ठ रोगों में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक मत—इसके पुष्प में एक उड़नशील तैल होता है जिसके कारण इसमें सुगन्ध होती है।

STYRACEAE FAMILY

लोध्रादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, सादे-उपपत्ररहित,

पुष्प—गुच्छों में पुष्प बाह्यकोश के दल ४, पुष्पाभ्यन्तर कोश-के ४, ५

फल—मांसल

२८५. लोबान

अंग्रेजी—Ocibanum

लैटिन—Styrose Benzion

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम ऊँचाई का होता है। जिसकी छाल मूलायम और मैले रंग की होती है। पत्र ३ से ५ इंच लम्बे होते हैं और फूल रक्ताभ, श्वेत रंग के और गुच्छों में होते हैं। फल सख्त, रक्त, चपटे-गोल से होते हैं। हर एक फल में एक बीज होता है। इस वृक्ष में से एक निर्यास निकलता है जो बबूल के गोंद की तरह सफेद रंग का मोती जैसा चमकीला होता है। इसके टुकड़े एक-दूसरे से चिपके रहते हैं। यह श्याम और सुमात्रा में पैदा होता है। श्याम का लोबान साफ और अच्छा होता है। सुमात्रा का कोडिया लोबान कहलाता है।

प्रयोज्य अंग—निर्यास (गोंद)

मात्रा—३ से ८ रत्ती, सत लोबान १-रत्ती

गुण-कर्म—आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन नहीं है। इसकी मरहम जल्मों को ठीक करती है। दूसरी दवाईयों के साथ इसे उबटन में मिलाकर त्वचा को स्वच्छ और सुगन्धित रखने के लिए प्रयोग करते हैं। इसे लगाने और खाने के लिए दिया जाता है। यह कफज रोगों में, आदित, अर्घांग और खांसी, जुकाम और बुखार में लाभ करता है। किसी तैल में मिलाकर कान के दर्द में डालते हैं। यह वाजीकरण होता है। इसका सत्व इससे भी अधिक लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसमें मुख्य रूप से तीन चीजें हैं Benzoic Acid १३ से २०% होता है, Cynamic Acid और Vaniecin होते हैं। साथ में उड़नशील तेल भी होता है।

२८६. लोध

आयुर्वेदीय पर्याय—लोध, तिल्ल, साबर, मालव

यूनानी—मुशाम

गंग्रेजी—Lodh Tree

लैटिन—Symlocos Racemosa

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम ऊँचाई का होता है जिसमें लम्बे गोलाकार पत्र लगते हैं। ये हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष है। २ से ४ इञ्च लम्बे डंठल पर पीले सफेद रंग के फल लगते हैं। फल $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा और कड़ा होता है। इस वृक्ष की छाल लाल रंग की होती है। यह उत्तर और पूर्व भारत, मालाबार और बर्मा में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—छाल

मात्रा—चूर्ण में १ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक और कफ पित्त शामक है। यह अतिसार-प्रवाहिका में लाभ करती है। रक्त-पित्त शोथ प्रदर, गर्भस्राव और कास, ज्वर, चर्म रोगनाशक है। इसका लेप करने से बहता हुआ रक्त रुक जाता है। शोथ और व्रण ठीक हो जाते हैं।

आधुनिक मत—इसमें Loturine Colloturine Loturidine और Quinovine नामक क्षार तत्व पाये गये हैं। इसकी राख Sodacarbonate होता है। डा० क्षीरी का मत है कि लोघ कषाय और बल्य है। यह बेल और कुचले के साथ दस्त, पेचिश और प्रदर में लाभ करती है। इसका लेप लगने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं। चार्ल्स इसे रक्तप्रदर को ठीक करने के लिये प्रयोग करने के लिए लगते हैं।

T

THMARISCINAE FAMILY

झाबुकादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, अवृन्त, अखण्ड और छोटे

पुष्प—छोटे और नियमित, पुष्पवाह्यकोश तथा पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४ से ५ या १० तक, पुंकेसर-५, स्त्रीकेसर—१ गर्भाशय एक कोशी, अघःस्थ बीजकोष

फल—विदारी

बीज—अनेक

आगुर्वादि वर्ग

३२७

२८७. भाऊ

आयुर्वेदीय पर्याय—भावुक

यूनानी—तर्फा

अंग्रेजी—Tamarix Gallica

लैटिन—Tamarisk

विवरण—इसका झाड़ीनुमा क्षुप ६-८ फुट का होता है। शाखायें लाल रंग, बदामी रंग की होती हैं। यह बहुत नरम होती है। इसमें लम्बे, पतले पत्र लगते हैं। इसमें श्वेत रक्तमय पुष्प लगते हैं। यह गुच्छों में लगते हैं। इसकी शाखाओं पर एक कीड़े के काट जाने पर एक गांठ-सी बन जाती है। इसे 'माई' (Tamarix Gall) कहते हैं। इसकी शाखाओं में से एक तरह का मीठा पदार्थ भी निकलता है जो 'गजंगवीन' (Tamarix Manna) कहते हैं। यह फारस, अफगानिस्तान, उत्तर भारत और गुजरात में अधिक होता है।

प्रयोज्य अंग—जड़, पत्र, माई, गजंगवीन

मात्रा—रस १ से २ तोला, चूर्ण ३ से ६ माशा, माई २ से ४ माशा

गुणकर्म—इसके पत्रों को पीसकर सूजन पर लगाते हैं। इनको उबाल कर उस पानी से कुल्ले कराते हैं ताकि दाँतों का दर्द दूर हो जाए और मसूड़ों में शक्ति आए। भाऊ की घूनी देने से व्रणशोधन हो जाते हैं। विशेषकर चेचक के व्रणों के लिए काम में आता है। इससे अर्शाकर भी नष्ट हो जाते हैं। इसके पत्रों को बारीक पीसकर व्रणों पर लगाया भी जाता है। इसकी जड़ का जोशंदा जैतुन के तैल में मिलाकर पिलाना कुष्ठ में लाभ करता है। इसकी जड़ और पत्रों के क्वाथ में बिठाने से रक्तप्रदर ठीक होता है। आम्राशय, यकृत और प्लीहा को बल देता है। यह नकसीर में लाभ करता और यह चोट आदि लगने से बहने वाले खून को बन्द करता है। यह सूजन दूर करता है।

आधुनिक मत—कर्नल चौपड़ा का कहना है कि यह मृदु रेचक और कफनिःसारक है।

THYMELAEACEAE FAMILY

अगुर्वादि वर्ग

पुष्प—संयुक्त दल, गर्भाशय द्विकोष्ठी

फल—शुष्क और विदारि

२८८. अग्रर

आयुर्वेदीय पर्याय—प्रवर, लोह, मोगज

यूनानी—ऊँट

अंग्रेजी—Eagle wood

लैटिन—Aquilaria Agallocha

विवरण—इसका हरा-भरा लम्बा वृक्ष होता है। जिसकी छाल कागज जैसी पतली होती है। लकड़ी सफेद मुलायम और गन्ध वाली होती है। पुराने वृक्ष में एक प्रकार के कृमि (Fungus) घुस जाते हैं और एक प्रकार का राल या गोंद एकत्रित कर देते हैं। उन पुराने वृक्षों की लकड़ी काले रंग की भारी और शहद जैसी सुगन्ध वाली होती है। इसे ही दवाओं में प्रयोग करते हैं। इसके पत्र पतले, आगे से नुकीले २, ३ इञ्च लम्बे होते हैं। फूल सफेद गुच्छों में होते हैं जो गर्मियों में लगते हैं। फल १-२ इञ्च लम्बा मखमल जैसा कोमल होता है। यह आसाम, मणिपुर, भूटान, बर्मा सुमात्रा में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—लकड़ी**मात्रा**—५ से १५ रस्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है। कफ वात शामक, नाड़ी उत्तेजक मुख शोधक, दीपक, पाचक और बल्य है। इसका लेप शीत, शोथ और शूल को मिटाता है और दुर्बलता वात-व्याधि और शोथ मूत्र में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसमें एक उड़नशील तैल और राल होती है। डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह उत्तेजक और पित्त निःसारक है। नाड़ियों को बल देता और पाचन करता है। आमवात और वमन में दिया जाता है।

TILIACEAE FAMILY

परूषकादि वर्ग

पत्र—प्रायः एकान्तर, उपपत्रयुक्त सादे,

पुष्प—नियमित, पुष्पवाह्य कोष और पुष्पाभ्यन्तरकोश के दल ४-५, पुंकेसर अनेक तथा असंयुक्त, परागकोश दो थैली वाला, उर्ध्वस्थ

फल—विदारी या अष्ठिल

२८६. फालसा

आयुर्वेदीय पर्याय—पुरुषक, पुरुष, परापर

यूनानी—फालसा

अंग्रेजी—Asitie Greevia

लैटिन—Greevia Asiatica

विवरण—इसका वृक्ष २० से २५ फुट ऊँचा होता है। पत्र गोल, दन्तवत् किनारे की ओर रोमश होते हैं। पीले रंग तथा छोटे २ फूल आते हैं। फल गोल और छोटे बेर जैसे होते हैं। कच्चा फल हरा और पकने पर बैंगनी रंग का होता है। इसकी दो जातियाँ बताई गई हैं। एक ज्यादा रस वाली जिसे यूनानी में 'फालसा शर्वती' कहा है और दूसरे अल्परस वाली जिसे 'फालसा शकरी' कहा जाता है। यह भारत में सब जगह होता है।

प्रयोज्य अंग—फल और छाल

मात्रा—रस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक सत्—मधुर-अम्ल कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक होता है। यह वातपित्त शामक, रोचक, दीपक, ग्राही और तृष्णा और वमननाशक है। हृद्य, वृष्य, वृंहण, बल्य, है। ज्वर दाह, रक्तपित्त नाशक है। कफ निःसारक है। इसकी छाल मूत्रल है। इसकी छाल का लेप गठिया में फायदा करता तथा फल के काढ़े के गरारे गले को ठीक करते हैं।

आधुनिक सत्—इसकी छाल में पिच्छिल द्रव्य और फल में अम्ल व शर्करा रहती है। फल में संकोचक, शीतल और अग्नि वर्धक तत्व रहते हैं।



U

UMBELLIFERAE FAMILY मण्डूकपर्ण्यादि वर्ग

पुष्प—श्वेत व पीत, पुष्प विन्यास छत्राकार, पुष्पबाह्यकोश और पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५, ५

फल—नीरस

२६०. अजवायन

आयुर्वेदीय पर्याय—यवानी, उग्रगन्धा यवानिका, दीप्या यूनानी—नानखाह

३३०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

अंग्रेजी—Kings Cuwin

लैटिन—Cuaumin Coptiwn

विवरण—इसका क्षुप ३ से ४ फुट ऊँचा होता है। और पत्र सोया जैसे होते हैं। इससे सफेद रंग के फूल छत्तों में लगते हैं। इस पर फूल शीत काल में आते हैं। इसके बीज छोटे पीले से रंग के होते हैं। अजवायन सारे भारत में ईरान, मिश्र और अफगानिस्तान में होती है।

प्रयोज्य अंग—बीज **मात्रा**—चूर्ण १ से ३ माशा, सत $\frac{1}{4}$ रत्ती से १

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक होती है। यह कफ वातशामक, रोचन, दीपक, पाचक, अनुलोमक, शूल नाशक एवम् कृमिनाशक है। यह हृदयोत्तेजक एवम् श्वासहर है। मूत्रजनन, शुक्रनाशक, दुग्ध नाशक और गर्भाशयोत्तेजक है। त्वगरोग नाशक, स्वेदजनन रज नाशक और विष नाशक है, अजवायन का लेप या इसके तैल की मालिश करने से दर्द और सूजन दूर होती है। बिच्छु के काटने पर इसका लेप करते हैं। अजवायन पाचन के विकारों, दिल की दुर्बलता, कास, श्वास, कृमिरोग और मूत्राघात में लाभ करती है।

आधुनिक मत—बीजों में एक सुगन्धित तैल होता है जो ठंडक से जम जाता है, इसे 'सत अजवायन' कहते हैं, यह Thymol की तरह का होता है।

अजवायन वायु शामक, आक्षेपनिवारक, कृमिनाशक, विसूचिका नाशक, शूल, अपचन, अघ्मान निवारक है।

२६१ अजमोद

आयुर्वेदीय पर्याय—अजमोदा, खराश्वा, मायूर

यूनानी—करपसे हिन्दी

लैटिन—Carum Roxburghianum

विवरण—इसका क्षुप अजवायन से कुछ छोटा होता है। इसकी ऊँचाई १-२ फुट होती है। इसके पत्र पक्षाकार होते हैं। फूल गुच्छों में लगे होते हैं। बीज गोल और अजवायन के बीज से बड़े होते हैं। इन पर छोटे २ दाग होते हैं। यह सारे भारत में विशेषकर बम्बई प्रदेश में ज्यादा होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज**मात्रा**—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रुक्ष तीक्ष्ण गुण उष्ण वीर्य और

मण्डूकपर्ण्यादि वर्ग

३३१

कटु विपाक होती है। कफ वात शामक, विदाही, दीपन, अनुलोमन, शूलनाशक और कृमिनाशक है। यह हृदयोत्तेजक, गर्भाशयोत्तेजक, मूत्रकारक, कफनाशक और वाजीकरण हैं। इसका लेप दंढ को मिटाता है। यह खास कर हिचकी, वमन, आध्मान, कृमिरोग और शूलनाशक है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में एक उड़नशील तैल होता है। यह बल-दायक, अफारा मिटाने, पेशाव साफ लाने और मासिक स्राव करने वाली है।

२६२. गाजर

आयुर्वेदीय पर्याय—गर्जर, गाजर, नारंगवर्णक

अंग्रेजी—Carrot

लैटिन—Daucascarota.

विवरण—इसका पौधा ३ से ४ फुट ऊँचा होता है। जिसमें ३ से ४ इंच लम्बे पत्राकार रामश पत्र लगते हैं। इसमें सफेद रंग के फूल आते हैं। जिसमें सफेद रंग के छोटे २ सोंफ के सदृश होता है। समस्त भारत में गाजर पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—मूल बीज

मात्रा—स्वरस २ से ४ तोला, बीज चूर्ण ३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर तिक्त रस, लघु-तीक्ष्ण स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाक होता है। यह त्रिदोष शामक है। यह दीपन, संग्राही, वृष्य, बृंहण होती है। रक्तपित्त, अर्श, सग्रहणी में लाभ करती है। इसके बीज गर्भपात कराने वाले होते हैं।

आधुनिक मत—इसके मूल में कैरोटिन, हाइड्रोकारोटीन शर्करा, स्टार्च, पैक्टिन, मैलिक एसिड, लिगनिन, अलब्युमिन, लवण तथा एक उड़नशील तैल पाया जाता है। इसमें लोह भी पर्याप्त मात्रा में होता है।

२६३ जावसीर

लैटिन—Opopanaxchinanuium

विवरण—इसका वृक्ष मध्यम ऊँचाई का होता है। इसके पत्र अंजीर के पत्रों के समान किन्तु उनसे छोटे और खुरदरे होते हैं। पेड़ की शाखाएँ मुलायम और रूँददार होती हैं। इसका फूल पीला और सुगन्धित होता है। इसके बीज

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

काले और खनी सूत्र के बराबर होते हैं। इसमें एक प्रकार का गोंद लगता है। जिसका रंग बाहर से रक्ताभ हरित और अन्दर से श्वेताभरक्त होता है। इसे पानी में मिलाने से पानी दूध जैसा सफेद हो जाता है। जावसीर ईरान, तुर्कीस्तान और यूनान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—गोंद

मात्रा—१ से २ माष्ठा

गुण-कर्म—अदित, अघांग अपस्मार, कम्पन्न और अन्य मानसिक रोगों में लाभ करता है। नजला, जुकाम, आम्राशय की कमजोरी और कब्ज रोगों को मिटाता है। खांसी और श्वास में लाभकारक है। यह जोड़ों को ताकत देता है। अपान वायु निकालता, वायु का दर्द, गर्भाशय की सूजन और पाचन की कमजोरी को दूर करता है, इसका बाहरी प्रयोग करने से सूजन मिटता है। लिंग पर व्रण होने से इसका चूर्ण या इससे बनाई हुई मरहम लगाना अच्छा है, वह गर्भनाशक होता है।

२६४. जीरा

आयुर्वेदीय पर्याय—जीरक, जरण, अजाजी

यूनानी—कम्भून

अंग्रेजी—Cumin Seed

लैटिन—Cuminum Cyminum

विवरण—इसका क्षुप सोंप जैसा १-३ फुट ऊँचा होता है। पत्ते पक्षार और छोटे होते हैं। फूल सफेद रंग के होते हैं। फल लम्बे, सफेद मैले रंग के होते हैं। यह सारे भारत में पैदा होता है। विशेषकर पंजाब, राजस्थान में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—३ से ६ माष्ठा

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु रूक्ष गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक होता है। यह कफवातशामक है। यह रोचक, दीपक, पाचक, अनुलोमक, शूल नाशक, आही और कृमिनाशक है। रक्तशोधक, मूत्रल, वृष्य और स्तन्यजनन है। त्वचा के रोग मिटाता, ज्वर मिटाता और बल देता है। इसका लेप शोथ, शूल कण्डू अर्श में लाभ करता है। प्रसूतावस्था में बहुत लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसमें Thymeve, Carvone होता है।

कर्नल चौपड़ा का कहना है कि यह अग्निवर्धक, पेट के अफारे को मिटाने वाला, शान्तिदायक और सर्पविष में हितकारक है।

मण्डूकपर्ण्यादि वर्ग

३३३

डा० क्षीरी का कहना है कि यह स्वरभंग में हितकारक है ।

२६५. जीरा काला

प्रायुर्वेदीय पर्याय—कृष्णजीरक, सुगन्धी, उद्गारशोधन, यूनानी—कम्पूनग्रवस्द
अंग्रेजी—Black Cumin लैटिन—Carum Carvi

विवरण—इसका पौधा २-३ फुट ऊँचा होता है । पत्ते कटे हुए, लम्बे और सूत्रवत होते हैं । इसमें फूल छत्राकार लगते हैं । इसके बीज काले, सफेद जीरे से छोटे और गन्ध वाले होते हैं । यह काश्मीर, गढ़वाल, सीमाप्रान्त, अफगानिस्तान और ईरान में होता है ।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघुरूक्ष गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है । यह कफवातशामक, रोचक, दीपक, पाचक, संग्राहक और वातानुलोमक है । यह हृद्य, और शोथहर है, प्रसूतावस्था में शोधन, स्तन्यजनन और दीपन कर्म के लिए इसे प्रयोग करते हैं । यह पुराने बुखार में प्रयोग होता है ।

आधुनिक मत—इसके बीजों में एक सुगन्धित तैल होता है । डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि काला जीरा कीड़े मारता, पेशाब साफ लाता, दूध बढ़ाता, मासिक स्राव ठीक करता और वायु का नाश करता है । विषम ज्वर संग्रहणी, अग्नि मान्द्य, अजीर्ण तथा अतिसार में चित्रक के साथ देना चाहिए । इसका लेप करने से हाथ-पांवों की सूजन मिट जाती है ।

२६६. धनिया

प्रायुर्वेदीय पर्याय—धान्यक, धान्य, छत्रा, कुन्टी यूनानी—कश्नीज
अंग्रेजी—Coriander लैटिन—Coriandrum Sativum

विवरण—इसका पौधा छोटा सा होता है जिसमें बहुत सी शाखाएँ होती हैं । ऊपर की पत्तियाँ लम्बी और नीचे की गोल होती हैं । इसके फूल सफेद, बैंगनी रंग के होते हैं । इसके फल गोल होते हैं जिनके भीतर दो कोष्ठ होते हैं । यह सारे भारत में होता है ।

प्रयोज्य अंग—फल और पञ्चांग

मात्रा—फल चूर्ण ३ से ६ माशा, रस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—कषाय तिक्त, मधुर कटु रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य और मधुर विपाक होता है। त्रिदोष नाशक हृदय एवं मस्तिष्क को बल-दायक, रोचक, दीपक, पाचक, संग्राहक, कृमिनाशक और तृष्णा नाशक है। यह मूत्रजनन और ज्वरनाशक है। हरी पत्तियाँ रक्त, पित्त और दाह को मिटाती है। घनिए का लेप शोथ और शूल नाशक कहा गया।

आधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल १ प्रतिशत और स्थिर तैल १३% जो Coriander oil कहलाता है। इसमें कोरिएण्ड्रोल, जिरेनिओल और बेबोनिओल नामक तत्व होते हैं।

डा० क्षौरी ने लिखा है कि घनिया सुगन्धित, वायुनाशक व पाचक है। इसके पत्तों का जों के साथ मिलाकर लेप करने से सूजन मिट जाती है। इस का तैल उदर पीड़ा, अर्दित, आमवात के दर्दों को मिटाता है।

२६७. मण्डूकपर्णी

आयुर्वेदीय पर्याय—मण्डूकपर्णी, माण्डूकी

लैटिन—Hydrocotyle Asiatica

विवरण—इसकी प्रतानिनी और वर्षायु लता होती है जो कभी २ दो तीन वर्षों तक भी रहती है। इसके तने में गाँठें होती हैं। प्रत्येक गाँठ में से मूल, पत्र, पुष्प तथा फल निकलते हैं। पत्र एकान्तर वृक्षकाकार एवं किंचित् सुगन्धित होते हैं। पुष्प नीलाभ श्वेत अथवा रक्तवर्ण के होते हैं। फल बहुत छोटे होते हैं। और २ से ६ तक एक साथ रहते हैं। इसकी जड़ सूत्रवत् होती है। भारत एवं लंका में उत्पन्न होती है।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, मूल चूर्ण ३ से १२ रत्ती, पञ्चांग चूर्ण २ से ४ माशा

आयुर्वेदिक मत—तिक्त रसप्रधान है तथा कषाय एवम् मधुर रस अनुरस है। लघु-सर गुण, शीत वीर्य मधुर विपाक एवम् मेघ्य प्रभाव होता है। यह त्रिदोष शामक है। आयुर्वर्धक, रसायन, स्वर के लिए हितकारी एवं स्मरण शक्ति बढ़ाती है। यह कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रुधिरदिकार, कास, शोथ, ज्वर का नाश करती है, यह विष नाशक है।

मण्डूकपर्ण्यादि वर्ग

३३५

आधुनिक मत—इसमें 'ब्राह्मीन' नामक क्षार तत्व होता है। इसकी पत्तियों में ७८% जल तथा कुछ उड़नशील तैल होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि मण्डूकपर्णी रसायन, बल्य मूत्रकारक होती है। मूत्रेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय पर इसकी विशेष क्रिया लक्षित होती है। मुलहठी के साथ इसका सेवन कराने से ज्वर व रक्तातिसार में लाभ होता है। इसकी जड़ फिरंगज क्षत अथवा कण्डू में, गलगण्ड, गण्डमाला में लाभ करता है।

२६८. सौंफ

आयुर्वेदीय पत्र्या—शतपुष्पा, मधुरा. कारवी, मिसि, छत्रा यूनानी—बादियान
अंग्रेजी—Fennel **लैटिन**—*Foeniculum Cepillaeacam*

विवरण—इसका क्षुप छोटा सा होता है जिसमें २ से ४ इंच लम्बे पत्ते लगते हैं। फूल पीलापन लिए सफेद होते हैं। फल लम्बे, हरे और रेखान्वित होते हैं। यह सारे भारत में उत्पन्न होती है। इसकी एक जाति जो मिश्र में उत्पन्न होती थी और अब पंजाब में भी उत्पन्न होने लगी है 'अनीसून' कही जाती है, उसे अंग्रेजी में Anisi और लैटिन में *pimpinella Anisum* कहते हैं।

प्रयोज्य अंग—बीज, जड़, बीज तैल

मात्रा—बीज चूर्ण ३ से ६ माशा, तैल ५ से १० बूंद, अर्क २ से ४ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर कटु तिक्त रस, स्निग्ध तीक्ष्ण गुण, किंचित् उष्ण-वीर्य और मधुर विपाक होती है। यह वातकफ नाशक, मेध्य, दृष्टिशक्तिवर्धक, दीपक, पाचक अनुलोमक है। प्यास और वमन मिटाती है। यह हृदय को बल देती, कफ निकालती, मूत्र और मासिक स्राव साफ लाती, पसीना लाती, ज्वर और दाह मिटाती, दूध बढ़ाती और ताकत देती है। इसकी जड़ देस्तावर होती है। विशेषकर अजीर्ण अफारा, पेचिश और अर्श में सौंफ दी जाती है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में ३ से ५ प्रतिशत उड़नशील तैल होता है। *Auctholc* नामक तत्व पाया जाता है।

डा. क्षीरी ने लिखा है कि सोंफ का प्रयोग औरतों को गर्भाविस्था में वमन हिचकी, अपचन, अफारा होने में किया जाता है। यह एमिनोरिया (महावारी का न आना) में लाभ करती है। मेथी के साथ देने से यह दस्त बन्द करती है।

केस और महस्कर ने इसके तेल को 'हुक-वर्म' नाशक कहा है।

२९६. सोया

आयुर्वेदीय पर्याय—मिश्रेपा

अंग्रेजी—Dill

लैटिन—Peucedanum Groveolens

विवरण—इसका वर्षायु क्षुप १-२ फुट ऊँचा होता है। पक्षाकार २-३ इञ्च लम्बे पत्ते लगे रहते हैं। पीले रंग के फूल होते हैं। फल छोटे काले रंग के होते हैं। यह सारे भारत में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—बीज

मात्रा—चूर्ण १ से ३ मांशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त रस, लघु रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य एवं कटु विपाक होता है। यह कफवातशामक है। विशेष कर दीपक, पाचक, एवं योनिशूल नाशक है। अग्निमान्द्य, हृदयरोग, मल बद्धता कृमिरोग, कास में लाभ करता है। शेष गुण सोंफ के समान है।

आधुनिक मत—इसके बीजों में ३-४ प्रतिशत उड़नशील तैल होता है। डा० डिमक ने लिखा है कि यह गर्भवती स्त्रियों को ताकत के लिए दिया जाता है।

३००. हींग

आयुर्वेदीय पर्याय—हिणु, सहस्रवेधि, जतुक, रामठ

यूनानी—हिल्लीत

अंग्रेजी—Aeaeoetida

लैटिन—Ferula Narthex

विवरण—इसका वृक्ष छोटा लगभग ६ से ८ फुट उँचा होता है। पत्र कोमल और रोमश होते हैं। पत्तों के किनारे फटे हुए होते हैं। इसका फल $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा और $\frac{1}{4}$ इञ्च चौड़ा होता है जो 'अञ्जुदान' कहलाता है। इस वृक्ष का दूध जमकर गोंद जैसा हो जाता है जो 'हींग' कहलाता है। यह पारस बल्ख, इसब, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, पेशावर में पैदा होते हैं। सफेद वृक्ष और कृष्ण जाति का वृक्ष दो प्रकार का होता है। सफेद का 'हींग हीरा' कहलाता है और काले का 'हींगड़ा' होता है।

बटादि वर्ग

३३७

बाजार में भिन्न २ स्थान का और भिन्न २ विधि से एकत्रित किया हुआ होने से हींग कई प्रकार का मिलता है। कुछ में बाहरी चीजें मिलादी जाती हैं, इसलिए पहिचान करके लेना चाहिए। प्रमुख रूप से जो हींग सारा ही पानी में घुल जाए और पानी को दूधिया कर देवे। तथा जलाने पर पूरा का पूरा जल जाए वह असली होता है।

प्रयोज्य अंग—दूध का गोंद (निर्यास)

मात्रा—१ से ४ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—कटु रस, लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर गुण, उष्णवीर्य और कटु विपाक है। यह कफवात शामक है। यह उत्तेजना देता, दर्द मिटाता और आक्षेप दूर करता है। यह दीपक, पाचक, अनुलोमक, शूल प्रशमन और कृमिनाशक है। यह हृदय को बल देता है। कफ निकालता, मूत्र साफ लाता, मासिकस्राव साफ लाता और वाजीकरण होता है। यह बल और ज्वर का नाश करता है। पक्षाघात, अर्धित आक्षेपक, अपतन्त्रक, आघ्मान, उदरशूल हृदय शूल एवं वस्ति शूल, रजः कष्ट में लाभ करता है। इसका लेप पेट के अफारे को मिटाता है और ध्वजभंग में लाभ करता है।

अधुनिक मत—इसमें उड़नशील तैल ६-७% तक होता है जिसमें रसौन तैल Allyl Persulphide होता है। इसके साथ Ferulic acid, Acetic acid, Malic acid, Formic acid, Valerianic acid होते हैं। डा० क्षीरी ने लिखा है कि हींग अत्यन्त वीर्यवान्, यकृत, फुफुम, नाड़ी और रक्तसंस्थान को बल देने वाला है। यह आक्षेप निवारक, मृदुरेचक, मूत्रल, रजःप्रवर्तक और कृमिनाशक है।

मेजर बसु और कीर्तिकार ने इसे हिस्टिरिया, दमा, हृषिग कफ, हृदय-शूल, कालिक शूल नाशक बताया है।



URTICACEAE FAMILY

बटादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, उपपत्र युक्त

पुष्प—छोटे और कर्णिका भीतर एकत्र, बीजकोश एक कोष्ठी

३०१. अञ्जीर

आयुर्वेदीय पर्याय—फलु, राजोदुबर

अंग्रेजी Fig

लैटिन—Ficus Carica

विवरण - इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का फैला हुआ होता है। इसके पत्र बड़ के पत्रों जितने किन्तु रुक्ष होते हैं। फल गूलर के समान होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं। तुर्की, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, पंजाब, काश्मीर, बम्बई और मद्रास में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा—२ से ३ दाने

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीतवीर्य मधुर विपाक होता है। वातपित्तशामक है। यह वृंहण, विष्टम्भी और तर्पण कर्म करता है।

आधुनिक मत—इसके फल में ६२% द्राक्षा शर्करा होती है, निर्यास वसा और लवण पाए जाते हैं। अलब्युमिन होता है एवं लवण होते हैं।

यूनानी चिकित्सक इसे ज्वर विष, शोथ, अश्मरी, अर्दित, तृष्ण, प्लीहोदर व वक्षगत रोगों में प्रयोग किया जाता है। इसे पौष्टिक पदार्थ माना जाता है। प्रदर में इससे लाभ होता है, ऐसा भी कहा जाता है।

३०२. कटहल

आयुर्वेदीय पर्याय—पनस, कण्टकी फल, अति बृहत् फल, आमाशय फल

अंग्रेजी - Indian Jack Fruit

लैटिन - Artocarpus Integrifolia

विवरण - इसका वृक्ष ५० से ६० फुट ऊँचा होता है। इसके पत्र लिसोड़े से सदृश किन्तु चमड़े की तरह स्थूल व कर्कश होते हैं, इनमें तीन सिराएँ होती हैं। इनमें लम्बे, गोल, मोठे, फल लगते हैं जो ऊपर से हरे रंग के होते हैं और कोमल काँटी से पूर्ण होता है। यह फल बहुत भारी एवम् बृहत्कार भी हो सकते हैं। यह वृक्ष के शाखाओं, डालियों एवम् जड़ तक में भी लग जाते हैं। भारत में सर्वत्र पाया जाता है, विशेष कर दक्षिण भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, पत्र, मूल, बीज

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर कषाय रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर

वटादि वर्ग

३३६

विपाक होता है। वात पित्त शामक है। तर्पण, वृंहण, स्वादिष्ट, मांस वर्धक, कफ वर्धक, पुष्टिकारक, वीर्य वर्धक होता है। यह रक्त पित्त क्षत् और व्रण नाशक होता है। कच्चा फल ग्राही, वातकारक, कषला, भारी, दाहकारक, बलदायक, कफ तथा मूत्र को बढ़ाने वाला है। कटहल के बीज वीर्य वर्धक, मधुर, भारी, मलबद्ध करने वाले, मूत्रल होते हैं। कटहल की मज्जा बल वर्धक, त्रिदोष शामक होती है। गूलमी व उदर रोगों को कटहल हानि करता है।

आधुनिक मत—पके फल में ६६.२० प्रतिशत आर्द्रता, ईथर एकस्ट्रेक्ट, अलव्युमिनायड आदि होते हैं बीजों में स्टार्च और एक तैल होता है।

३०३. गूलर

आयुर्वेदीय पर्याय—उदुम्बर, जन्तुफल, यक्षांग, हेमदुग्धक

अंग्रेजी—Country Fig

लैटिन—Ficus Glomerata

विवरण—इसके वृक्ष बृहदाकार होते हैं जिसका काण्ड मोटा, त्वचाश्वेत हरित वर्ण की होती है और उसे काटने पर दुग्ध निकलता है। इसमें छोटे कोमल पत्र होते हैं। गोल से फल लगते हैं, कच्चे फल हरे रंग के और पक्व फल लाल रंग के होते हैं। इनके अन्दर उड़ने वाले कीड़े निकलते हैं जिनकी पूँछ लम्बी होती है। यह समस्त भारत में पैदा होता है।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, फल, क्षीर

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा, ववाथ ५-१० तोला, क्षीर १०-२० बूँद

आयुर्वेदिक मत—कषाय, मधुर रस, गुरु, शीत वीर्य, कटु विपाक होता है। वर्ण को उत्तम करने वाला, व्रण शोधक, एवम् व्रणरोपक होता है। पित्त कफ को शमन करता है और रक्तज विकारों को शान्त करता है। मूर्च्छा, दाह, तृष्णा का नाश करता और कृमि उत्पन्न करता है यह गर्भ का पोषण करता है।

आधुनिक मत—इसमें टैनिन, मोम, काड़चूक (रबड़) तथा भस्म होती है। भस्म में सिलिका और फॉस्फरिक एसिड होते हैं।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि गूलर, कषाय, वायुनाशक एवम्

३४०

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

पाचक है। यह रक्तप्रदर, रक्त वमनादि में हितकारक है। इसके मूल का रस चीनी, काला जीरा मिलाकर सुजाक में दिया जाता है। इसका दूध रसायक है, बलदायक है सन्धिगत वातजन्य, शोथ, कर्ण मूलादि में इसके दूध को रुई के अन्दर रखकर चिपका देते हैं।

३०४. पिलखन

आयुर्वेदीय नाम—प्लक्ष, पर्कटी

लैटिन—Ficus Licor

विवरण—यह भी एक क्षीरी वृक्ष है जिसकी छाल हरिताभ घूसर होती है। पत्र गूलर के सदृश किन्तु उससे कुछ छोटे फल लगते हैं। श्वेत वर्ण के गोलाकार छोटे २ फल लगते हैं। समस्त भारत में उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अंग—त्वक्

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, लघु रुक्ष गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक है।

३०५. पीपल

आयुर्वेदीय पर्याय—अश्वत्थ, पिप्पल, चलपत्र, बोधिद्रु

अंग्रेजी—Sacred Fig

लैटिन—Ficuse Religiosa

विवरण—यह एक प्रसिद्ध वृक्ष है जिसके पत्र पतले, चिकने, हृदयाकृति और अग्रभाग पर नौकीले होते हैं। इसमें गोलाकार, छोटे फल लगते हैं जो कच्चे में हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं। हिन्दु लोग इसे धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्व देते हैं। यह सर्वत्र पाया जाता है।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला, क्वाथ ५ से १० तोला, चूर्ण १-३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कषाय रस, गुरु रुक्ष गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक होता है। यह कफ पित्त शामक है। यह देर में पाचन को प्राप्त होता है। व्रण रोपक एवम् रक्त क्विचार नाशक है योनि शोधक एवम् वर्ण कारक हाता है। वात रक्त एवम् दाह में लाभ करता है।

आधुनिक मत—इसकी छाल में टैनिन, रबड़ और मोम होता है।

डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि बच्चों के ओष्ठ, जिह्वा, तालु,

वटादि वर्ग

३४१

श्वेत मुखपाक व साधारण मुख के क्षत में छाल के चूर्ण को मधु में मिलाकर लेप करते हैं। इसके फल के बीजों का चूर्ण श्वास रोग में लाभ करता है। अश्वत्थ क्वाथ के साथ पकाया तैल प्रदर तथा आम्रातिसार, रक्तातिसार में अनुवासन के काम आता है। इसके क्वाथ से क्षत आदि को धोया जाता है।

३०६. बड़

आयुर्वेदीय पर्याय—वट, रक्तफल, न्यग्रोध, शुङ्गी, क्षीरी, बहुपाद

अंग्रेजी—Banyan Tree

लैटिन—Ficus Bengalensis

● विवरण—इसका बड़ा वृक्ष होता है और शाखाएँ चारों तरफ फैली रहती हैं। इसकी छाल श्वेत, घूसर तथा मोटी होती है। इसके पत्र मोटे, गोलाकार अण्डाकार होते हैं। फल गोल होते हैं, पकने पर लाल रंग के होते हैं। यह समस्त भारत में होता है।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, क्षीर, पत्र, जटा, फल

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला, चूर्ण ३ से ६ माशा

आयुर्वेदिक मूल—कषाय रस, गुरू, रुक्ष गुण, शीत वीर्य कटु विपाक होती है। यह कफ पित्त शामक है। व्रण रोपक, वर्णकारक, विसर्प नाशक, दाह नाशक, योनिदोष नाशक है। तृष्णा, मूर्च्छा, छर्दि, रक्तपित्त नाशक है। यह गर्भदायक होता है। इसके अंकुरों को पीसकर लेप करने से व्यंग का नाश होता है।

आधुनिक मूल—छाल और शुंग में १० प्रतिशत टैनिन होती है, मोम और कांडचुक (रबड़) होता है। फल में तैल, अलब्युमिनाइड, कार्बोहाइड्रेट होता है।

डा० क्षीरी ने लिखा है कि यह वल्य है। सोमरोग, आम रक्तातिसार, रक्तार्श, सुजाक, शुक्रक्षीणता में लाभ करता है, हाथ, पैरों के फटने से इसके दूध का प्रलेप करते हैं। दन्तशूल में लाभ करता है।

३०७. बड़हर

आयुर्वेदीय पर्याय—लकुच, ग्रन्थि फल, पीत नाश

अंग्रेजी—Monkey Fruit

लैटिन—Artocarpus Lakoocha

विवरण—इसका वृक्ष २५ से ३० फुट ऊँचा होता है जिसकी छाल खुरदरी और सख्त होती है। पत्र अण्डाकृति और रूक्ष होते हैं। इसमें गोल, गाँठदार होते हैं, कच्चा फल हरा और पकने पर पीले रंग के होते हैं। फल सफेद रंग के अनेक लम्बे बीज होते हैं। यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल, त्वक्

मात्रा—त्वक् क्वाथ ५ से १० तोला

आयुर्वेदिक मत—कच्चा फल स्निग्ध, गुरु, ग्राही, मधुर, अम्ल तथा उष्ण होता है। तीनों दोष तथा रुधिर को दुष्ट करने वाला, वीर्य तथा अग्नि को नष्ट करने वाला और नेत्रों को नुकसान देने वाला है। पका फल मधुर, अम्ल, वात तथा पित्तनाशक, कफ तथा अग्नि करने वाला, रुचि कारक वीर्यवर्धक और विष्टम्भकारक है।

३०८ शहतूत

आयुर्वेदीय पर्याय—तूद, तूत, ऋमुक, मधु, पिप्पली

अंग्रेजी—White Mulberry

लैटिन—*Morus Indica*

विवरण—इसका मध्यम प्रमाण का वृक्ष होता है। काण्डत्वक् रक्ताभ या पीताभ घूसर होती है। इसके पत्र २-४ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, दन्तुकार होते हैं तथा मूल भाग में तीन सिराएँ स्पष्ट होती हैं। पत्रवृन्त १-२ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प एकलिंगी, सूक्ष्म, श्वेत वर्ण होते हैं। फल लम्बा या लम्बगोल होता है। शीतऋतु में पुष्प तथा वसन्त में फल लगते हैं। यह समस्त भारत में होता है। हिमालय की तराई में यह जगली होता है।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, फल

मात्रा—त्वक् क्वाथ ५ से १० तोला, फल स्वरस २ से ५ तोला

आयुर्वेदिक मत—पक्का शहतूत भारी, स्वादिष्ट, शीत, पित्त तथा वातनाशक है। कच्चा शहतूत भारी, दस्तावर, खट्टा, गर्म व रक्तपित्त करने वाला है।

आधुनिक मत—फल में शर्करा, पेक्टिन, साइट्रेट, मैलेट आदि होते हैं।



VALERIANACEAE FAMILY

मांस्यादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, उपपत्ररहित

पुष्प—गुच्छों में, शाखाग्रोद्भूत

३०६. जटामांसी

आयुर्वेदीय पर्याय—जटामांसी, भूत जटा, तपस्विनी, सुलोमसा, नलदा

अंग्रेजी—Jatamansi

लैटिन—Nordostachys Jatamansi

विवरण—इसका क्षुप १ से २ हाथ ऊँचा, बहुवर्षायु होता है। इसका मूल रोमश और सुगन्धित होता है। पत्र पतले, लम्बे लगभग १ इञ्च चौड़े और ६-७ इञ्च लम्बे होते हैं। इसके पुष्प गुलाबी, गुच्छेदार होते हैं। फल रोमश होते हैं। यह ६ से १७ हजार फीट की ऊँचाई पर काश्मीर, नेपाल आदि के जलप्रायः स्थानों में होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—१ से ३ मासे

आयुर्वेदिक मत—यह तिक्त, कषेली, बुद्धिवर्धक, कांति तथा बलदायक, मधुर, शीतल तथा त्रिदोष रक्तविकार, दाह, विसर्प और कुष्ठ को दूर करती है।

आधुनिक मत—इसमें मुख्य सत्व के रूप में एक उड़नशील तैल १% होता है। यह तैल हरिताभ, पीतवर्ण का, जल से हल्का, हवा में जमने वाला कर्पूर-गन्धि और कटु तिक्त होता है। इसके अतिरिक्त काला राल सदृश पदार्थ ६% कपूर और गोंद १ प्रतिशत, सुगन्धित अम्ल द्रव्य और जल विलेय पदार्थ १२ प्रतिशत होते हैं।

३१०. तगर

आयुर्वेदीय नाम—तगर, नत, वक्र कुटिल, नहुष

अंग्रेजी—Indian Valerian

लैटिन—Valeriana Wallichii

विवरण इसका बहुवर्षायु क्षुप होता है। कांड छोटा और गुच्छेदार होता है। इसके पत्र चौड़े, लोमश और पत्रवृन्त २ से ३ इञ्च लम्बा होता

है। इसके पुष्प श्वेतवर्ण या गूलाबी पुष्पदण्ड लम्बा लोमविशिष्ट होता है। फल केशयुक्त होता है। फूल जुलाई मास में तथा फल सितम्बर-अक्टूबर में लगते हैं, मूल १ से $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा, ग्रन्थियुक्त, भंगुर, वक्र और उग्रगन्धि होता है। निघंटुओं में 'तगर' और 'पिण्डतगर' दो जातियों का उल्लेख मिलता है। पिण्डतगर कुछ गोलाकार और कम गन्ध वाला माना जाता है। यह फ्रांस, रोम, अफ्रीका, श्याम, अफगानिस्तान, फारस में होता है। इसकी एक जाति भारत में, हिमालय प्रदेश में, काश्मीर से भूटान तक ५ से १० हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—१ से ३ मासे

आयुर्वेदिक मत—तगर गर्म, मधुर, स्निग्ध, हल्का और विष रोग मृगीशूल, नेत्ररोग तथा वात पित्त कफ तीनों दोषों को हरने वाली है।

आधुनिक मत—यह मस्तिष्क के लिए बलप्रद तथा ज्वर में पित्तकारी है। यह मूत्रल, ऋतुसाव का करने वाला है।

VERHENACEAE FAMILY नि.गुण्ड्यादि वर्ग

पत्र—अभिमुख, एकाकी

पुष्प—छोटे, गुच्छों में, पुष्प बाह्यकोश नलिकाकार और स्थायी

पुंकेसर—४-(दो बड़े और दो छोटे)

फल—एकबीजी, बहुबीजी या मांसल

३११. अरनी

आयुर्वेदीय नाम—अग्निमंथ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नार्दयी, वैजयन्तिका।

लैटिन क्लेरोंडेन्ड्रोन फ्लोमोइडिस *Clerodendrou phlomoidas*

विवरण—अरणी सर्वज्ञात वृक्ष है, सब जगह पैदा होता है। इसके पेड़ काफी ऊँचे होते हैं। पत्ते गोल २ किंचित् नोकीले और अत्यन्त कोमल होते हैं। पुष्प सफेद और गुच्छेदार होते हैं, इनमें बहुत सुगन्ध निकला करती है। बसन्तऋतु में इन पर पुष्प आते हैं। कुछ दिनों के बाद इन पर फल छोटे २

निगुण्ड्यादि वर्ग

३४५

करोड़े की तरह लग जाते हैं, पत्तों से भी एक सुन्दर मोहक गन्ध आती है, डालियां नीचे की तरफ झुकी रहती हैं। इसकी लकड़ी में पीलापन अधिक पाया जाता है, इसकी दो लकड़ियों को रगड़ने से आग निकलती है। अतः इसका नाम अग्निमंथ है यह दश मूल की एक प्रधान औषधि है। गर्मी को बढ़ा देना इसका खास लक्षण है। यदि इसका अंक जीर्ण ज्वर में दिया जाए तो तापक्रम (Temperature) बढ़ जाया करता है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, मूल, त्वक्

मात्रा—५ से १० रत्ती, स्वरस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक भूत—कटु तिक्तः कषाय, मधुर रस, रूक्ष लघु गुण युक्त, उष्ण वीर्य, कटु विपाक। वात कफ शामक, शोथनाशक, पाण्डु नाशक, अग्नि प्रदीपक तथा विषघ्न होता है।

३१२. गम्भारी

आयुर्वेदिक पर्याय—गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, काश्मीरी, हीरा, काश्यप, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा, मधुपर्णिका।

लैटिन—जीमीलीइना आर्बोरिया *Gimelina Arborea*

विवरण—गम्भारी बहुशाख, व विशाल छायातरु है। सर्वज्ञ तथा सुलभ नहीं है, इसके कांड दीर्घ, स्थूल, शुभ्रवर्ण के होते। पत्रवृन्त दीर्घ, पत्राग्र, सूक्ष्म, वृत्तसन्निधानस्थ पर पत्र भाग क्रमशः अप्रशस्त होता है। इस स्थान पर दो, तीन या ५ ग्रन्थियां रहती हैं। पत्रोदर मसृण पत्रपृष्ठ श्वेत मानो चूने से प्रलेपित होता है।

पुष्पों के दल मिले हुए पीले वर्ण के, बीच २ ताम्र वर्ण के चिन्हों द्वारा चिह्नित, ह्रस्ववृन्त वाले, छोटे से पुष्प दण्ड में लगे रहते हैं। पुष्पदण्ड ताम्र-वर्ण के सूक्ष्म रोगों द्वारा व्याप्त रहते हैं। पुंकेसर ४ होते हैं उनमें दो छोटे, दो बड़े होते हैं। पुष्पनाल बहुत उठा रहता है। फल वकुलफल के बराबर बड़ा तथा आकृति में अलाबु की तरह कुछ लम्बा होता है। पके हुए फल का वर्ण पीला होता है। स्वाद में अम्ल मधुर रहता है तथा इसकी गुठली बादाम

सी रहती है। राक्स वर्ग का कहना है कि तीन वर्ष तक गम्भारी की लकड़ी जल में रहने पर भी किसी किनारे को प्राप्त नहीं हुई।

प्रयोज्य अंग—त्वक्, पत्र, पुष्प, फल, फल मज्जा,

मात्रा—फलस्वरस १ से २ तोला, फल व त्वक् क्वाथ ५ से १० तोला, पुष्प चूर्ण ४ माशे से १ तोला

आयुर्वेदिक भूत—गम्भारी कसैली, कड़वी, उष्ण वीर्य, मधुर, गुरु, दीपन, पाचन, बुद्धि को हितकारी, भेदक और अम, शोष, आम, शूल बवासीर, विष, दाह तथा ज्वर को नष्ट करने वाली है। गम्भारी फल—वीर्यवर्द्धक, बलदायक भारी केशों को हितकारी, रसायन, पाक में मधुर, शीतल, स्निग्ध, कषैला, खट्टा, कोष्ठ को शुद्ध करने वाला और वात पित्त, तृष्णा, रुधिर विकार क्षय, मूत्र, विवन्ध, दाह रक्तपित्त तथा क्षतक्षय को शमन करने वाला है।

आधुनिक भूत—डा० आर० एन० क्षीरी ने लिखा है कि गम्भारी कई एक पीले वर्ण के चमकीले तेल, राल, एक क्षारीय वस्तु लौहवान के तेजाब के मिश्रण से बना है। इसमें खनिज नहीं होता। फल में व्युट्रिक अम्ल, क्षार, शर्करा, सत्व, राल तथा कुछ टैनिन के सम्मिश्रण पाए जाते हैं।

कार्य तथा प्रयोग—गम्भारी स्निग्ध पाचक, बल्य, श्रमहर व मृदुरेचक होता है। इसका मूल त्वक्, ज्वर, अजीर्ण व गम्भीर शोथ में सेव्य है। मुल-हठी के साथ यह दुग्ध वर्धनार्थ सेवित होता है पत्र स्वरस स्निग्ध होता है तथा सूजाक में सेव्य है। अन्य गुणों में गम्भारी अरणी के तुल्य है। फल ज्वर व दाह में सेव्य है। यह कुछ तिक्त होता है। वृक्षत्वक् ताड़ी के निष्कासनार्थ व्यवहृत होती है। इसके कोष्ठ कृत्रिम अंग व स्टेथसकोप इत्यादि निर्माणार्थ प्रयुक्त होते हैं।

३१३. बरना

आयुर्वेदीय पर्याय—वरुण, वरण, सेतु, तिक्त शाक, कुमारक।

लैटिन—क्रेटिवा रिलिजिओसा (Cratalva Religiosa)

अंग्रेजी—थ्रीलीव्ड कैपर (Three-leaved CaPer)

विवरण—इसका बड़ा वृक्ष २५-३० फुट ऊँचा होता है, छाल घूसर वर्ण

निर्गुण्ड्यादि वर्ग

३४७

और तिक्त होती है तथा उस पर अनुप्रस्थ दिशा में चीरे होते हैं। इसके पत्र लगभग ६ इंच लम्बे, वेलपत्र के सदृश त्रिपत्रक होते हैं। पत्रक अंडाकार, तीक्ष्णाग्र होते हैं तथा उनको मसलने से एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध निकलती है। पुष्प २-३ इंच लम्बे, नीलाभश्वेत, सुगन्धित होते हैं। फल-नींबू के सदृश फल मज्जा पीताभ तथा बीज छोटे होते हैं। फल पकने पर लाल हो जाते हैं, इसमें पुष्प वसन्त में आते हैं। यह भारत में सर्वत्र विशेषतः मध्य भारत, बंगाल, आसाम और मालाबार में होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल त्वक्, पत्र

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोले, स्वरस १ से २ तोला

आयुर्वेदिक मत—मधुर, तिक्त रस, लघु रुक्ष गुण, उष्णवीर्य, कटुविपाक भेदक होता है, वातकफशामक, पित्तवर्धक है। गुल्म, वातरक्त, कृमिनाशक है, रक्त दोषों का नाश करता है, गण्डमाला में लाभ करता है, ये दीपक एवं अनुलोमक होता है।

३१४. भारंगी

आयुर्वेदीय पर्याय—भाङ्गी, ब्राह्मणयष्टिका, खरशाक, पद्मा

लैटिन—क्लेरोडेण्ड्रॉन सिरेटम (Clodendron Serratom)

विवरण—इसका क्षुप प्रायः ५ से ८ फुट ऊँचा और शाखा-रहित होता है, पत्र ७-८ इंच लम्बे और १-२ इंच चौड़े खर और तीक्ष्ण होते हैं। पुष्प शिखर पर गुच्छों में श्वेत वर्ण और सुगन्धित आते हैं। फल गोलाकार, पकने पर नील वर्ण के हो जाते हैं। इसका मूल स्थूल और ग्रन्थीयुक्त होता है। ग्रीष्म ऋतु में पुष्प और वर्षा में फल आते हैं।

यह हिमालय की तराई में विशेषतः नेपाल, कुमाऊँ, बंगाल और बिहार में होता है। दक्षिण भारत में भी मिलता है।

प्रयोज्य अंग—मूल

मात्रा—१ से ३ माशा

आयुर्वेदिक मत—कटु तिक्त, कषाय रस, लघु खर गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, वातकफ शामक, रोचक, पाचक, दीपक, एवम् कृमिनाशक होता है। गुल्म, रक्तज विकार, शोथ, कास श्वास, पीनस, ज्वर, दाह एवम् ब्रण नाशक होता है।

आधुनिक मत—इसके मूल में Starch राल, बसा, तथा एक क्षार तत्व होता है।

VIOLACAE FAMILY

वनपशादि वर्ग

स्वरूप—क्षुप जाति

पत्र—एकान्तर, वृक्काकार

पुष्प—रंगीन, सुगन्धित, अनियत, पुष्पबाह्य कोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५, छोटे-बड़े पुंकेसर-५

३१५. बनपशा

अंग्रेजी—Sweet Violet

लैटिन—*Viola Odorata*

विवरण—मखजनउल अद्विया और 'बोस्ताने उल अद्विया' के लेखकों के मत में इसका क्षुप एक बालिस्त ऊँचा होता है। इसके पत्र गोल, हृदयाकार और रोमश होते हैं। इनकी आकृति ब्राह्मी के पत्रों से मिलती है। इसके फूल नीले बैंगनी रंग के गुच्छों में आते हैं, जो बहुत सुगन्धित होते हैं। कोई २ फूल सफेद भी होते हैं। इसकी जड़ बाँकी, टेढ़ी, गांठदार १ से २ इंच तक लम्बी, फीके पीले रंग की और बारीक तन्तुओं वाली होती है। इसकी एक जड़ से दूसरी जड़ फूट निकलती है और नया क्षुप बनाती है।

बनपसा काश्मीर और हिमालय में ५ से ६ हजार फीट की ऊँचाई पर नीलगिरि पहाड़ और नेपाल में पैदा होता है। यह ईरान से भी मंगाया जाता है। उत्तर भारत में इसकी जगह दो वनस्पतियाँ जिन्हें वायोला साइबेरिया (*Viola cineria*) और वायोला सर्पेंस (*Viola Serpens*) कहा जाता है। प्रयोग की जानी है। परन्तु असली बनपसा वही है जिसमें नीले रंग के फूल आते हों और सुगन्ध हो।

प्रयोज्य अंग—पञ्चांग 'बनपसा' के नाम से फूल 'मूल बनपसा' के नाम और जड़ 'बीखे बनपसा' के नाम से प्रयोग होती है। मात्रा—५ से ७ माशे

गुण-कर्म यह यूनानी चिकित्सा का प्रमुख द्रव्य है। रक्त को शुद्ध कर नवीन रक्त निर्माण करता है। आमाशय यकृत के लिए लाभप्रद है। दस्त

जाता है। पित्त विकारों को ठीक करता है। प्यास, सूजन और पेशाब की रुकावट को दूर करता है।

बनफशा से पैदा होने वाली खुजली, सिरदर्द, आँखों का दर्द, जलन को दूर करता है। इसके ताजे फूल सूँघने से नींद आने लगती है। इसके ताजे फूल विष को दूर करते हैं। इससे जुकाम, खांसी, बुखार दूर होते हैं। बहता, खून रोकता है। बनफशा को ज्यादा उबालने से इसकी शक्ति कम हो जाती है। चेचक, गर्भावस्था और दस्तों में इसे नहीं दिया जाता है। इसके अधिक प्रयोग से हृदय कमजोर हो जाता है। वमन आने लगती है। भूख घट जाती है। ऐसी हालत में गुलाब के फूल और अनीसून देते हैं।

यूनानी नुस्खे—शर्बत बनफशा, खमीरा बनफशा, जौशान्दा, बनफशा का तैल।

प्राचीन आयुर्वेदिक साहित्य में बनफशा का कहीं स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता, कुछ वंश इसे ब्राह्मी मन्डूकपर्णी का भेद बताते हैं।

आधुनिक मत—इसके फूल और जड़ में 'वायोलिन' *Violine* नामक एक वामक तत्व होता है जिसके गुण इमेटिन जैसे होते हैं। इसके अतिरिक्त फूल में उड़ने वाले तैल, एक पीली चीज जिसे *Viola Quercitrin* कहते हैं होती है। और कुछ चीनी तथा *Methyl Salicylic ester* नाम का एक ग्लुकोसाइड होता है।

चौपड़ा आदि वैज्ञानिकों के मत में यह बुखार दूर करने वाला, पसीना लाने वाला है। इसके फूल के पत्रों के विकार और पित्त के विकारों को दूर करते हैं। इसकी पत्ती का शर्बत बच्चों के लिए बहुत लाभ करता है। इसकी जड़ वमन कराने वाली है।

VITACEAE FAMILY

द्राक्षादि वर्ग

पत्र—एकान्तर, एकाकी, कोणयुक्त क्वचित्त संयुक्त

पुष्प—पुष्परहित, छोटे, गुच्छों में पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५, पुंकेसर ४-५

फल—मांसल

३५०

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विज्ञान

३१६. अंगूर

आयुर्वेदीय पर्याय—द्राक्षा, मृद्विका, गोरतनी

अंग्रेजी—Grape

लैटिन—*Vitisvinifera*

विवरण—इसकी आरोही लता होती है। इसका पत्र देखने में करेले जैसा और रोमयुक्त होता है। पत्तियों के मध्य में ४ में ५ जोड़ी सिरायें होती हैं। इसका पुष्प हरित वर्ण, सुगन्धि और गुच्छों में लगते हैं। फल गोस्तनाकार होते हैं जिनमें ३-५ बीज होते हैं। बसन्त में पुष्प और ग्रीष्म में फल आते हैं शीत प्रदेशों में शरद ऋतु तक फल होते हैं। यह उत्तर पश्चिम भारत, पंजाब, काश्मीर तथा बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में होता है।

प्रयोज्य अंग—फल

मात्रा पाचन-शक्ति के अनुसार

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, स्निग्ध, गुरु मृदु गुण, शीतवीर्य, मधुर विपाक होता है वातपित्तशामक है। सारक, चक्षुष्य, बृहणी, वृष्य, पुष्टिकारक होता है। यह सर्तपक और रुचिकारक है। तृष्णा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त क्षत् क्षय, स्वर भेद, मदीत्य, कास, मुखशोष, कामला आदि का शमन करता है।

आधुनिक मत—फलों में द्राक्षशर्करा, गोंद, कषाय द्रव्य, टार्टरि, साइट्रिक, रैसमिक और मैलिक अम्ल, सोडियम और पोटेशियम क्लोराइड, पोटेशियम सल्फेट, टार्टरेट ऑफलाइम, मैग्नीशियम, फिटकरी, लौह, कुछ अल्ब्युमिन और एसिड टार्टरेट ऑफ पोटेशियम रहते हैं। टार्टरिक एसिड फलों में मुख्यतः होता है किन्तु कच्चे फलों में ऑक्जलिक एसिड भी होता है। इसके अतिरिक्त गोंद और शर्करा भी होती है। बीजों में स्थिर तैल काषायाम्ल ५% होता है। ऊपर के छिलके में टैनिन तथा लता और पल्लव में टंकणाम्ल होता है।

३१७. काकजंघा

आयुर्वेदीय पर्याय—काकजंघा, नदीकांता, काकतिक्ता, सुलोमशा, पारावतपदी

लैटिन—*Leeahirta Roxb*

विवरण—काकजंघा के क्षुप इतस्ततः जंगलों तथा ऊँचे टीलों पर अधिक देहे जाते हैं। किन्तु अधिकतर ये आर्द्रभूमि या जलसन्निवृत्त भूमि में अधिक होते हैं। अतएव इसे 'नदीकान्त' कहा गया है। इसकी शाखाएँ अधि-

युक्त, ऐंठी हुई वा कर्कश होती है वा इनकी आकृति ठीक काकजंघा की-सी होती है। अतः 'काकजंघा' कहा गया है। इसके पत्र दीर्घ पत्र प्रांत चीरित होते हैं अतः आचार्यों ने इसका नाम 'पारावत पदी' रखा है। पत्रों में विशेषकर पत्र पृष्ठ में रोवां होने के कारण इसे 'लोमशा' नाम दिया है। पुरुष छोटे छोटे बैंगनी रंग के वा कृष्ण रंग के होते हैं जिनकी आकृति जों की तरह पतली होती है। इसका पुष्पकाल वर्षा वा शीतकाल है। इसके पत्रवफल कृष्ण-वर्ण के चपटे वा षट्कोण होते हैं। सूखने पर छः चिन्हों से युक्त होते हैं।

प्रयोज्य अंग—समग्र क्षुप, विशेषतः मूल

मात्रा—मूलकल्क १ से २ माशे, क्वाथ ५ से १० तोले

आयुर्वेदिक मत—यह शीतल, कड़वी, कसैली और कफपित्त, ज्वर, रुधिर विकार, खुजली, विष तथा कृमि को नष्ट करने वाली है।

३१८. हड़जोड़ा

आयुर्वेदीय पर्याय—अस्थि-शृंखला, अस्थिसंहारी, वज्रवल्ली, ग्रन्थिमान

लैटिन—*ytisguadrangularis*

विवरण—इसकी ग्रन्थि युक्त लम्बी लता होती है। इसका कांड हरा, चतुष्कोण और बीच-बीच में ग्रन्थि युक्त होता है जिससे देखने में शृंखला के सदृश मालूम होता है। पत्र अल्प, हृदयाकृति ३ से ५ भागों में विभक्त तथा दन्तुधार होते हैं। पुष्प छोटे श्वेत वर्ण रोमश होते हैं। फल गोल रक्ताभवर्ण, रस युक्त तथा मटर के बराबर होते हैं। लता की ग्रन्थि जमीन में देने पर लता उग आती है। लंका तथा दक्षिण भारत में इसके काण्ड का शाक बनाकर खाते हैं। यह उष्ण प्रदेशों में होता है।

प्रयोज्य अंग—काण्ड, पत्र

मात्रा—स्वरस १ से २ माशा

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य, मधुर विपाक, वात कफ शामक, सारक, वृष्य, पाचन होता है। अस्थिसंधान करता है अरशा, अजीर्ण, वात रक्त, अस्थि भग्न में प्रयोग किया जाता है।

ZYGOPHYI LACEAE FAMILY गोक्षुरादि वर्ग

पत्र—संयुक्त, संपुखपत्र

पुष्प—उभयलिङ्गी, पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ४-५, असंयुक्त और आच्छादित, पुंकेसर ८-१०, गर्भाशय ४-५ बिच्छेदयुक्त

३१६. गौखरू

आयुर्वेदीय पर्याय—गोक्षुर, क्षुरक, त्रिकटंक यूनानी - खरेखसक

अंग्रेजी—Small Caltrop लैटिन—Tribuls Terrestris (छोटा)

Pedaliium Murex (बड़ा) —यह Pedaliaceae Family का पौधा है।

विवरण—गौखरू के पौधे प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत पंदा होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक छोटा गौखरू और दूसरा बड़ा। छोटे गौखरू जमीन के ऊपर छत्राकार फंले हुए रहते हैं। इसमें पत्ते चने के पत्तों के समान किन्तु कुछ बड़े होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फल में तीन कांटे होते हैं और दो २ फल एक साथ जुड़े रहते हैं। छोटा गौखरू विहार, राजपूताना और मद्रास में पाया जाता है।

बड़े गौखरू के पौधे बरसात में बहुत पंदा होते हैं। यह एक फुट से डेढ़ फुट तक ऊँचे होते हैं। इसकी डालियाँ गोल होती हैं और जमीन पर झुकी हुई रहती हैं। इसके पत्ते ईमली के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं। फूल पीले रंग के और फल ३ अथवा ५ कांटों वाले होते हैं। इसके सुप पिच्छिल होते हैं और इसकी जड़ केसरिया होती है। यह गुजरात, कानियावाड़, राजपूताना, मध्यभारत में खेतों के किनारे और रेतीली जमीन में ज्यादा होते हैं।

प्रयोज्य अंग—ग्राम तौर पर इसके फल प्रयोग में आते हैं, साथ ही साथ इसका सारा पौधा (पञ्चांग) भी काम में लिया जाता है।

मात्रा—फल चूर्ण ३ से ६ माशे, क्वाथ (काढ़ा) ५ से १० तोला

गोक्षुरादि वर्ग

३५३

नोट—क्वाथ में जड़ या पञ्चांग प्रयोग करते हैं ।

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, गुरु एवम् स्निग्ध गुण, शीत वीर्य तथा मधुर विपाक माना गया है । यह वात पित्त शामक, शोथहर, हृद्य, मूत्रल ; अश्मरी-नाशक बलकारक है ।

आधुनिक मत—आधुनिक विज्ञान ने इसके फल में क्षार तत्व, स्थिर तैल, राल, सुगन्धित तैल और नाइट्रेट बताए हैं । इनका कहना है कि नाइट्रेट और सुगन्धित तैल होने से ही यह मूत्रल है ।

३२० धमासा

आयुर्वेदीय पर्याय—दुरालभा, गान्धारी, कच्छुरा

यूनानी—बादावर्द

अंग्रेजी—Khorasanthorn

लैटिन—Fagonia Arabica

विवरण—इसका क्षुप फीके हरे रंग का १ से ३ फुट ऊँचा होता है । इस की डालियां बहुत होती हैं । इसके पत्र १ से 1½ इंच लम्बे सनाय की पत्ती की तरह के होते हैं । प्रत्येक पत्र के पास दो तीखे कांटे होते हैं । फूल हलके लाल रंग के होते हैं तथा शरद ऋतु में निकलते हैं । फल पांच कोष्ठ वाले होते हैं जिस पर लम्बा कांटा होता है । इसकी एक विशेषता यह है कि शाखाओं में दो पत्र, चार कांटे और एक फल गोलाई में दिखाई देते हैं । यह अरब, अफगानिस्तान, खुरासन आदि देशों में तथा भारत के सिंध, पंजाब और राजस्थान में पैदा होता है ।

प्रयोज्य अंग—इसका पञ्चांग प्रयोग होता है

मात्रा—चूर्ण ½ से १ तोला, क्वाथ ४ से ८ तोला

आयुर्वेदिक मत—कषाय, मधुर, तिक्त रस, लघु और रुक्ष गुण, शीत वीर्य और कटु विपाक होता है । कफ पित्त शामक, दाह प्रशमन, व्रण रोपण, रक्त स्तम्भक, मूत्रल, त्वक्, दोषहर, ज्वरघ्न है । अम, मूर्च्छा, रक्तपित्त, श्वास, मूत्रकृच्छ, अतिसार में प्रयोग किया जाता है ।

आयुर्वेदिक योग—दुरालभादि क्वाथ, दुर्गलभादिककषाय ।

आधुनिक मत—क्षोरी ने बताया है कि इसमें विशेष तत्व 'मैन्ना' होता है जिसमें 'मैनाइट' और 'ईख की शक्कर' होती है ।

जागम द्रव्य

दुग्ध वर्ग

आयुर्वेदीय पर्याय—दुग्ध, क्षीर, पय, स्तन्य, बालजीवन

फारसी शीरे

अंग्रेजी—Milk

लैटिन—Lactus

गुण—दुग्ध मधुर, स्निग्ध वात तथा पित्तशामक, दस्तावर, वीर्य को शीघ्र उत्पन्न करने वाला, शीतल, सर्व प्राणियों को अनुकूल, जीवनरूप, पुष्टिकारक, बलदायक, बुद्धि को उत्तम करने वाला, अत्यन्त वाजीकरण, आयु को स्थापन करने वाला, आयुष्य संधानकारक, रसायन और विरेचन, वमन क्रिया तथा बस्ति क्रिया के अनुकूल एवं ओजवर्धक है। जोर्णज्वर, मानसिक रोग, उन्माद शोष, मूर्च्छा, भ्रम, संग्रहणी, दाह तृष्णा, हृदयरोग, शूल, उदावर्त, गुल्म, बस्तिरोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतिसार, योनि रोग, परिश्रम, ग्लानि, और गर्भ-स्राव इतमें हितकारी है ऐसा मुनियों ने कहा है। जो बालक, वृद्ध, क्षतवाला, क्षीण हुआ, भूख से दुर्बल अथवा मैथुन से दुर्बल हो उसके लिये दूध अत्यन्त हितकारी है।

गाय का दूध—यह विशेषकर रस तथा पाक में मधुर, शीतल, दूध को बढ़ाने वाला, वात, पित्त और रक्तविकार को भी नष्ट करता है। दोष, घातु मल तथा नाड़ियों को कुछ आर्द्र करने वाला, भारी तथा सदैव सेवन करने वाले के सर्व प्रकार के रोग तथा वृद्धता को नष्ट करता है।

काली गाय का दूध—वातनाशक और अधिक गुण वाला होता है।

पीली गाय का दूध—पित्त और वात को नाश करने वाला होता है।

सफेद गाय का दूध—भारी होता है।

लाल तथा चितकबरी गाय का दूध—वात को विनाश करने वाला होता है।

सद्यः प्रसूता और बच्चा रहित गाय के दूध के गुण—छोटे बछड़े वाली तथा बिना बच्चे वाली गाय का दूध त्रिदोष को करने वाला होता है।

बाखरी गाय का दूध—तीनों दोषों को नाश करने वाला तथा तृप्तिकारक और बल को भी देने वाला होता है।

दुग्ध वर्ग

३५५

देश विदेश से गाय के दूध के गुण—जंगल प्रदेश अनुपदेश और पर्वतों में चरने वाली गायों का दूध क्रमशः एक से एक अधिक भारी है और जिस वस्तु का गायें आहार करती हैं उसी के अनुसार दूध में स्निग्धता होती है।

आहार के विशेष से गाय के दूध के गुण—थोड़े अन्न खाने वाली गायों का दूध भारी, कफ को करने वाला, बलवर्धक, अत्यन्त वृष्य और नीरोग मनुष्यों के लिए गुणदायी होता है। जो पलाल, करवी घास, विनीला आदि खाती हैं उनका दूध अत्यन्त हितकारी जानना चाहिए।

, भैंस का दूध—यह गाय के दूध की अपेक्षा अधिक मीठा स्निग्ध वीर्य को बढ़ाने वाला, भारी, निद्रा लाने वाला, क्षुधावर्धक और शीतल होता है।

बकरी का दूध—कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही, हल्का और रक्तपित्त, अतिसार, क्षय, खांसी तथा ज्वर को नाश करने वाला है। बकरी छोटे शरीर वाली होती है। चरपरे तथा कड़वे पदार्थों को खाती है। पानी थोड़ा पीती है और घूमने-फिरने का अधिक काम करती है। इस कारण से बकरी का दूध सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला है।

हिरनी का दूध—जंगल में उत्पन्न हुई हिरनी आदि का दूध बकरी के दूध के समान ही गुण वाला होता है।

भेड़ का दूध—खारी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गरम, पथरी को नष्ट करने वाला, हृदय को अप्रिय, तृप्ति दायक, वृष्य, वीर्य, कफ तथा पित्तकारक, वात से उत्पन्न हुई खांसी तथा वातरोग में हितकारी होता है।

घोड़ी का दूध—रूखा, गरम, बलदायक, शोथ तथा वात को नाश करने वाला, खट्टा, खारी, तथा हल्का और स्वादिष्ट है। एक खुर वाले सभी पशुओं के दूध का गुण ऐसा ही होता है।

ऊँटनी का दूध—हल्का, मधुर, खारा, अग्नि, उत्तेजक, दस्तावर और कृमि, कोढ़, कफ, अफारा, सूजन तथा उदर सबन्धी रोगों को दूर करने वाला है।

हस्तिनी का दूध—पुष्टिकारक, मधुर, कसैला, भारी, वृष्य, बल को लाने वाला, शीतल, स्निग्ध, नेत्रों के लिए हितकारी और दृढ़ता को करने वाला होता है।

स्त्री का दूध—हल्का, शीतल, अग्निवर्धक और वातपित्त नेत्रों का शूल तथा अभिघात नाशक है। और नस्य देने में तथा आश्चोतन कार्य में उत्तम होता है।

गाय का धारोष्ण दूध-बल को देने वाला, शीतल, हल्का, अमृत के समान अग्निवर्द्धक और तीनों दोषों को नाश करने वाला है। गाय का दूध दुह लेने पर ठण्डा हो गया हो तो पीने के योग्य नहीं। जो गाय का दूध धारोष्ण हो और भैंस का दूध लेने पर शीतल हो गया हो, वही प्रशंसनीय होता है। भेड़ का दूध गरम और बकरी का दूध औटा कर शीतल हुआ पथ्य है। कच्चा दूध अभिष्यन्दि, भारी, कफ तथा ग्रामबद्धक है। इस कारण गाय के तथा भैंस के दूध को छोड़कर सभी कच्चे दूध अपथ्य जानना चाहिए। स्त्री का दूध तो कच्ची ही हितकारी होता है। परन्तु गरम किया हुआ दूध कफ तथा वात-नाशक और गरम करके शीतल किया हुआ दूध पित्तनाशक होता है। दूध में आधा जल डालकर उसे औटावे जब केवल दूध ही शेष रह जाय तब वह दूध कच्चे में भी हल्का होता है। जल रहित दूध जितना अधिक पकाए उतना ही भारी, स्निग्ध, वृष्य और बलवर्धक होता है।

खोस, खोआ, इत्यादि के लक्षण तथा गुण

तत्काल पक्का गाय—भैंस के दूध को पीयूष अर्थात् खोस कहते हैं। जो दूध जलकर नष्ट हो गया हो, पिंड बन गया हो उसको किलाट अथवा खोआ कहते हैं। जो दूध कच्चा ही जमकर खोए के समान हो गया हो उसको क्षीर शाक कहते हैं। दूध को दही या छाछ से जमाकर स्वच्छ जल में बांध उसके जल को निकालने से जो पिण्ड बंध जाता है, उसमें यदि जल अंश न हो तो तत्पिण्ड कहाता है। फट जाने पर दूध में से जल निकलता है, उसको मोरट कहते हैं। ऐसा जेज्जट आचार्य कहते हैं।

गुण--पीयूष, किलाट, क्षीर शाक और तत्पिण्ड ये सब वृष्य, पुष्टिकारक बलवर्द्धक, भारी, कफकारक, हृदय को प्रिय, वात तथा विद्रधि रोग वाले को बहुत उत्तम है। बूरा सहित मोरट हल्का, बलदायक, रुचिवर्द्धक और मुख-शोधक, तृष्णा, दाह, रक्त-पित्त तथा ज्वरनाशक है।

अलाई—भारी, शीतल, वृष्य, पित्त, रक्तविकार, वातनाशक, तृप्तिकारक तथा ज्वर नाशक है ।

खांड पड़ा हुआ दूध—कफ कारक और वातनाशक है । बुरा अथवा मिश्री पड़ा हुआ दूध वीर्य वर्द्धक और त्रिदोष नाशक है । गुड़ पड़ा हुआ दूध मूत्र कुच्छ नाशक और पित्त तथा कफ को अत्यन्त बढ़ाने वाला होता है ।

प्रभात आदि समय का दूध—रात्रि में चन्द्रमा के गुण अधिक होने से और चलने-फिरने का परिश्रम न होने से प्रभात काल का दूध अधिक करके सन्ध्या काल के दूध से भारी और शीतल है । दिन से सूर्य की किरणों का ताप होने से और परिश्रम तथा वायु का सेवन होने से सन्ध्या का दूध प्रभात के दूध से हल्का और वात तथा कफ को नष्ट करने वाला है ।

दूध सेवन के समय से विशेष गुण

पूर्वाह्न काल में दूध पीना—वृष्य, पुष्टिकारक और अग्निप्रदीक है ।

मध्याह्न काल में दूध का सेवन—बल वर्द्धक, कफ तथा पित्तनाशक और अग्नि को दीपन करने वाला है ।

रात्रि के समय दूध का सेवन—बालकों को वृद्धिकारक, क्षय का नाश करने वाला, वृद्ध लोगों को वीर्य वर्द्धक, अत्यन्त पथ्य, अनेक दोषों को शान्त करने वाला और नेत्रों के लिए हितकारी है । रात्रि में केवल दूध ही पीना चाहिए । उसके साथ भोजन अधिक न करे । इस प्रकार से भी कोई-कोई कहते हैं । रात्रि में दूध के साथ भोजन करने से अजीर्ण होता है । और निद्रा नहीं आती । पीने के लिए पात्र में लिया हुआ दूध सभी पी जावे, किन्तु उस में से छोड़े नहीं । दिन में जो दाहकारक अन्न आदि सेवन किया जाता है, उसमें पैदा हुए दाह के शान्त्यर्थ रात्रि को दूध हमेशा पीना चाहिए । जिनकी अग्नि दीप्त है, उनको, दुर्बल शरीर वालों को, बाल, युवा तथा वृद्ध के लिए दूध अत्यन्त हितकारी पथ्य और तत्काल वीर्यवर्द्धक है ।

सबे हुए दूध के गुण—गाय अथवा बकरी का दूध रई से मथकर किंचित् गरम करके पीये तो हल्का, वृष्य, ज्वरनाशक और वात, पित्त तथा कफनाशक है ।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

गाय अथवा बकरी के दूध के भाग—त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बल-वर्द्धक अग्नि प्रदीपक, वृष्य, शीघ्र तृप्ति, कारक और हल्का है। यह फेन अति-सार में, अग्नि की मंदता में तथा जीर्णज्वर में बहुत उत्तम है।

निन्दित दूध—जो दूध, विवर्ण, विरस, खट्टा, दुर्गन्धित, फटा हुआ, अम्ल पदार्थ अथवा खारी पदार्थ युक्त हो उसको त्याग दे। क्योंकि इससे कुष्ठ आदि रोग होते हैं।

दधि वर्ग

आयुर्वेदीय नाम—दधि, दही

अंग्रेजी—Curdled Milk

फारसी—दोग

गुण—दही गर्म, अग्नि को दीप्त करने वाला, स्निग्ध, किंचित् कसैला-भारी, पाक में खट्टा और श्वास, पित्त, रक्तविकार, सूजन, मेद तथा कफ-कारक होता है। यह दही मूत्र कृच्छ, जुकाम शीत, विषमज्वर, अरुचि और दुर्बलता, इन सभी रोगों में हितकारी और बल वीर्य वर्द्धक है।

दही के भेद—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल, अत्यम्ल के भेद से पांच प्रकार है।

१. मन्द दही के लक्षण—जो दही दूध के सदृश, अव्यक्त रस वाला और किंचित् घन हो उसको मन्द जानना।

गुण—मन्द दही पखाने और पेशाब को प्रवर्तन करने वाला तथा त्रिदोष और दाह को उत्पन्न करता है।

२. स्वादु दही के लक्षण तथा गुण—जो दही भली भाँति गाढ़ा हो, स्वादिष्ट अमृत रस रहित हो ऐसे दही को विद्वान् स्वादु दही कहते हैं। यह अत्यन्त अभिष्यन्दि, मैथुन शक्ति को बढ़ाने वाला, भेद तथा कफ, वर्द्धक, वातनाशक, पाक में मजुर और रक्तपित्त को स्वच्छ करने वाला है।

३. स्वाद्वम्ल दही के लक्षण तथा गुण—जो दही खट्टा, मीठा और गाढ़ा कषाय रस युक्त होता है, उसको स्वाद्वम्ल नाम का दही कहते हैं। इस दही का गुण सामान्य दही के समान जानना चाहिए।

४. अम्ल दही के लक्षण और गुण—जिस दही में मिठास न हो और

खट्टा हो उसको अम्ल के नाम से जानना चाहिए। अग्नि प्रदीपक और पित्त, रक्त और कफ वर्द्धक होता है।

५. अत्यम्ल दही के लक्षण तथा गुण—जिस दही को खाने से दाँत हर्षित हो जाएँ, रोमांच होय और कण्ठ आदि में दाह हो उसको अत्यम्ल कहते हैं। यह अग्नि प्रदीपक और रक्तविकार, वात तथा पित्त को अत्यन्त उत्पन्न करता है।

गाय का दही—विशेषकर मीठा, खट्टा, रुचिकारक, पवित्र, अग्निप्रदीपक हृदय को प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है। संपूर्ण दहियों की अपेक्षा गाय का अधिक गुण वाला होता है।

भेंस का दही—यह बहुत स्निग्ध, कफकारक, वात या पित्तनाशक, पाक में मीठा, अभिष्यन्दि, वृष्य, भारी और रक्त को दूषित करने वाला है।

बकरी का दही यह गरम, ग्राही, हल्क, त्रिदोषनाशक, अग्निप्रदीपक और श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय तथा दुर्बलता में हितकारी है।

पक्के दूध की दही—यह रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुण वाला, पित्त तथा वातनाशक और सम्पूर्ण घातुओं के तथा अग्नि के बल को बढ़ाने वाला है।

निसार दूध का दही—यह ग्राही, शीतल, वातकारक, हल्का, विष्टम्भि, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और संग्रहणी रोग को नाश करने वाला है।

गलित दही—यह स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, भारी, बलवर्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारी मधुर, और अत्यन्त पित्त को करने वाला है।

बूरा पड़ा हुआ दही—यह श्रेष्ठ और तृषा, पित्त, रक्तविकार तथा दाह लाशक है। गुड़ पड़ा हुआ दही वातनाशक, वृष्य, पुष्टिकारक; तृप्तिदायक और भारी है।

रात्रि को दही खाना निषिद्ध—रात्रि में दही नहीं खाना चाहिए। यदि खाये भी तो बिना घृत और शक्कर के, बिना मूँग की दाल के, बिना शहद के, बिना गर्म किए हुए, और बिना आंवलों के नहीं खावे। घी बूरा युक्त दही रात्रि में भी खा लेनी चाहिए। कहा है कि रात्रि में दही खाना उत्तम नहीं है। यदि आवश्यकता हो तो घी तथा पानी डालकर खाना चाहिए। रक्तपित्त तथा कफ सम्बन्धी विकारों में घी तथा पानी की दही नहीं खाएँ।

ऋतु के विशेष से विधि—हेमन्त, शिशिर और वर्षा, इन ऋतुओं में दही का भक्षण करना उत्तम है, शरद्, ग्रीष्म और बसन्त ऋतु में युयः दही खाना उत्तम नहीं ।

बिना विधि से दही सेवन अवगुण—ज्वर, रक्तविकार, विसर्प, कुष्ठ पाण्डुरोग, भ्रम और भयंकर कामला रोग को प्राप्त होता है । जो विधि को छोड़ कर दही का प्रेम करता है अर्थात् दही खाता है ।

सर तथा मस्तु के लक्षण और गुण

१. सर के लक्षण और गुण—दही के ऊपर जो चिकना और घन पदार्थ होता है वह सर कहलाता है । यह मधुर, भारी, वृष्य तथा अग्नि को नष्ट करने वाला तथा खट्टा, वस्तिरोग के लिए शान्तिकारक और पित्त तथा कफ-वर्धक है ।

२. मस्तु के लक्षण तथा गुण—दही मण्ड अर्थात् पानी को मस्तु कहते हैं । ग्लानिनाशक, बलकारक, हल्का, अन्न की इच्छा करने वाला, नाड़ियों को शुद्ध करने वाला, आनन्द दायक, कफ, तृषा तथा वातनाशक, वृष्य गुण रहित शीघ्र तृप्तिकारक और मल के संचय को तोड़ने वाला है ।

तक्र वर्ग

आयुर्वेदीय नाम—तक्र, छाच्छिका

अंग्रेजी—वाटर मिल्क (Water milk)

विवरण—आयुर्वेद में तक्र के पांच भेद बताए हैं—वे निम्न हैं—(१)

घोल—दही में बिना पानी डाले मलाई सहित मथने पर तैयार होता है ।
(२) मथित ऊपर की मलाई निकाल कर बिना पानी का जो दही मथने पर बनता है । (३) तक्र—जो दही में चौथाई जल डालकर मथकर बनाया जाता है । (४) उदश्वित्—आधा पानी डालकर मथा हुआ दही उदश्वित् कहलाता है । (५) छाच्छिका—दही में अधिक पानी डालकर जो मक्खन निकाल कर द्रव्य तैयार होता है वह छाच्छिका कहलाता है ।

गुण कर्म—घोल—बूरा डालकर सेवन किया हुआ घोल आमफल के समान गुण करता है ।

मथित—वात- पित्तनाशक, हृदय को प्रिय होता है ।

तक्र—ग्राही, कसैला, खट्टा, पाक में तथा रस में मीठा, हल्का, उष्णवीर्य अग्निप्रदीपक, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक एवम् ग्रहणी आदि रोगों में लाभ करता है ।

उदश्वित्—कफकारक, वलवर्धक और अत्यन्त आमनाशक है ।

छाच्छिका—शीतल, हल्की, पित्त, तुष्णा तथा वातनाशक और कफ-नाशक है, लवण डालकर सेवन करने से अग्नि को दीपन करती है भिन्न २ जाति के मट्ठे के गुण—जिसमें से घी निकाल लिया गया हो ऐसे तक्र पथ्य हैं और अत्यन्त हल्का है । जिसमें से थोड़ा घी निकाल लिया हो, ऐसा तक्र उप-युक्त तक्र से भारी, वृष्य और कफकारक है । जिसमें से बिल्कुल घी नहीं निकाला गया हो ऐसा तक्र गाढ़ा, भारी, पुष्टिकारक और कफ करता है ।

दोष और व्याधि से तक्र के गुण—वात में खट्टा, और सोंठ के साथ सेंधा नमक मिला हुआ तक्र उत्तम । पित्त में शक्कर मिला हुआ तथा मधुर तक्र उत्तम है । कफ की वृद्धि में सोंठ, मिरच और पीपलीयुक्त तक्र उत्तम है । हींग, जीरा और सेंधानमक मिला हुआ घोल—अत्यन्त वातनाशक, बवासीर तथा अतिसार को नाश करता है । रुचिकारक, पुष्टिदायक, वलवर्धक, और बस्तिशूल नाशक है, गुड़ डाला हुआ घोल मूत्रकृच्छ को रोकता है और चीनी-युक्त घोल पाण्डुरोग में उत्तम है ।

कच्चा तक्र—कोठे के कफ को नष्ट करने वाला है और कण्ठ में कफ करता है । पीनस, श्वास, और खांसी आदि से पका हुआ तक्र दिया जाता है । शीतकाल, अग्नि की मन्दता, वातरोग, अरुचि और नाड़ियों का अवरोध इनमें तक्र अमृत के तुल्य है । तक्र, विष वमन, जी मिचलाना, विषमज्वर, पाण्डु-रोग, मेद, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतिसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, श्वेतकुष्ठ, सूजन, तृषा और कृमि को नष्ट करता है ।

उष्णकाल में, क्षत में, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्तज रोग में तक्र अपथ्य है । पहले जो दही कही है उनमें से जिस दही का जो तक्र हो उसमें से उस दही के समान ही गुण जानना चाहिए ।

नवनीत वर्ग

आयुर्वेदीय नाम—भक्षण, सरज, हैयङ्गवीन, नवनीतक

अंग्रेजी—Butter

लैटिन—Butyrum

फारसी—मसका

गुण—गाय का मक्खन हितकारी, वृष्य, वर्ण को उत्तम करने वाला, बलकारी, अग्निप्रदीपक, ग्राही और वातपित्त, रक्तविकार, क्षय, बवासीर लकवा तथा खांसी को नष्ट करता है। यह मक्खन बालक और बूढ़ों को हितकारी है। बच्चों के लिए तो अमृत की तरह है।

भैंस का मक्खन—वात तथा कफकारक, भारी, दाह, पित्त तथा परिश्रम को दूर करता है और मेद तथा वीर्य का वर्धक है।

दूध से निकाला हुआ मक्खन—मधुर, ग्राही, शीतल, हल्का, बुद्धि को हितकर और मट्ठा का कुछ भाग रहने से कसैला तथा खट्टा भी होता है।

वासी मक्खन—खारा, चरपरा और खट्टा हो जाने से वमन, बवासीर तथा कुष्ठ को करने वाला होता है और कफकारी, भारी तथा मेद को वृद्धि करने वाला होता है।

विवरण—मक्खन में वसा का अधिक भाग होता है और बहुत थोड़ा भाग जल का होता है। दूध या दही को मंथन करके इसे निकालते हैं, अतः जिस वस्तु से निकलता है, उसमें उसकी ही तासीर रहती है। दूध का मक्खन उत्तम या दही का न्यून गुण-युक्त होता है। भैंस, गाय, भेड़, बकरी भेद से ही गुण में अन्तर होता है।

घी में भी यही बातें जाननी चाहिए। नवनीत में जीवनीय पदार्थ अधिक पाए जाते हैं। अतः बालकों के लिए बहुत फायदेमन्द है। शरीर की वृद्धि करने वाला है।

घृत वर्ग

आयुर्वेदीय पर्याय—घृत, आज्य; हवि; सर्पि

अंग्रेजी—Clarified Butter Ghee.

लैटिन—Butyrum Depuratum.

फारसी—रोगनेचर्द

गुण—घी, रसायन, मधुर, नेत्रों को हितकारी, अग्निप्रदीपक, शीतवीर्य, विष, पित्त और वातनाशक भी है। किंचित् अभिष्यन्दि, कान्ति, बल, तेज, लावण्य, बुद्धि स्वर की निर्मलता, स्मरण शक्ति को उत्तम, मेघा को हितकारी, आयुवर्धक, बलकारी, भारी, स्निग्ध, कफकारक और उदावर्त, ज्वर, उन्माद, शूल, तथा अफारा, वर्णक्षय, विसर्प तथा रक्तविकार को नष्ट करता है।

गाय का घी—गाय का घी विशेषकर नेत्रों को हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाक में मधुर, शीतल, वात तथा कफनाशक, बुद्धि, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेज की वृद्धि करने वाला, कुरूपता, पाप तथा राक्षस नाशक, आस्थापक, बलवर्धक, भारी, पवित्र, आयुवर्धक, मंगलरूप, सापन, सुगन्धियुक्त रुचिकर, सुन्दर और सम्पूर्ण घृतों में उत्तम है।

भैंस का घी—मधुर, शीतल, कफकारक, वृष्य, भारी, पाक में मधुर और पित्त, रक्त विकार तथा वातनाशक है।

बकरी का घी—अग्निकारक, नेत्रों को हितकारी, बलवर्धक, पाक में चरपरा और खाँसी, श्वास तथा क्षय में हितकारी है।

ऊँटनी का घी—पाक में चरपरा, अग्निप्रदीपक, शोष और कृमि, विष, वात, कोढ़, गुल्म तथा उदररोग नाशक है।

भेड़ का घी—पाक में हल्का, सर्व रोग नाशक, अस्थि की वृद्धि करने वाला, पथरी वा शर्करानाशक, नेत्रों को हितकारी, अग्निप्रदीपक और वायु के दोषों का निवारण करता है।

स्त्री का घी—कफ, वात, योनिदोष, पित्त वा रक्त विकार में हितकारी, नेत्रों को उत्तम करने वाला और श्रमृत के समान है।

घोड़ी का घी—शरीर की अग्नि को बढ़ाने वाला, पाक में हल्का, विष नाशक, तृप्तिकारक, नेत्रों के रोग तथा दाह नाशक है।

दूध से निकाला हुआ घी—ग्राही, शीतल और नेत्र रोग, पित्त, दाह और रक्तविकार, मद, मूर्छा, भ्रम तथा वात नाशक है।

पहिले दिन दूध से निकाले हुए घी को हैयंगवीन कहते हैं। यह घी नेत्रों को हितकारी, अग्निप्रदीपक, अत्यन्त रुचिवर्धक, बलवर्धक, पुष्टिकारक, वृष्य वा विशेष करके ज्वर नाशक है।

पुराना घी—एक वर्ष का रखा हुआ घी पुराना कहलाता है। यह घी त्रिदोषनाशक और मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी, तथा तिमिरनाशक है।

हर प्रकार के घी—जितने ही प्राचीन होते जाते हैं उतने ही अधिक गुण करते हैं।

नवीन घी—भोजन, तर्पण, परिश्रम, बलक्षय, पाण्डुरोग, कामला और नेत्ररोग इन सब में उपयोग करना चाहिए।

बालक तथा वृद्ध को, राजदक्ष्मा, कफरोग, आमव्याधि, विसूचिका, मल-बन्ध, मदात्यय, ज्वर और मन्दाग्नि में विशेष घी नहीं देना चाहिए।

मूत्र वर्ग

गोमूत्र—चरपरा, कड़वा, तीक्ष्ण, गर्म, खारी, कषैला, हल्का, अग्निप्रदीपक, मेघा को हितकारी, पित्तकारक और कफ, वात, शूल, गुल्म, उदर, आघ्मान, खुजली, नेत्ररोग, मुखरोग, किलास, आम, वातसम्बन्धी रोग, वस्तिरोग, कोढ़, खांसी, श्वास, सूजन, कामला, तथा पाण्डुरोग नाशक है।

गोमूत्र पान करने पर खुजली, किलास, शूल, मुखरोग, नेत्ररोग, गुल्म, अनिसार, वातसम्बन्धी रोग मूत्र रोग, खांसी, कोढ़, उदरदोग, कृमि व पाण्डुरोग नाशक है। सब प्रकार के मूत्रों में गोमूत्र सब से उत्कृष्ट है। अतः जहाँ मूत्र कहा हो वहाँ गोमूत्र ही लेना चाहिए।

मनुष्य का मूत्र—खारी, तीक्ष्ण, रक्तविकार नाशक, खुजली और विष नष्ट करने वाला और सेवन करने से रसायन है।

गौ, बकरी, भेड़ और भैंस इनके मूत्रों में स्त्री जाति का मूत्र उत्तम है। गधा, ऊँट, हाथी मनुष्य और घोड़ा इनमें पुरुष जाति का मूत्र उत्तम है।

विद्वरण—जो भोजन हम नित्य खाते हैं, उसमें का जलीय भाग जो शरीर के योग नहीं होता, जिसमें बहुत से विपैले पदार्थ भरे होते हैं और शरीर के लिए हानिकारक होते हैं उन्हें शरीर से बाहर निकाल देता है—यही मूत्र है। इसकी प्राप्ति भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ रूप में पाई जाती है। आयुर्वेद के प्राचीन चिकित्सकों ने इस निकृष्ट वस्तु का भी उपयोग औषध स्वरूप में किया था और उसका परिणाम ऊपर लिखित मूत्रवर्ग है। रक्त के

कस्तूरी वर्ग

३६५

तएव भाग से दोनों वृक्क जिन वस्तुओं को छानकर बाहर मूत्ररूप में करते हैं वे शरीर के लिए उपादेय भी होते हैं। इनमें यूरिया $1\frac{1}{2}$ भाग २८ $\frac{1}{2}$ भाग क्षार लवण वा कफादि ५ भाग पित्तजनक, प्रतिक्षार तथा आघे लगभग यूरिक एसिड होता है। यही क्षार, लवण वा अम्ल इन मूत्रों में होते हैं, गोमूत्रादि सेवन से यह कमियां पूरी हो जाती हैं।

अम्बर

आयुर्वेदीय पर्याय — अग्निजंजर, तुन्दामय

अंग्रेजी—Ambergris

विवरण—यह कैजलांट या स्पर्मह्वेल नामक सामुद्रिक प्राणी के आन्त्र में उत्पन्न होने वाली एक विकारजन्य ग्रन्थि है। एक शृगाकार वनस्पति खाने से यह ग्रन्थि उत्पन्न होती है और वह जन्तु क्रमशः दुर्बल होकर मर जाता है तब यह ग्रन्थि आंतों से निरुल कर समुद्र की लहरों पर तैरती हुई किनारों पर आ जाती है। इसी का प्रयोग किया जाता है। इसको ताजा ही लिया जाए तो इसमें पुरीष के समान दुर्गन्ध आती है किन्तु सुखा देने के बाद हलकी भीनी सुगन्ध आती है। ऊपर से यह श्याम वर्ण होती है किन्तु भीतर से श्वेतांग होती है। इसकी मात्रा १ से ३ रत्ती होती है।

गुण कर्म—राजनिघण्टु में इसे कटु एवम् उष्ण बताया है। कफ वात नाशक है—पित्त कारक है। शूल, अति, शीत एवम् सन्निपात में लाभ करता है।

यह दीपन पाचन बृंहण है तथा घन वात में लाभ करता है।

इसे नर्म अलकोहल में मिलाया जाए तो 'अम्बरीन' नामक दानेदार सत्व मिश्रता है जो ५५ % होता है।

कस्तूरी

आयुर्वेदीय पर्याय—कस्तूरी, मृगनाभि, मृगभद, सहस्रभिम्ब।

अंग्रेजी—Musk.

विवरण—नर कस्तूरी मृग की नाभि के पास एक अण्डाकार कोश होता है। इसके ऊपर सफेद बाल रहते हैं और बीच में एक छिद्र होता है। इस

कोश के भीतर एक कृष्ण वर्ण या रक्ताभ कृष्ण, दानेदार, उग्रगन्धि पदार्थ भरा रहता है। यही कस्तूरी है। १-२ वर्ष की आयु तक के मृग में कस्तूरी श्वेत तरल के रूप में रहती है किन्तु बाद में ठोस होती जाती है और वर्ण बदल जाता है।

कस्तूरी मृग रूस, चीन, मध्य एशिया, तिब्बत, नेपाल, भूटान, आसाम, कश्मीर आदि हिमालय प्रदेश में ७-८ हजार फीट की ऊँचाई पर घने जंगलों में रहते हैं। उसे मार कर ही कस्तूरी-कोश निकाला जाता है।

प्रयोज्यभ्रंग—कस्तूरी

मात्रा—१/२ से १ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश में कामरूप देश में उत्पन्न होने वाले मृगों से प्राप्त कृष्णवर्ण की कस्तूरी को सर्वश्रेष्ठ बताया है। नेपाली जो नीलवर्ण की होती है मध्य गुण युक्त कही है और काश्मीरी कपिला वर्ण की कस्तूरी निकृष्ट बताई है।

इसे कटुतिक्त रस, गुरु, उष्ण और शुक्ल कहा है। यह कफवात शामक है। विष, छर्दि, शीतता, दुर्गन्धता, शोष का नाश करती है।

कैयदेव निघंटु में लिखा है कि जो कस्तूरी पिगलाभ कृष्ण, सुगन्धित, जल में अविलेय हो, पीसने पर चिकनाहट आए और जलाने पर पूरी न जल कर चमड़े के समान गन्ध आए, उसे श्रेष्ठ कस्तूरी मानना चाहिए।

आधुनिक मत—रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें अमोनिया, ओलीन, कोलेस्टरीन, वसा, मोम, अल्ब्युमिनयुक्त पदार्थ होते हैं। तिर्यकपातन से एक गाढ़ा वर्ण रहित तेल प्राप्त होता है जिसे Muskone कहते हैं।

मोती

आयुर्वेदीय पर्याय—मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज

यूनानी—मरवारीद

अंग्रेजी—Pearl

विवरण—समुद्र में मुक्ता शुक्ति नामक बड़ी सीप होती है जो फारस की खाड़ी, लंका और सौराष्ट्र में पाई जाती है। इसमें सफेद रंग का चमकदार, भारी, चिकना, छिद्र रहित और सुडौल, गोल दाना निकलता है जो मोती कहा जाता है।

मूंगा

३६७

प्रयोज्य अंग—मुक्ता

मात्रा—१ से ४ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—मधुर रस, लघुरूक्ष गुण, शीतवीर्य और मधुर विपाक होता है। वृष्य, चक्षुष्य, बलदायक, पुष्टिदायक, विषनाशक होता है।

यह राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, कफ, पित्त, कास, श्वास आग्निमन्दता, दाह को शमन करता है।

आधुनिक मत—इसमें कैल्शियम काफी मात्रा में होता है।

सीप

आयुर्वेदीय पर्याय—शुक्ति

यूनानी—सदफ मरवारीद

अंग्रेजी—Mother Of Pearl

विवरण—यह समुद्र एवम् नदियों में होती है। जिसमें मोती होता है उसे मुक्ता शुक्ति कहते हैं, यह बड़ी होती है और अन्दर की तरफ से अधिक चमकदार होती है। नदियों में होने वाली सीप जलशुक्ति कहलाती है।

प्रयोज्य अंग—सीप

मात्रा—१ से ४ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—यह भी मोती के समान गुण वाली है, परन्तु उससे हीन गुण होते हैं। मोती के अभाव में इसका प्रयोग किया जाता है।

मूंगा

आयुर्वेदीय—प्रवाल

यूनानी—मर्जा

अंग्रेजी—Coral

विवरण—यह एक कीड़े का शव है जो समुद्र-तल में पड़ा २ कठिन हो जाता है। बाद में इसका रंग लाल होता जाता है। इसका नीचे का भाग स्थूल एवम् कठोर होता है, उसे मूल कहते हैं और ऊपर का भाग शाखा कहलाता है।

रस चूड़ामणि में प्रवाल के स्वरूप के विषय में बताया गया है कि जो प्रवाल पक्व बिम्बी फल के सदृश रक्तवर्ण, गोलाकार, सरल, स्निग्ध, अक्षत और स्थूल हो वह उत्तम होता है। जो पाण्डुर, घूसर, रूक्ष, खोखला, हलका और पतला होता है वह निकृष्ट होता है।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

प्रोज्यय अंग—प्रवाल

मात्रा—१-३ रत्ती

आयुर्वेदिक मत—रस तरंगणी में इसे मधुर रस, लघु गुण, शीत वीर्य और मधुर विपाक कहा है। मन्द दीपन, पाचन, त्रिदोषघ्न, विशेष कर कफ-वात नाशक होता है। बलकारक, दृष्टि रोग नाशक, क्षय, कास एवम् रक्तपित नाशक होता है। अधिक पसीने को बन्द करता और रात्री स्वेद में लाभ करता है। यह विषघ्न, भूतघ्न एवम् वीर्य, वर्ण वर्धक होता है।

आधुनिक मत—इसमें कैल्शियम कार्बोनेट ८३ प्रतिशत होता है। मैग्निशियम कार्बोनेट एवम् लोह भी होता है।

शंख

आयुर्वेदीय पर्याय—शंख, कम्बु

विवरण—यह एक समुद्री प्राणी का बाह्यकोश है। जो शंख बड़ा, भारी, श्वेत एवम् अछिद्र हो वह श्रेष्ठ कहलाता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश में शंख को क्षारीय, शीतल और ग्राही बताया है। यह ग्रहणी रोग नाशक होता है। नेत्र रोग नाशक है। वर्णकारक है तथा यवत पिडिक का नाश करता है।

आधुनिक मत—इसमें कैल्शियम एवम् अन्य क्षार होते हैं।

कौड़ी

आयुर्वेदीय पर्याय—कपर्दिका, वराटिका।

लैटिन—Cyproeia Moneta

विवरण—यह एक समुद्री जन्तु का अस्थिमय कोश है। पीताभ, पृष्ठ भाग पर ग्रन्थिल, दीर्घवृन्त युक्त तथा ३-४ मासे भार की कपर्दिका श्रेष्ठ मानी जाती है। मात्रा ३-४ रत्ती।

आयुर्वेदिक मत—कटु, तिक्त एवम् उष्ण होती है। यह दीपन, वृष्य, वातकफशामक एवम् चक्षुष्य होती है।

कर्ण शूल, गुल्म, परिणाम शूल, ग्रहणी, क्षय एवम् व्रण का नाश करती है।

समुद्र भाग

आयुर्वेदीय पर्याय—समुद्रफेन

विवरण—यह समुद्रज प्राणी की पीठ की अस्थि है। क्योंकि यह फेन के समान सफेद रंग की होती है और समुद्र की लहरों पर तैरती हुई किनारों पर आ जाती है—इसलिए इसका नाम समुद्र फेन रखा गया है।

यह श्वेत वर्ण की ५-१० इञ्च लम्बी, चपटी, खुरदरी हल्की एवम् भंगुर अस्थि होती है। यह समुद्र तटवर्ती प्रदेशों से प्राप्त की जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती।

आयुर्वेदिक भूत—कषाय रस, लघु रुक्ष सर गुण, शीत वीर्य एवम् कटु विपाक होता है। यह कफपित्त शामक होता है लेखन, चक्षुष्य, विषघ्न, दीपन एवम् पाचन होता है।

कर्णपाक, कणरूजा, गुल्म, प्लीहा, रक्तपित्त, नेत्ररोग नाशक होता है।

आधुनिक भूत—इसमें कैल्शियम कार्बोनेट ८५% होती है। कैल्शियम फास्फेट, सल्फेट और सिलिका होती है।

लाख

आयुर्वेदीय पर्याय - लाक्षा, वृक्षामय।

अंग्रेजी—Lac.

विवरण—बड़ पीपल आदि वृक्षों पर एक कीट जिसे कांकस लक्का कहा जाता है से उत्पन्न होती है। इसका रंग लाल होता है और दाने २ होते हैं।

मात्रा—५ से १० रत्ती।

आयुर्वेदिक भूत—यह कषाय रस, लघु स्निग्ध गुण, शीतवीर्य-कटु विपाक होती है। यह कफपित्त शामक है। बलकारक, वर्णकारक, रक्तशोधक, ब्रण-रोपक होती है। हिक्का, कास, ज्वर, कृमि, कुष्ठ, विसर्प में लाभ करती है।

शहद

आयुर्वेदीय नाम—मधु, माक्षिक, क्षौद्र

अंग्रेजी—Honey

लैटिन - Mel.

विवरण—मधु मक्खियों के द्वारा पुष्प रस अपने छत्तों में भरा जाता है जिसे निचोड़ कर मधु एकत्रित किया जाता है।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश निषण्डु में मधु वर्ग नाम से एक वर्ग का वर्णन निम्न प्रकार किया ।

शहद शीतल, हल्का, मधुर, रुक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रों के लिए हितकारी, अग्नि दीपन करने वाला, स्वर को उत्तम करने वाला, व्रणशोधक, रोपण, सुकुमारता करने वाला, सूक्ष्म स्रोतों को शुद्ध करने वाला, कसैला, रस से युक्त, आल्लादन करने वाला, प्रसाद जनक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला, बुद्धि कारक, वृष्य, विशद, रुचिकारक, और मेद, तूषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबन्ध, कोष्ठ, बवासीर, खांसी, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, ग्लानि, कृमि, दाह, क्षत और क्षय इन सब को नष्ट करता है । यह योग-वाही और किञ्चित् वातकारक है ।

माक्षिक, आमर, क्षौद्र, पीत्तिक, छात्र, आर्घ्य, औछालक और दाल यह शहद के भेद हैं ।

१. माक्षिक के लक्षण—पिंग वर्ण वाली जो बड़ी मक्खी होती है । उस को मधु मक्खी के नाम से पुकारते हैं । इनका किया हुआ तेल के सदृश जो मधु होता है, वह माक्षिक मधु कहलाता है ।

१. माक्षिक मधु के गुण—माक्षिक मधु सब मधुओं में श्रेष्ठ, नेत्ररोग को नाश करने वाला, हल्का और कामला, बवासीर, क्षत, श्वास, खांसी तथा क्षय को नाश करता है ।

२. आमर मधु के लक्षण—प्रसिद्ध भौरों से किञ्चित् छोटे भौरों का बनाया हुआ और स्फटिक मणि के तुल्य निर्मल जो मधु होता है, उस को आमर नाम से कहते हैं ।

२. आमर मधु के गुण—आमर मधु रक्त पित्त को नाश करने वाला, मूत्र में जड़ता करने वाला, भारी, पाक में मधुर, अभिष्यन्दि, विशेषकर पिच्छिल पित्तकारक और शीतल होता है ।

३. क्षौद्र मधु के लक्षण—कपिल रंग वाली सूक्ष्म मक्खियाँ क्षुद्रा के नाम से पुकारी जाती हैं और इन मक्खियों के किए हुए मधु को मुनियों ने क्षौद्र मधु कहा है ।

३, क्षौद्र मधु के गुण—क्षौद्र मधु कपिल वर्ण वाला और माक्षिक के सदृश गुण वाला विशेषकर प्रमेह नाशक होता है ।

४. पौत्तिक मधु के लक्षण—अधिक करके मच्छर के सदृश अति सूक्ष्म, काले लोगों को बहुत पीड़ा करने वाली और वृक्षों की खखोदल (खोखला) में रहने वाली जो मक्खियाँ मधु बनाती हैं उनको विद्वान् पुत्तिका नाम से कहते हैं । और उनका बनाया हुआ घी के सदृश जो मधु होता है, उनको वन में विचरण करने वाले लोग पौत्तिक मधु करते हैं ।

४ पौत्तिक मधु के गुण—रूक्ष, गरम, विदाही, पित्त दाही, रक्त तथा वात कारक, प्रमेह तथा मूत्रकृच्छनाशक और गाँठ आदि तथा क्षत का शोषण करता है ।

५. छात्र मधु के लक्षण—अधिकतर हिमालय के वन में छात्र के सदृश आकार वाली पिगल और पीली मक्खियाँ आकर जो मधु बनाती हैं उस मधु को छात्र मधु के नाम से कहते हैं ।

५. छात्र मधु के गुण—छात्र मधु भूरे वर्ण का पीला, पिच्छिल, शीतल, भासी, पाक में मधुर, तृप्तिकारक, कृमि और अधिक गुण वाला, सफेद कोष्ठ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विष को नष्ट करने वाला होता है ।

६. आर्ध्य मधु के लक्षण—जरत्कारु मुनि के आश्रम में उत्पन्न हुए मधुवे के वृक्षों में से जो गोंद निकलता है, वह आर्ध्य कहलाता है । इसको मालवे में श्वेतक कहते हैं । दूसरे मुनि कहते हैं कि भौरे के सदृश और तीक्ष्ण मुख वाली जो पीली मक्खियाँ होती हैं, उनका नाम अर्ध्य है ।

उनके बनाये हुए मधु को आर्ध्य कहते हैं ।

६. आर्ध्य मधु के गुण—आर्ध्य मधु नेत्रों के लिए विशेषकर हितकारी है । कफ तथा पित्त नाशक है । उत्तम, कसैला, पाक में चरपरा, कड़वा और बल तथा पुष्टि दायक है ।

७. श्रीक्षालक मधु के लक्षण—प्रायः बिलों में रहने वाले कपिल वर्णयुक्त जो छोटे-छोटे कीड़े होते हैं । ये कपिल वर्ण वाला थोड़ा मधु बनाते हैं । उसी मधु को श्रीक्षालक कहते हैं ।

७. औसालक मधु के गुण—औसालक मधु रुचिकारक, स्वर के लिए उत्तम कोष्ठ तथा विषनाशक, कसैला, गरम, खट्टा, पाक में चरपरा और पित्त को करने वाला है।

८. दाल मधु के लक्षण—पुष्पों में से झरकर पत्तों के ऊपर पड़ा हुआ जो मधुर, खट्टा और कसैला (रस) होता है। वह दाल मधु कहलाता है।

९. दाल मधु के गुण—दाल मधु पाक में हल्का, अग्नि दीपक, कफ नष्ट करता, कसैले रस वाला, रुक्ष, रुचिकारी, वमन तथा प्रमेह नाशक, अधिक मधुर, स्निग्ध पुष्टिकारक और तोल में भारी होता है।

नवीन और प्राचीन मधु के गुण—नवीन मधु पुष्टिकारक, अत्यन्त कफ नाशक नहीं और दस्तावर है। प्राचीन मधु-ग्राही, रुक्ष, मेदनाशक और अत्यन्त लेखन है। मधु, शक्कर और गुण एक वर्ष बीत जाने पर पुराने होते हैं। इस प्रकार का मुनियों का कथन है।

शीत और उष्ण मधु के गुण-दोष—विषैले और आदि विषैले पुष्पों में से रस लेकर मधु बनाते हैं। यह मधु शीतल ही गुणकारी है। इसमें विषैले पदार्थ का संयोग रहने से अथवा गरम पदार्थ का संयोग रहने से अथवा गरम होने से उष्ण ऋतु वा उष्ण काल में वह मधु गरम होकर विष के सदृश काम करता है।

परिशिष्ट

नूतन-पुरातन द्रव्यों का गुणान्तर

जो भी द्रव्य चिकित्सार्थ प्रयोग करने हों वहां यह विचार करना आवश्यक है कि नवीन ग्रहण किया जाए अथवा पुराना। एतदर्थ एक साधारण नियम यह है कि शुष्क काष्ठादि द्रव्य सदैव नवीन ही ग्रहण करने चाहिए। क्योंकि वह अधिक गुणकारी होते हैं।

गुड़, तेल, घृत, सहद, वनिया, पीपल, बायबिडंग, आसव, अरिष्ट, रस,

उपरस, घातु, उपघातु सदैव पुराने ही ग्रहण करने चाहिए क्योंकि यह पुराने होने पर अधिक गुणकारी हो जाते हैं ।

किसी भी द्रव्य के गुण एक निश्चित समय तक ही विद्यमान रहते हैं, इसलिए उनके विकृत काल को जानना भी आवश्यक है ।

जो घृत औषध से सिद्ध किया हुआ हो वह एक वर्ष पश्चात् गुणहीन हो जाता है । बिना सिद्ध किया हुआ घृत जितना पुराना हो उतना ही श्रेष्ठ रहता है । तिल तेल चाहे सिद्ध भी हो पुराना होने पर ही गुणकारी होता है ।

काष्ठादि औषधियाँ प्रायः एक वर्ष के पश्चात् गुणहीन हो जाती हैं । वर्षा समाप्त होने के पश्चात् पूर्व रक्षित द्रव्य गुणहीन हो जाते हैं ।

गुडिका और लेह एक वर्ष के पश्चात् गुणहीन हो जाते हैं और चूर्णोषध दो मास के पश्चात् गुणहीन हो जाती है ।

जिन द्रव्यों का रस, गन्ध आदि विलुप्त हो जाए अथवा विकृत हो जाए उन द्रव्यों के प्रयोग से हमेशा दोष की वृद्धि ही होती है ! अतः ऐसे द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

वन्य औषध-ग्रहण नियम

स्थान—मरु देश एवं साधारण देश से जहाँ की मृत्तिका समन एवं स्वच्छ होवे वह भूमि प्रशस्त मानी जाती है । यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके पास कोई शमसान, देवालय, वंश स्थान न होवे और बल्मीकों से रहित होवे ! मृदु जलाशयों के निकटवर्ती, तृण, आदि से युक्त जो जोती न जाती हो एवं जहाँ औषध द्रव्यों के अतिरिक्त बड़े २ वृक्ष न हों वह भूमि वनस्पतियों को ग्रहण करने के लिए श्रेष्ठ समझनी चाहिए । ऐसी भूमि से रस एवं वर्ण आदि से युक्त द्रव्यों को ग्रहण करना चाहिए ।

जिस देश में द्रव्य स्वभाव से ही उत्पन्न होता है, उसी देश से उसे ग्रहण करना श्रेष्ठ है । जो द्रव्य पृथ्वी महाभूत प्रधान हों उन्हें पार्थिव भूमि से जो जलमहाभूत प्रधान होवे उन्हें जलीय भूमि से, जो अग्नि महाभूत प्रधान हों उन्हें तैजस भूमि से, जो वायु महाभूत प्रधान हों उन्हें वायव्य भूमि से और जो द्रव्य आकाश महाभूत प्रधान हों उन्हें आकाशीय भूमि से ग्रहण किया जाता है ।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

इन पांच प्रकार की भूमि की व्याख्या सुश्रुत संहिता में की गई है, वहाँ बताया गया है कि 'अश्मवती' स्थिर, भारी, श्याम अथवा कृष्ण वर्ण की, स्थूल वृक्षादि से युक्त भूमि पार्थिव होती है। स्निग्ध, शीतल, जलाशयों के निकट की स्निग्ध, हरे, कोमल तृण एवं वृक्ष आदि से युक्त भूमि आप्य भूमि कही जाती है। नाना वर्ण वाली, हल्के-हल्के पत्थरों वाली, पाण्डु वर्ण के वृक्षों वाली आग्नेय कही जाती है। रूक्ष, भस्मवर्ण की, छोटे २ वृक्षों वाली, अल्प रस-वाले और कोटर युक्त वृक्षों से युक्त वायव्य भूमि कही जाती है। मृदु, असम, अव्यक्त रस वाले जल से युक्त, सार रहित वृक्षों से युक्त, महान पर्वतों वाली भूमि आकाशीय कही जाती है।

यदि कोई विरेचक द्रव्य ग्रहण करना चाहें तो पृथ्वी जल महाभूत प्रधान भूमि से ग्रहण करें। वामक द्रव्य अग्नि आकाश महाभूत प्रधान भूमि से ग्रहण करें और संशमन द्रव्य आकाश महाभूत प्रधान भूमि से लेने चाहिए।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि चित्रक आदि आग्नेय औषधियां विन्ध्या-चल प्रभृति उष्ण प्रदेशों से लेवें और बिदारीकन्द, शतावरी आदि सौम्य औषधियां हिमालय आदि शीत स्थानों से ग्रहण करनी चाहिए।

विधानः—जब भी औषध ग्रहण करने को जायें तब जितेन्द्रिय एवं शुद्ध होकर, श्वेत वस्त्र धारण कर, मन में शिवजी को स्मरण कर, 'उत्तरं मुखं होकर भगवान् धन्वन्तरि को नमस्कार कर उपर्युक्त भूमि की परीक्षा कर औषध ग्रहण करें।

ग्रहणीय अंग एवं ग्रहण काल—शाल एवं चन्दन का सार भाग, अनार और और त्रिफला का फल, घातकी के पुष्प, मूली आदि के कन्द, वट एवं नीम आदि की छाल, गिलोय आदि की लता, तालीश पत्र एवं पटोल आदि के पत्र ग्रहण किए जाते हैं।

जहाँ पर स्पष्ट उल्लेख न हो वहाँ चन्दन शब्द से रक्त चन्दन (बाह्य प्रयोग में) लवण शब्द से सैन्धव, मूत्र शब्द से गोमूत्र, शकृद, पयः एवं सर्पि

शब्द से गाय का गोवर, दूध और घृत ग्रहण करना चाहिए। तैल से तिल का तैल ग्रहण होता है।

मूल शिशिर और ग्रीष्म ऋतु में ग्रहण करें, पत्र वर्षा एवम् बसन्त में, कन्द एवम् क्षीर शरद ऋतु में ग्रहण करें। सार हेमन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिए। फल और फूल जिस ऋतु में भी लगें तभी ग्रहण करने का विधान है।

फल पक जाने पर ही गुणकारक होता है किन्तु बिल्व फल आदि कुछ अपवाद भी हैं जो कच्चे ही अधिक गुणकारक होते हैं।

व्याधीत, कुमिदुष्ट, अति पक्व अकालज फल ग्रहण नहीं करना चाहिए।

सभी कर्मों के लिए शरद ऋतु में सरस औषधियां ग्रहण करनी चाहिए। किन्तु वमन विरेचनार्थ बसन्त के अन्त में द्रव्य संग्रह करना श्रेष्ठ कहा गया है।

साधारणतः जिस ऋतु में भी जो द्रव्य पुर्णतः रस आदि से युक्त हो जाए तभी उसका ग्रहण करना श्रेष्ठ कहा गया है।

संरक्षण विधि—विधि पूर्वक ग्रहण की गई वन्यौषध को संग्रह कर पवित्र स्थान में, जहां जोर की हवा न लगे, रखकर सूर्य के प्रकाश में शुष्क करना चाहिए। उसे वर्षा से, बालकों से और गौ आदि पशुओं से बचाना चाहिए।

शुष्क होने पर यदि द्रव्य दीर्घाकार हों तो उनके खण्ड कर लेने चाहिए और यदि क्षुद्राकार हों तो ज्यों का त्यों ही लोहे के पात्रों में भर देना चाहिए।

इन औषध पात्रों को एक ऐसे कमरे में रखना चाहिए जिसमें एक तरफ से वायु आती हो, जिस की भीति दृढ़ हो और जिसमें धूप का प्रकाश आता हो।

निर्मित औषध को सुन्दर काँच पात्र में अथवा सुन्दर चीनी मिट्टी के पात्र में रखकर उसका मुख ऐसा बन्द करना चाहिए कि औषध में वायु न लग सके। प्रत्येक पात्र पर औषध का नाम स्पष्ट अक्षरों में लिखा होना चाहिए और इन पात्रों को सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।

घृत-मोदक-आलेह आदि को निकालने के लिए पात्र में कोई चम्मच आदि होना चाहिए जिससे कि औषध द्रव्य को हाथ न लगाना पड़े ।

आसव एवं अरिष्ट के पात्र के मुख को दृढ़ सूत्र अथवा तार से ऐसा दृढ़ करके बांधना चाहिए कि औषधि की तेजी से पात्र का ढक्कन हटने न पाए ।

अभाव द्रव्य ग्रहण के नियम—किसी द्रव्य के अभाव में कौन द्रव्य ग्रहण करना चाहिए ऐसे नियम प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होते हैं । प्रायः कर ऐसा किया जाता है कि द्रव्य के समान गुण वाले उपलब्ध द्रव्य को ग्रहण कर लिया जाता है । अभाव द्रव्य का रस-गुण-वीर्य-विपाक समान हों, तभी उसे ग्रहण करना चाहिए अन्यथा नहीं । यह भी स्मरण रहे कि किसी योग में जो द्रव्य प्रधान हो उसके स्थान पर अभाव द्रव्य का ग्रहण नहीं किया जाता । यहां कुछ द्रव्यों के अभाव द्रव्यों को लिख रहे हैं—

द्रव्य

मधु

पुराना गुड़

दूध

मत्स्याङ्गिका

सफेद चीनी

शाली चावल

द्राक्षा

अनार

पोहरकरमूल

सौराष्ट्र मृत्तिका

तगर मूल

सफेद सरसों

चव्य-गजपिप्पल

पृश्निपर्णी

घनिया

अभाव

पुराना गुड़

नये गुड़ को १२ घंटे

मूंग और मसूर का यूष

शकंरा अथवा मिश्री

खांड

शाठी चावल

गम्पारी फल

वृक्षाम्ल

कुष्ठ

क्रिटकरी

सुगन्ध वाला

राई

पिप्पलामूल

शाल पर्णी

सोया

परिशिष्ट

३७७

केसर	हरिद्रा
भल्लातक	लाल चन्दन, चित्रक
इक्षु मूल	नल मूल
जावित्री	लौंग
सफेद चन्दन	कपूर
भारंगी	तालीस पत्र
ताल मखाना	गोखरू
कपूर	सुगन्ध मुस्तक
कस्तूरी	लता कस्तूरी
कुटज	अनारक, छिलका
रास्ना	बन्दाक
जीरा	घनिया
रसौत	दारूहरिद्रा
मेदा-महामेदा	शतावरी
जीवक-शृषभक	विदारि कन्द
काकोली-क्षीरका-कोली	अश्वगन्था
ऋद्धि-वृद्धि	वाराही कन्द
चित्रक	दन्तीक्षार, अपामार्ग क्षार
घमासा	जवासा
नीलोत्पल	कुमुद
नागर मोथा	अतीस
हरड़	आंवला
नाग केशर	पद्म केशर
मुलहठी	घाय के फूल
अम्ल बेत	चुक्र
कंकोल	जावित्री
दारू हल्दी	हल्दी
स्वर्ण	रोप्य

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

रोप्य	कान्त लोह
कान्त लोह	तीक्ष्ण लोह
लोह	मण्डूर
माक्षिक	सुवर्ण गैरिक
नाग	बंग
ताम्र	कांस्य पीतल
मुक्ता	मुक्ताशुक्ति
हीरा	कौडी
मद्य	शिङाकी
शुक्त	कांजी

मात्रा विचार—किसी भी द्रव्य का प्रयोग करते समय यह निश्चय करना आवश्यक होता है कि उसे कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाए। इस मात्रा का विचार करते हुए रोगों के दोष, अग्नि, बल, वय, कोष्ठ आदि का विचार किया जाता है।

बिना मात्रा के किसी द्रव्य का प्रयोग किया जाये तो हम उससे शुभ फल की आशा नहीं कर सकते, क्योंकि अधिक रोग होने पर यदि अल्प मात्रा दी गई तो वह उसी प्रकार निरर्थक होगी जिस प्रकार अधिक प्रचण्ड अग्नि में अल्प पानी डालने से वह अग्नि को शांत नहीं कर सकता और यदि अधिक मात्रा दी गई तो वह उसी प्रकार हानिकारक होगी जिस प्रकार खेती में अत्यधिक पानी देने से वह उसे नष्ट कर देता है। अतः आवश्यक है कि प्रत्येक द्रव्य की मात्रा को निश्चय कर तब उसका प्रयोग किया जाए।

मान परिभाषा

बिना नाप तौल के किसी भी द्रव्य का प्रयोग कराना सम्भव नहीं होता अतः मान परिभाषा की व्याख्या की जाती है। ★

प्राचीन साहित्य में तीन प्रकार के मानों का वर्णन है—

★न मानेन बिना युक्ति द्रव्याणां जायते क्वचित् ।

अतः प्रयोग कार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया । (शा० प्र० १)

१. पौतव मान—पदार्थों के भार का मान (Measures of weight) जो तुला से लिया जाता है। यह निम्न प्रकार से वर्णित मिलता है—

(क) चरक मतानुसार ।

(ख) सुश्रुत मतानुसार ।

(ग) शाङ्गधर मतानुसार—दो प्रकार का है :—

(क) मागधमान ।

(ख) कार्लिंग मान ।

इन सबका क्रमशः वर्णन आगे करेंगे ।

२. द्रव्य मान—ठोस या द्रव पदार्थों के आयतन का जो नाप किया जाता है उसे द्रव्य मान (Measures of volum or Capacity) कहते हैं ।

३. पाय्य मान—पदार्थों की लम्बाई आदि का नाप पाय्य मान (Measures of length) कहलाता है ।

पौतव मान

प्रायः कर यह मान ही अधिक प्रयोग में आता है । इसे निम्न प्रकार भिन्न २ मतों से स्पष्ट किया गया है ।

चरक मतानुसार

जालान्तर की किरण को वंशी या त्रिसरेणु कहा जाता है ।

६ वंशी = १ मरिची

६ मरिचि = १ सर्षप

८ सर्षप = १ तण्डुल

२ तण्डुल = १ धान्य माष

२ धान्य मास = १ यव

४ यव = १ अण्डिका

४ अण्डिका = १ माषा

३ माषा = १ शाण

२ शाण = १ द्रक्षण (कोल)

२ द्रक्षण = १ कर्ष (सुवर्ण)

आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण-विज्ञान

- २ सुवर्ण = १ पलार्घ
 २ पलार्घ = १ पल
 २ पल = १ प्रसृत
 ४ पल, २ प्रसृत = १ कुडव
 ४ कुडव = १ प्रस्थ
 ४ प्रस्थ = १ आढक
 ४ आढक = १ द्रोण
 ४ द्रोण = १ खारी

सुश्रुत मतानुसार

- १२ धान्य माष (उर्द) = १ माषा
 १६ माषा = १ कर्ष
 ४ कर्ष = १ पल
 ४ पल = १ कुडव
 ४ कुडव = १ प्रस्थ
 ४ प्रस्थ = १ आढक
 ४ आढक = १ द्रोण

शार्ङ्गधर (मतानुसार)

शार्ङ्गधर में दो प्रकार के मान बताए हैं जो उस समय उन प्रदेशों में प्रचलित होने से उनके नाम पर हैं—

१. मागधमान

- ६ त्रसरेणु = १ मरीचि
 ६ मरीचि = १ राई
 ३ राई = १ सर्षप
 २ सर्षप = १ यव
 २ यव = १ गुंजा
 ६ गुंजा (१२ उर्द) = १ माषा
 ४ माषा = १ क्षाण = २४ स्ती

परिशिष्ट

३८१

- २ छाण = १ कोल
 २ कोल = १ कर्ष = ६६ रत्ती = १ तोला
 २ कर्ष = १ अर्घपल
 २ अर्घपल = १ पल = ४ तोला
 ३ पल = १ प्रसृत
 २ प्रसृत १ कुडव = १६ तोला
 २ कुडव = १ शराव
 २ शराव = प्रस्थ = ६४ तोला
 ४ प्रस्थ = १ आढक = २५६ तोला
 ४ आढक = १ द्रोण = १०२४ तोला
 २ द्रोण = १ शूर्प = २०४८ तोला
 २ शूर्प = १ द्रोणी = ४०९६ तोला
 ४ द्रोणी = १ खारी = १६३७४ तोला

कार्त्तिक मान

- १२ पीली सरसों = १ जौ
 २ जौ = १ रत्ती
 ८ रत्ती = १६ यव = १ माशा
 ४ माशा = १ टंक = ३२ रत्ती
 १० माशा = १ कर्ष = ८० रत्ती
 ४ कर्ष = १ पल = ३१ $\frac{१}{३}$ तोला
 ४ पल = १ कुडव = १२३ $\frac{१}{३}$ तोला
 ४ कुडव = १ प्रस्थ = ५३१ $\frac{१}{३}$ तोला
 ४ प्रस्थ = १ आढक = २१३१ $\frac{१}{३}$ तोला
 ४ आढक = १ द्रोण = ८५३१ $\frac{१}{३}$ तोला
 २ द्रोण = १ शूर्प १७०६ $\frac{२}{३}$ तोला
 २ शूर्प = १ द्रोणी = ३४१३१ $\frac{१}{३}$ तोला
 ४ द्रोणी = १ खारी १३६५३१ $\frac{१}{३}$ तोला

३८२

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

इन सबका सन्मवय निम्न प्रकार कर सकते हैं । जिससे चरक सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर के मागधमान एक समान हैं, कालिगमान उससे छोटा है :—

चरक

सुश्रुत

१६ यव = १ माशा

१२ यव = १ माशा

१२ माशा = १ कर्ष

१६ माशा = १ कर्ष

१ कर्ष = १६२ यव

= १६२ यव

= ६६ रत्ती

= ६६ रत्ती

द्रव्य मान

यह मान बिन्दु से आरम्भ होते हैं ।

८ बिन्दु = १ शाण

३२ बिन्दु = १ शुक्ति

६४ बिन्दु = १ पाणि शुक्ति

शार्ङ्गधर

मागध

कालिग

१२ यव = १ माशा

१६ यव = १ माशा

(६ गुंजा)

(८ गुंजा)

१६ माशा = १ कर्ष

१० माशा = १

= ६६ रत्ती

= ८० रत्ती

इति आयुर्वेदीयद्रव्यगुणविज्ञानम्

—: समाप्त :—



पुस्तकें में वर्णित द्रव्यों के प्रसिद्ध नामों की

अनुक्रमणिका

अ					
अंकोल	१३७		अलसी	२२५	
अंगूर	३५०		अशोक	१८८	
अकरकरा	११२		असगन्ध	३१७	
अखरोट	१८१		अक्षोट	१८१	
अमर	३२८		आंवला	१५६	आ
अडूसा	६०		आकाशवेल	१२६	
अजमोद	३३०		आम	६६	
अजवायन	३२६		आमड़ा	६८	
अञ्जीर	३३८		आमपाक	११४	
अञ्जुवार	२७४		आलुबुखारा	२६२	
अलसी	२२५		आस	२४०	
अंतीस	२८०		इक्लीलुलमलिक	१६६	इ
अदरक	३२७		इन्द्रायण	१४३	
अनार	३०६		इमली	१८६	
अनन्तमूल	८७		इलायची	३१०	
अपराजिता	१६६		ईख	१७१	ई
अफसन्तीन	११३		ईरसा	१८०	
अफीम	२६१		ईश्वरमूल	८६	
अम्बर	३६५		ईसवगोल	२७२	
अम्लबेंत	२६५		उन्नाव	२८६	उ
अम्लतास	१८६		उशवा	२१६	
अरण्ड	१५७		उस्तखद्दूश	१८२	
अर्जुन	१०८		ऊदसलीब	२८२	
अरनी	३४८				ऊ
अरलु	६८		कंधी	२३३	
अरिष्टक	३०६		ककरोंघा	११५	
			कचनार	१६१	क
			कचूर	३१२	

३८४

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

कटहल	३३८	कायफल	२४४
कटेली	३१८	कालमेघ	६१
कड़वी तोरई	१४३	कालाजीरा	३३३
कनेर	७६	कालादाना	१२७
कनीबा	१६२	कालीमिर्च	२६८
कपास	२३३	कासनी	११६
कपूर कचरी	३१२	कासमर्द	१६२
कबाब चीनी	२६७	काहू	११६
कबीला	१५८	कीकर	१६६
कमरख	१६८	कीटमारी यवानी	११६
कमल	२४६	कीरमानी अजवायन	११६
करैला	१४४	कुचला	२१४
करौंदा	७७	कुड़ा	७६
कर्पूर	१५४	कुलत्थी	२००
करमर्द	७७	कुलञ्जन	३१३
करंजबा	१६१	कृष्ण	१२०
कलम्बा	२३०	कुशा	१७२
कलिहारी	२१७	कुसुम्भ	११६
कर्लोजी	२८३	कूठ	१२०
कसेरू	१५०	केवड़ा	२६०
कशेरूक	१५०	केला	३१५
कसौंदी	१६२	केशर	१७६
कस्तूरी	३६५	कैथ	२६६
काकड़ाशृंगी	६८	कौड़ी	३६८
काकजंघा	३५०	कौंच	२०१
काजू	७०	खजूर	२५५
काफी	२८८	खतमी	२३४
काम्पिलक	१५८	खरबूजा	१४५

ख

विषयानुक्रमणिका

३८५

खरैटी	२३५	चिरचिटा	६४
खस	१७३	चिरायता	१६६
खीरा	१४५	चिरौंजी	७१
खुरासानी अजवायन	३१८	चिलगोजा	१३२
खूबकलां	१३८	चित्रक	२७३
खूनखरावा	२५८	चीड़	१३२
खैर	१६७	चूका	२७५
मंगेरन	२३६	चोपचीनी	२१६
गम्हारी	३४५	चौलाई	६५
गाजर	३३१	छुई मुई	१६७
गाजवाँ	६७		
गिलोय	२३१	जटाभांसी	३४३
गुड़भार	८८	जमालगोटा	१६०
गुग्गल	६४	जमीकन्द	८२
गूलर	३३६	जलकुम्भी	८३
गोखरू	३५२	जलबेंत	३०३
गोरखमुण्डी	१२१	जलापा	१२८
धीकुआंर	२१७	जवासा	२१०
धुंधची	२०२	जामुन	२४१
धृतवर्ग	३६२	जायफल	२४५
चन्दन लाल	२०३	जावसीर	३३१
चन्दन सफेद	३०५	जीरा	३३२
चनसूर	१३६	जीराकाला	३३३
चव्य	२६६	जीवन्ती	८६
चांगेरी	१६६	जुही	२५१
चालमोगरा	६२	जूफा	१८२
चाय	२७८	जैतून	२५०

३८६

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

झाऊ	झ	३२७	धमासा	३५३
ढाक	ढ	२०५	धाय	२२६
तक्र वर्ग	त	३६०	नरसल	११७
तगर		३४३	नवनीतवर्ग	३६२
तम्बाकू		३१६	नागरमोथा	१५१
तमाल पत्र		१८६	नागकेशर	१७७
तालमखाना		१६२	नाखूना	१६०
तालीस पत्र		१३४	नारियल	२५७
त्रायमाण		१६७	नारियल दरयाई	२५६
तिनिश		२०४	निर्विषी	२८३
तिल		२६६	निशोथ	१२८
तुरुमबलांगु		१८३	निर्मली	२१५
तुम्बरू		३१३	नीम	२२८
तुलसी		१८४	नीलोफोर	२४६
तेजपात		१८६	नीम्बु	२६७
तोदरी		१४०	परवल	१४७
तोरई		१४६	पतंग	१६३
थूहर	थ	१५६	पंवाड़	१६४
दन्ती	द	१६१	प्याज	२१६
दधिवर्ग		३५८	प्याज जंगली	२२०
दारुहल्दी		६०	पपीता	२६५
दालचीनी		१८७	पद्माख	२६३
दुग्धवर्ग		३५४	पथरचूर	३०८
दूधी		१६२	पाटल	६६
दूध		१७४	पालक	१०६
देवदारु		१३५	पान	२६६
बतुरा	ध	३२०	पाढ़	२३२
धनिया		३३३	पिलखन	३४०

विषयानुक्रमणिका

३८७

पिठिवन	२०६	विसखपरा	२४७
पित्तपापड़ा	१६५	विदारीकन्द	२०७
पिस्ता	७२	बेला	२५१
पीपल	२७०	वैंगन	३२१
पीपलामूल	२७१	वैत	३०२
पीपल	३४०	वैल	२६८
पीलु	३०४	वेर	२८७
पुदीना	१८५	बोल	६५
पुत्रजावक	१६३	भारंगी	३४७
पेठा	१४७	भांगरा	१२४
पोहकरमूल	१२२	भांग	१०१
पोई	१०७	भिलावा	७२
फरहद	२०६	भूमिआंबला	१६४
फालसा	३२६	भोजपत्र	१४६
वकायन	२२६	मकोय	३२२
वच्छनाग	२८४	मंजीठ	२६०
बड़	३४१	मण्डूकपर्णी	३३४
बड़हर	३४१	मानकचन्द	८४
बहुजा	१०७	मालकांगनी	१०५
बनफशा	३४८	माषपर्णी	२०८
बन्दाल	१४८	मिर्च	२६८
बरना	३४६	मुचकुन्द	३२४
बरुना	१०३	मुद्गपर्णी	२०८
ब्रह्मदण्डी	१२३	मुलहठी	२०६
बहुमन	१२४	मूगा	३६७
बहेडा	१०६	मूत्र वर्ग	३६४
बांस	१७५	मूली	१४०
बादरंजबीया	१८४	मूषाकर्णी	१३०
बावची	२११	मूसली सफेद	२२१
बायबिडंग	२४६	मेथी	२१०
बादाम	२६४	मैतफल	२६१
बिस्फेज	२७६	मोती	३६६
		मौलसरी	३०७

३८८

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण-विज्ञान

राई	र	१४१	सरपत	१७६
रीठा		३०६	सहदेवी	१२५
रुमी मस्तगी		७४	सहदेवी	२३७
रेवन्दचीनी		२७५	सहंजना	२३६
रोहेड़ा		१००	सरिवन	२१३
रोहिणी		२२६	सरफोंका	२१२
लता कस्तूरी	ल	२२६	समुद्रफल	२४३
लहसुन		२२२	समुद्रझाग	३६६
लाख		३६६	सत्यानाशी	२६४
लाल मिर्च		३२३	साल	५५१
लिसोड़ा		६६	सालमिश्री	२५४
लोघ		३२५	सिताव	३००
लौवान		३२५	सिघाड़ा	२५३
लौंग		२४२	सिरिस	१६८
वच	व	८४	सीप	३६७
वृधाम्ल		१७८	सुदर्शन	६३
वाकुची		२११	सुरंजान	२२४
वाराहीकन्द		१५२	सुपारी	२५६
वधारा		१२६	सेमल	२३७
शंकाकुल	श	२३३	सोंठ	२१-
शंख		३६८	सौंफ	३३५
शंखाहुली		१३१	सोया	३३६
शहतूत		३४२	हंसराज	२७७
शहद		३६६	हड़जोड़ा	३५१
शातर		१८५	हरड़	११०
शाल		१५५	हरमल	३०१
शिकाकाई		१६८	हल्दी	३१४
सनाय	स	१६५	हाऊवेर	१३६
समाकदाना		७५	हारसिंगार	२५२
सतावर		२२३	हींग	३३६
सतौना		७६	हुलहुल	१०४
सर्पगन्धा		८०		
सरसों		१४२		

-: कामये प्राणितप्तानाँ प्राणिनामार्ति नाशनम् :-

